संत साहेब



डा. युगेश्वर

संत साहेब

डा. युगेश्वर

डॉ० युगेश्वर

लगभग एक दर्जन पुस्तकें और शताधिक निबन्धों के लेखक डॉ० युगेश्वर का जन्म बिहार के ग्रामीण अंचल में 10 जनवरी, 1934 में हुआ था। आप अध्यापक, चिन्तक, आलोचक, निबन्धकार और रचनाकार हैं। उपन्यास के क्षेत्र में यह इनकी पंचम रचना है। काफी अरसे से काशी विद्यापीठ के हिन्दी विभाग में रीडर हैं। जीवन के बहुत बड़े समय तक विचारों की राजनीति और राजनीति के विचारों से जुड़े रहने के कारण डॉ० युगेश्वर के पास एक तीव्र दृष्टि विधान है। आपकी अधिकांश रचना-प्रक्रिया सांस्कृतिक संदर्भों से युक्त है। प्रस्तुत उपन्यास पर भी उसकी छाया है। इसके पहले आपका उपन्यास सीता एक जीवन, राम एक जीवन, रावण एक जीवन, हनुमान एक जीवन तथा भरत एक जीवन बहुचर्चित हो चुके हैं।

सम्पर्कसूत्र

हिन्दी विभाग, काशी विद्यापीठ

वाराणसी–22 1002

प्रचारक बुक क्लब

हिन्दी प्रचारक संस्थान

पो०बा० ११०६,पिशाचमोचन,वाराणसी-२२१००१

संत साहेब



भारत के प्रथम बुक क्लब
प्रचारक बुक क्लब
हिन्दी प्रचारक संस्थान
पो० बा० ११०६, पिशाचमोचन, वाराणसी–२२१००१ के लिए
विजय प्रकाश बेरी द्वारा प्रकाशित तथा
मालती प्रेस, विवेकानन्द कालोनी, वाराणसी में मुद्रित

मूल्य १०.००

Dr. Yugeswar

Sant Saheb

A Biographical Novel

काशी में हम......

लोगों की भीड़ बढ़ रही थी। पूरा काशी जनपद आन्दोलित था। नगर कोतवाल को सावधानी की विशेष हिदायत थी। कुछ हो न जाय। वैष्णवों और शैवों में झगड़े का पूरा अन्देसा था। दोनों पक्ष विवाद में संलग्न थे। शासन के घुड़सवार सड़कों, गलियों, चौराहों, उद्यानों आदि में चक्कर लगा रहे थे। नाना प्रकार की खबरों से भयभीत थे। अफवाहें हवा में तैर रही थीं।

कोई कहता रात स्वयं शंकर जी त्रिशूल लेकर भूतों, पिशाचों, वैतालों आदि के साथ उपस्थित होंगे। कोई कहता पश्चिम से वैष्णव वैरागी बड़ी संख्या में युद्ध के लिये आ रहे हैं। अब यहाँ एक भी शैव का बचना कठिन है। गोरखनाथ के चेलों ने विष्णु का अपमान किया है। गाली दी है। वैष्णव अत्यन्त क्रोध में हैं।

लोग आज पुनः एक पुरानी कहानी दुहरायी जाने की आशंका से परेशान हैं। इधर वर्षों से शैव-वैष्णव एकता की कोशिशें आज खतरे में थीं। पहले भी काशी इस संकट से गुजर चुकी है। शंकर की यह नगरी परिवर्त्तन नहीं चाहती है। शिव कल्याण रूप होकर भी बौड़म हैं। भूतों-प्रेतों, योगिनियों, डाकिनियों आदि का साथ करते हैं। भसम लगाते हैं। लंगोटा डालकर पड़े रहते हैं। कभी मृगछाला, कभी बाघम्बर और कभी दिगम्बर। निश्चित रहने वाले देवता की यह नगरी भी बड़ी निश्चितता वाली है। परिवर्त्तन की इच्छा से रहित। फिर भी दुनिया के परिवर्त्तनकारी यहाँ आते हैं। यहाँ की मुहर लगवाते हैं। दिग्विजय का अर्थ है काशी विजय। जो काशी को जीत ले वह किसी को भी जीत सकता है।

परिवर्त्तन साधन है। साध्य है स्थिरता। काशी की विजय का अर्थ है परिवर्त्तन के विचारों को मान्यता और स्थिरता। काशी सबकी परीक्षा लेती

है। फिर उसे प्रकाशित करती है। प्रकाश काशी का पर्याय है। आत्मप्रकाश जगतप्रकाश। स्वतः प्रकाशित काशी सृष्टि में ज्ञान प्रकाशित करती है। ज्ञान प्रकाशिका होने के नाते ही इस नगरी का नाम काशी है। प्रकाश, विकाश, आकाश में काश ही तो मुख्य है।

अधिकतर नागरिक वैष्णव विरोध के विरोधी हैं। उनके मन में वैष्णवों के प्रति भी श्रद्धा विश्वास है। भय भी है। वैष्णव शैव झगड़े में शैव पराजय की कथा उन्हें ज्ञात है। वैष्णवों ने शिव का धनुष तोड़ दिया। कृष्ण के चक्र सुदर्शन ने काशी में आग लगा दी।

थोड़े से उग्रवादी भक्तों को कौन समझाए ? ये समझते नहीं। अपने स्वार्थ में ईश्वर को भी संघर्ष में डाल देते हैं। भगतबछल भगवान् को युद्ध के मैदान में आना पड़ता है। झगड़ा स्वार्थ का है। झगड़ते हैं भक्त। किन्तु नाम भगवान का है। धर्म या गुरु का लेते हैं। जहाँ भगवान् है वहाँ तो झगड़ा होना ही नहीं चाहिए। भगवान् तो सबके हैं। या फिर भगवान् को भी खंडित मान लो।

बाणासुर राजा बलि का पौत्र था। उसने एक बार शंकर जी को संकट में में डाल दिया। बाणासुर के हजार हाथ थे। उसके इन हजार हाथों से पूजा पा भगवान् शंकर प्रसन्न थे। बाणासुर ने वरदान माँगा। शंकर ने वरदान में उसके नगर शोणितपुर की रक्षा की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली। अपना एक वास वहाँ भी बनाया।

इस सुरक्षा से बाणासुर अभय और उन्मुक्त हो गया। जिसके नगर की रक्षा स्वयं शिव करते हों उसके अहंकार का क्या कहना ? बाणासुर का अहंकार समुद्र की लहरों पर लहराने लगा। आकाश में चमकने लगा। पहाड़ों, नदियों, वनों और समतल में गरजने लगा। द्वीपों, वर्षों और लोकों में संचरण करने लगा। बाणासुर संसार में अपना प्रतिद्वन्द्वी खोजने लगा। हजार हाथ ही काफी थे। अब शंकर का वर भी था। कोई लड़ने को तैयार नहीं हुआ। हथियारों के संग्रह उत्पादन से बाण की युद्धवृत्ति व्याकुल हो उठी।

प्रतिद्वन्द्विताहीन शक्ति, शौर्य और सम्पत्ति भार है। लक्ष्मी चंचला न होती तो उसकी आँखें पत्थर और होंठ निर्गंध पलाश पुष्प हो जाते। चंचला में चमक है। गति और आकर्षण है। इसलिये चंचला हर समय अपने उपासक की खोज में रहती है।

बाणासुर स्थिर शक्ति और सम्पत्ति से ऊब गया। वायुयान की सवारी चलने के लिये है। दौड़ने और भागने के लिये है। मात्र बैठने के लिये नहीं है। न भागनेवाला विमान लोहे की खटिया से भी रद्दी है।

बाणासुर ने भगवान आशुतोष के चरणों में कोटि-कोटि सूर्य सा प्रकाशित अपना स्वर्णमुकुट झुकाकर प्रतिद्वन्द्विता का वर माँगा। प्रभो, मैं युद्ध चाहता हूँ। कोई मुझसे लड़े। मेरे मन में युद्ध की अशान्त इच्छा है। धमनियों के रक्त उबल रहे हैं। नसें फटना चाहती हैं। भगवान् ने भक्त की प्रार्थना स्वीकार कर ली। उन्होंने बाण से कहा मेरे ही समान वीर से तुम्हारा युद्ध होगा। शौर्य शक्ति चिह्न तुम्हारी ध्वजा टूटकर गिर जायगी। तुम्हारा गर्व मिट्टी में मिल जायगा।

बाणासुर दुर्मद शक्ति के पागलपन में शक्ति बटोरता रहा। मारक हथियारों का संग्रह करता रहा। आनेवाले युद्ध की प्रतीक्षा करने लगा। किन्तु कोई लड़ने को तैयार नहीं हुआ। असुर, हजार हाथ, शंकर का आशीर्वाद तीनों एकत्र देख सबने हिम्मत छोड़ दी। बाणासुर युद्ध की ओर से निश्चित हो गया। इस निश्चिता ने बाणासुर को प्रसन्न नहीं किया। इसलिये कि शक्ति शक्ति को कुचलना चाहती है। अपना प्रदर्शन चाहती है। बाणासुर की शक्ति किसे कुचले ? उसकी आँखों के सामने कोई आ नहीं रहा था। फिर भी वह नित्य हथियार बनाता। राज्य के बड़े-बड़े कारोगर हथियार बनाने में जुट गये। हथियार बनानेवाले कारीगरों की माँग बढ़ गयी। सभी वैज्ञानिक केन्द्रों को आदेश दिया गया कि वे अपना सारा समय नवीन हथियारों के अनुसंधान में लगाएँ। मारक हथियार। मार से बचाने वाले हथियार। दूर फेंके जाने वाले हथियार। नजदीक से चोट पहुँचाने वाले हथियार। जहर में बुझे हथियार। जहर फैलाने वाले

हथियार। घाव को गम्भीर बना देने वाले हथियार। बुखार, रोग, जड़ता पैदा करने वाले हथियार।

बाणासुर का राज्य हथियारों से भर गया। भावी प्रयोग की आशा में बड़े-बड़े हथियार बनते और रख दिए जाते। हथियार इतने बनते कि उन्हें रखने की समस्या हो गयी। फलतः पुराने धराऊँ हथियारों को नष्ट करना पड़ता। कुछ दूसरे देशों को बेच दिये जाते। नये हथियार बनते और वे भी पुराने हो जाते। अस्त्र-शस्त्र की दृष्टि से सबसे आगे और सुरक्षित रहने की कामना से ऐसे ऐसे अस्त्र-शस्त्रों का आविष्कार हुआ जिन्हें पहले कभी कोई नहीं जानता था। इस प्रकार बाणासुर का राज्य विनाशक और भयंकर हथियारों से भर गया। शायद इसीलिये लोग बाणासुर का असली नाम भूल गये और उसे बाण असुर कहने लगे। बाण बनाने, बनवाने और संग्राहक के नाम से लोक में उसकी प्रसिद्धि हो गयी। देश-विदेश के लोग बाण के हथियारों के भय से आशंकित और भयभीत रहते। पास-पड़ोस ही नहीं दूर-दूर के राजाओं की नींद लुप्त हो गयी। पता नहीं कब बाण के हथियार टकराकर सृष्टि में प्रलय पैदा कर दें।

बाणासुर की पुत्री का नाम था ऊषा। ऊषा के रूप में चन्द्रमा की चमक और कमल की महक थी। वह संगीत कला, चित्र रचना और शास्त्र ज्ञान में पारंगत थी। पिता बाण उसे पुत्रों से भी अधिक प्यार करते थे। एक दिन उसने एक सपना देखा। बड़ा मोहक था उसका यह सपना। सपने सभी मोहक होते हैं। किन्तु यह सपना विशेष मोहक था। उसने देखा कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध उसके पास आये हैं। अपने गर्म-गर्म स्पर्श से उसके अंग-अंग पुलकित कर रहे हैं। वह कदम्ब सी खिल उठी। आँखों की नींद गायब हो गयी।

अनिरुद्ध का नाम सारी दुनिया में फैला था। कृष्ण का परिवार सौंदर्य का भंडार था। अनिरुद्ध कामदेव के अवतार प्रद्युम्न के पुत्र थे। उन्होंने भी कामदेव सा रूप गुण पाया था। द्वारका से लौटने वाले यात्री अनिरुद्ध के रूप की प्रशंसा करते। गुणों की सराहना करते। यदुवंशियों के वैभव की चर्चा

होती। समुद्र किनारे का यह नगर धन-धान्य से पूर्ण था। मानों लक्ष्मी अपने मायके से विदा होना नहीं चाहती हो।

भारत के दूसरे नगर इसके वाणिज्य-व्यवसाय एवं धन-दौलत के प्रति ईर्ष्या करते थे। देश-विदेश के व्यापारी द्वारका आते। द्वारका दूर-दूर के सोने-चाँदी और जवाहरातों से पटी थी। ऊषा ने यह सब सुना था। उसकी आँखें द्वारका की ओर लगी रहतीं। द्वारका रूप, गुण, और वैभव तीनों का द्वार थी। ऊषा अपना मनमस्तक वहीं टेके रहती। सखी चित्रलेखा से अनिरुद्ध के रूप, गुण की प्रशंसा अत्यन्त रस लेकर सुनती।

सेनापति कुष्मांड की प्रियपुत्री चित्रलेखा ने ऊषा और अनिरुद्ध का सम्बन्ध बनाने का काम किया। सखी ही तो थी। सखी का काम कैसे नहीं करती ? कैसे किया ? यह अभी छोड़िए। उसने किया। सात दरवाजोंवाले नगर की रक्षापंक्ति को लाँघकर अनिरुद्ध का ऊषा के महल में प्रवेश हो गया। ऊँचे-ऊँचे प्राचीरों और सैनिकों से घिरे उस महल में अनिरुद्ध कितने दिन रहे। स्वयं उन्हें पता नहीं। ऊषा के शरीर की ऊष्मा में अनिरुद्ध का कालज्ञान लुप्त हो गया। अयन, मास, ऋतु बीते। अनिरुद्ध ऊषा के प्रेमपाश में बँधे रहे। ऊषा भी प्रियतम अनिरुद्ध के अंकपाश में पितृभय भूल गयी। भय और प्रेम परस्पर विरोधी हैं। इसलिए दोनों ने निर्भय प्रेम किया।

रक्षकों को अनिरुद्ध के महल में प्रवेश की खबर तब लगी जब दासियों ने ऊषा के शरीर में कुछ विशेष लक्षण देखे। ऊषा का कौमार्य स्खलित हो चुका था। अब वह पूर्ण स्त्री बनने की तैयारी में थी। रक्षक डर गये। यह क्यों और कैसे हुआ ? कैसे कोई पुरुष इस आरक्षित महल में प्रवेश कर गया ? अपनी असावधानी का अनुभव कर रक्षकों में भय व्याप्त हो गया। सभी रक्षक क्रूर बाण के हाथों मृत्युदंड की प्रतीक्षा करने लगे। मालिक के कार्यों के प्रति इस उदासीनता से उनके इहलोक और परलोक दोनों नष्ट हो गये थे। उन्होंने बाण से जाकर सब कुछ कह दिया। सत्यकथन अपराध मुक्ति के साथ-साथ दंडमुक्ति

का भी साधन है। दुःखी बाण ने अपनी लड़की की गति पर ध्यान नहीं दिया। क्रोध में आकर अनिरुद्ध को बाँध लिया। दंडित करने लगा। भर्त्सनाओं द्वारा उनके स्वाभिमान को छलनी कर दिया। अनिरुद्ध बंदी बना लिये गये।

अनिरुद्ध की इस दशा की खबर द्वारका पहुँची। पूरा राजपरिवार व्याकुल हो उठा। कौन है जिसने बलदेव कृष्ण के पौत्र को बन्दी बनाने का दुःसाहस किया है? किसके सिर पर शेषनाग अपना फन फटकारना चाहते हैं? कृष्ण लड़ाना ही नहीं, लड़ना भी जानते हैं। बलराम के मूसल में सृष्टि-संहार की शक्ति है। कृष्ण और बलराम ने सेना सहित बाण की नगरी शोणितपुर को घेर लिया। युद्ध की ललकार सुनकर बाणासुर अपने महल से निकल पड़ा। उसने देखा। यदुवंशियों की विशाल सेना ने उसकी राजधानी को घेर लिया है। उसके अनेक मंत्रियों की आँखों में आतंक था। उन्होंने बाण से प्रार्थना की—'ऊषा कन्या है। कन्या देने के लिए ही होती हैं। ऊषा मे स्वयं अनिरुद्ध का चुनाव किया है। गांधर्व विवाह उसकी अत्यन्त प्रिय इच्छा है। अनिरुद्ध साक्षात् कामदेव के पुत्र हैं। यदुवंशियों का प्रतापी कुल स्वयं आपका समधी बनना चाहता है। यह बड़े सौभाग्य की बात है। किसी भी पिता के लिए अहोभाग्य है जबकि दूल्हे का परिवार स्वयं कन्या के वरण के लिए उत्सुक हो। दुर्लभ आपके लिए सुलभ हो गया है। कन्या का जन्म स्वयम् में दुःख है। आपका यह दुःख बिना किसी प्रयास के समाप्त हो जाना चाहता है। आप स्वयं इसमें विघ्न न बनें। इस विवाह से आपका राज्य विघ्नरहित हो जायगा। साक्षात् रुद्र भी वृष्णिसंघ के समधी का अहित करने में असमर्थ हैं। आपके जैसे समधी को पाकर वृष्णिसंघ को भी प्रसन्नता होगी। ऐसे सम समधी भगवान् की महती कृपा के फल हैं। आशुतोष शंकर आप पर प्रसन्न हैं। आये हुए सुख का निरादर न करें। समुद्रतट पर बसी द्वारकापुरी धन्यधान्य से से भरी व्यापार के सर्वोच्च शिखर पर पहुँची है। इस सम्बन्ध से सम्पूर्ण समुद्री मार्ग का व्यापार आपके लिए सुलभ हो जायगा। आपके उपास्य सोमनाथ पर वैष्णवों का प्रभाव बढ़ रहा है। ऊषा के विवाह से सोमनाथ का दर्शन आपके

साथ प्रजा के लिए भी सुलभ हो जायगा। सोमनाथ का मन्दिर सम्पूर्ण जंबू-द्वीप में रत्नों एवं जवाहरातों का सबसे बड़ा भंडार है। सारी दुनिया के रत्न समुद्री मार्ग से आकर यहाँ एकत्र हैं।

बाण को मंत्रियों की नेक सलाह समझ में न आयी। वह तो भगवान् शंकर के आशीर्वाद में मत्त था। यह भाँगड़ा देव अपात्र को भी आशीर्वाद देकर उन्मत्त बना देता है। डाकिनी, शाकिनी, पिशाचिनी और श्मशान की सिद्धि ने उसकी पवित्र चेतना समाप्त कर दी थी। उसने अपने इकट्ठे हथियारों को देखा। उसके उपयोग के प्रति आश्वस्त हो गया। बाण युद्ध को तैयार हो गया। एक तरफ थे कृष्ण, बलराम, प्रद्युम्न आदि। दूसरी ओर बाण अपने मंत्रियों सहित आ डटा। भगवान् शंकर को भी मैदान में उतरना पड़ा। भक्त की रक्षा का धर्म बड़ा निर्मम होता है। शंकर वचनबद्ध थे। इस असुर की रक्षा के लिए वे कार्तिकेय सहित हथियार लेकर आ डटे। घमासान युद्ध होने लगा। देवता, दानव, सिद्ध, चारण, गंधर्व, अप्सराएँ, यक्ष विमानों पर बैठ युद्ध देखने लगे। श्रीकृष्ण ने शंकरगण भूत, प्रमथ, गुह्यक, डाकिनी, यातुधान, वेताल, विनायक, प्रेतगण, मातृगण, पिशाच, और ब्रह्मराक्षसों को मार-मारकर ठंडा कर दिया। अपने गणों की दुर्गति देख स्वयं शंकर सामने उपस्थित हो गये। भगवान् कृष्ण ने ब्रह्मास्त्र से ब्रह्मास्त्र, पर्वतास्त्र से वायव्यास्त्र, पर्जन्यास्त्र से आग्नेयास्त्र, नारायणास्त्र से पाशुपतास्त्र को शांत कर दिया। जंभाई लाने-वाले जृम्भणास्त्र से शंकरजी को जंभाई आने लगी। शंकर जंभाई के कारण सुस्त पड़ गये। इस बीच कृष्ण की सेना ने बाण को पराजित कर युद्ध जीतने का नगाड़ा बजा दिया।

किन्तु शंकरजी शीघ्र सम्हल गये। उन्होंने माहेश्वर ज्वर छोड़ दिया। इस ज्वर से कृष्ण की सेना काँपने लगी। बलराम और प्रद्युम्न घबड़ा गये। कृष्ण ने अपने लोगों की परेशानी देखकर वैष्णव ज्वर का प्रयोग किया। अब वैष्णव ज्वर और माहेश्वर ज्वर आपस में टकराने लगे। वैष्णव ज्वर के सामने माहेश्वर ज्वर की एक न चली। माहेश्वर ज्वर भाँग का नशा उतरते ही

कृष्ण के पैरों पर गिर पड़ा। दया का प्रार्थी हो गया। कृष्ण तो पहले भी नहीं लड़ना चाहते थे। स्वयं शंकर अपने 'नाथ' शिष्यों के प्रभाव में थे।

बाण ने अपनी पराजय स्वीकार की। अनिरुद्ध के साथ ऊषा का विवाह कर वृष्णि वीरों से क्षमा माँगी। कृष्ण ने बाण को अभय किया। उसका अहंकार टूट गया। उसने शंकर के अतिरिक्त विष्णु को भी अपना पूज्य बना लिया।

दूसरी बार तो कृष्ण ने काशी को जला ही दिया। करूष देश का राजा पौंड्रक काशी नरेश का मित्र था। वह बड़ा घमण्डी था। अहंकार में आकर उसने अपने को भगवान् घोषित किया। वह कृष्ण को गालियाँ देता, अपमान करता, उनकी वेशभूषा धारण करता, उनकी पूजा-अर्चा का विरोध करता। अपनी पूजा कराना चाहता। उसके इस व्यवहार से कृष्ण नाराज हो गये। उन्होंने क्रुद्ध होकर उसे उसके मित्र काशी नरेश सहित मार डाला। काशी नरेश का कुंडल मंडित खंडित सिर उनके दरवाजे पर जा गिरा। उस खंडित सिर को देख पूरी काशी रोने लगी। नरेश काशीवासियों को अत्यन्त प्रिय था। लोग उसे शंकर का साक्षात् प्रतिनिधि मानते थे। उसे देखकर महादेव का नाम लेकर जय जयकार करते थे। आते जाते वह जय जयकार सुनता। अपने राजा की मृत्यु से काशी की जनता अत्यन्त दुखी हुई।

काशी नरेश का पुत्र सुदक्षिण तो क्रोध से मूर्छित हो गया। उसने देवाधिदेव शंकर की अराधना की। शंकर प्रसन्न हुए। उसने शंकर से वर माँगा 'मैं अपने पिता के हत्यारे का नाश चाहता हूँ। हत्या का बदला से।' शंकर ने उसे वरदान दे दिया। सुदक्षिण को यज्ञ करने की आज्ञा दी 'तुम ब्राह्मणों से मिलकर यज्ञ के देवता ऋत्विग्भूत दक्षिणाग्नि की अभिचार विधि से आराधना करो।' उसने ऐसा ही किया। यज्ञाग्नि से भयानक कृत्या प्रगट हुई। वह द्वारका की ओर दौड़ी। द्वारकावासी जलने लगे। भयभीत होकर उन्होंने रक्षा के लिये कृष्ण से गुहार लगाई। कृष्ण ने कृत्या के पीछे अपना सुदर्शन चक्र छोड़ दिया। भयभीत कृत्या भागने लगी। वह भागकर काशी आयी। यहाँ

उसने अनेक ऋत्विजों और ब्राह्मणों को मार डाला। यज्ञ का फल उलटा हुआ। उधर कृष्ण के भेजे सुदर्शन चक्र ने भी काशी को जला दिया।

इस घटना ने काशी और पूर्व में वैष्णव प्रभाव को और सुदृढ़ कर दिया। मणिपुर, असम, बंगाल, उड़ीसा, बिहार आदि सभी क्षेत्र वैष्णव प्रभाव में आ गये। वैष्णवों ने शिव का अपमान नहीं किया। उन्होंने शिव को भी अपना उपास्य बना लिया। हरिहर की पूजा होने लगी। मन्दिरों में शिवरामाष्टक स्तोत्र के पाठ होने लगे—शिवहरे शिवराम सखे प्रभो त्रिविध ताप निवारण हे विभो।

यह स्वयं शिव की भी मुक्ति थी। शिव प्रायः तामसिक प्रवृत्ति के लोगों के देवता थे। गांजा, भाँग, धतूरा, चरस आदि शिव के प्रसाद माने जाते हैं। शराब, माँस; मछली जैसी वस्तुएँ उनकी पत्नी देवी की भोज्य हैं। वैष्णवों ने देवी-देवताओं के नाम पर चलने वाली तामसिक वस्तुओं का बहिष्कार किया। सात्विक भोजन पर जोर दिया। शंकर पुत्र गणेश ने लड्डू को अपना भोजन बनाया। मांस, मदिरा, भाँग गांजा से अलग रहे।

काशी में वैष्णव आचार्य स्वामी रामानन्द आने वाले हैं। बहुत से भक्त उनके आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। उनके स्वागत में खड़े हैं। कुछ व्यक्ति विरोध भी करना चाहते हैं। अधिकांश जनता उत्सुकतापूर्वक स्वामी जी के आने का इन्तजार कर रही है। स्वामी जी के बारे में तरह-तरह की किंवदंतियाँ हैं। वे प्रसिद्ध दक्षिणी भक्त सम्प्रदाय आलवारों की परम्परा में आते हैं। कोई कहता नहीं स्वामी जी रहने वाले तो प्रयाग के हैं। दक्षिण भारत के गुरुओं से उन्होंने वैष्णव भक्ति की दीक्षा ली है। वर्षों द्रविड़ देश दक्षिण में साधना करने के बाद आज वे काशी आ रहे हैं।

सम्पूर्ण उत्तर भारत का जनमानस शैवों से ऊब चुका था। आचार्य शंकर इस बात को समझते थे। मूलतः शैव होते हुए भी उन्होंने विष्णु को प्रतिष्ठा दी। किन्तु जनता को मुख्य परेशानी योगी गोरखनाथ से थी। योगी शंकर भक्त थे। उन्होंने परवर्ती बौद्ध प्रभाव स्वीकार कर अपने सम्प्रदाय में वामाचार, जादू टोना, चमत्कार आदि को स्थान दे दिया। लोग कहेंगे आ गया। आ

गया न। होना महत्वपूर्ण है। किसने लिया दिया इसका कोई विशेष महत्व नहीं है। गोरखनाथ के गुरु मच्छदरनाथ कामकूप में गिर गये। सिद्धों ने बंगाली, रजकी, डोमिनी आदि मुद्राओं को इकठ्ठा किया। नर-नारी समता एवं वर्ण व्यवस्था खंडन को आधार बना कर स्त्री-पुरुष की सामूहिक उपासना होने लगी। छोटे-छोटे गुफानुमा आश्रम बने। सिद्ध साधक अपनी मुद्राओं को लेकर साधना में लग गये। मीन, माँस, मदिरा आदि की व्यवस्था की गई। पारंगत साधना के लिये इनका प्रयोग अनिवार्य था। सिद्ध-योगी काम मुद्राएँ बनाने लगे। स्त्री पुरुष के युगनद्ध रूप में नर-नारी समता प्रतिष्ठित हुई। आसनों की साधना में निरत स्त्री पुरुष योग का आन्तरिक सुख पाने लगे। काम भोग के द्वारा निष्काम परमात्मा की अनुभूति का लक्ष्य बनाया गया। रासायनिक द्रव्यों के शोधन के साथ रति सम्बन्धी प्रयोगों का प्रचलन बढ़ा। योग, भोग, रसायन साथ-साथ।

आचार्य शंकर को मंडन मिश्र की पत्नी ने शास्त्रार्थ में हरा दिया। बेचारे सब जानते थे। काम शास्त्र नहीं जानते थे। एक मृत राजा के शरीर में परकाय प्रवेश किया। राजा जीवित हो उठा। राजा रूप शंकर ने रानी से कामशास्त्र की दीक्षा ली। मच्छंदरनाथ की साधना छूट गयी। मुद्रा के रूपजाल में फँस कर डूबने लगे। शिष्य गोरखनाथ को खबर लगी। वे दौड़े-दौड़े गये। गुरु को कामकूप से मुक्त किया। रासायनिक उपचार से उनका शरीर ठीक किया। गोरख ने अपनी साधना से स्त्री को निकाल दिया। वे सिद्धों और अपने गुरु का पतन देख चुके थे। ब्रह्मचर्य पर जोर दिया। वीर्य को रोकने के लिये योग की मदद ली। हठपूर्वक वीर्य रोकना चाहा। भग महँ व्यद अगिन महँ पारा जो राखै सो गुरु हमारा। किन्तु यह साधना सब पूरी न कर सके। योगी गृहस्थ हो गये। गृहस्थी और योग सहयात्री नहीं रह सके। भोग ने योग को धोखा दे दिया। बेचारा योग भोग और रसायन की सकरी गली में हत्या का शिकार हो गया। योगियों की स्थिति विचित्र हो गयी। घर में हठयोग हो नहीं सका। मठों में काममुद्राएँ घेरने लगीं। वर्ण व्यवस्था के नाश के लिये डोमिनी और धोबिन को विशेष महत्व दिया गया था। किन्तु उससे वर्ण व्यवस्था नहीं

टूटी। सिद्ध योगी अपने भोग प्रयोगों से टूट गये। शंकर के अनुयायी असमय संन्यास से। संन्यास साधना को बौद्धों और शंकर मतवालों ने सभी अवस्था वालों के लिये खोल दिया। उसका अवस्था से सम्बन्ध टूट गया। युवा भी संन्यासी होने लगे। कभी गृहस्थी से ऊब कर। कभी गृहस्थ धर्म में प्रवेश के पूर्व ही वस्त्र रंगाने लग गये। जिसे देखिये वही संन्यासी बन गया। कबीर परेशान हैं। मन तो रंगा नहीं। कपड़ा रंगा लिया। दाढ़ी बढ़ाकर बकरा बन गये। भोग की बलि चढ़ गये। सामाजिक भोग के अभाव में लालसाएँ अतृप्त रह जातीं। अतृप्त इच्छाओं का संन्यास कुमार्ग पर जाने लगा। देखने में लगता था कि लोग त्याग कर रहे हैं। विरक्त हैं। किन्तु भोग की प्रवृत्ति बढ़ रही थी। योगी अपनी अप्राकृत साधना से गिर रहे थे। गेरुआ पहनते, रुदाक्ष की बड़ी-बड़ी मालाएँ धारण करते। जटा बाँधते। निर्गुण के गीत गाते। संसार की अनित्यता की सारंगी घोंटते। किन्तु मन साधिकाओं में अनुरक्त रहता। लोग संन्यास से लौटने लगे। अस्वाभाविक योग और संन्यास ने समाज को हिला दिया। इसका असर धन्धों पर पड़ा। मिहनत करने से जो चुराने वाले भी योगी संन्यासी होने लगे। मूड़ मुड़ जाता था। कपड़े बदल जाते थे। किन्तु मन विकृत ही रहता था। दाढ़ी और झोंटा हृदय की वासना को प्रभावित नहीं कर पाते थे। जनता ऐसे योगियों और संन्यासियों से परेशान थी। संन्यासी स्वयं दुखी थे। संन्यास लेने के बाद घर लौटने की अनुमति नहीं थी। घर लौटा संन्यासी पतित माना जाता था।

किन्तु घर लौटना अनिवार्य था। संन्यास बोझ बन गया था। योग केवल एकांत रहस में जाना भर रह गया था। अब उससे कुंडलिनी नहीं जग रही थी। जग रही थी केवल वासना जो साधिकाओं के संग के लिये बाध्य करती थी। मन आज्ञाचक्र से उतर पिछड़ी जाति की साधिकाओं की अंग यष्ठि पर टिक गया था। योगी और संन्यासी बड़ी संख्या में गृहस्थी में लौटने लगे। ऐसे धर्मच्युत तथा आश्रम भ्रष्ट लोगों की जाति बन गयी। योगी, गिरि, पुरी, भारती, आरण्यक, पर्वत, सरस्वती, दशनामी, मनिहारी आदि।

रामानन्द स्वामी उत्तर भारत में सिद्धों, नाथों और योगियों की स्थिति देख रहे थे। ये लोग काम साधना में लगकर समाज विमुख हो गये थे। दक्षिण भारत में भी शैवों का व्यापक प्रभाव था। आलवार बारह थे तो नायनमार सड़सठ। विष्णु काँची भी थी। शिव काँची भी थी। करनाटक में वीर शैव एवं लिंगायतों का गहरा प्रभाव था। स्वामी रामानन्द ने पूरे देश की यात्रा कर स्थितियों का अध्ययन किया। अन्त में उन्होंने आचार्य रामानुज को अपना गुरु बनाया। रामानुज तमिल प्रदेश के कान्तदर्शी आचार्य थे। उन्होंने गुरु गोष्ठीपूर्ण से मन्त्र पाया था।

गुरु गोष्ठीपूर्ण का आदेश था मन्त्र रहस्य गोपनी रहे। यह मन्त्र जो सुनेगा मुक्त हो जायगा। रामानुज का हृदय लोक करुणा से भर गया। वे सबको मुक्त करेंगे। वे केवल अपनी मुक्ति नहीं पूरे समाज की मुक्ति चाहते हैं। वह मन्त्र स्वार्थी है जो केवल व्यक्ति को मुक्त करे। दुखी तो व्यक्ति और समाज दोनों हैं। गुरु के प्रतिबंध के बावजूद यह मन्त्र सबको मिलना है। सब तक पहुँचना है। शंकर का संन्यास सर्वसुलभ नहीं है। सभी गेरू नहीं पहन सकते। दंड नहीं धारण कर सकते। त्रिपुंड नहीं लगा सकते। रामानुज को ऐसा धर्म चलाना है जो सबके लिये हो। सबजनहिताय। सबजन सुखाय। लोक कल्याणाय हो।

रामानुज ऊँचे मन्दिर की छत पर खड़े हैं। भीड़ बढ़ रही है। आचार्य आज सबकी मुक्ति का मन्त्र देंगे। गुरुजी का सन्देश आया है 'ऐसा न करो। न करो। मन्त्र का प्रभाव व्यक्ति में होता है। सामूहिक सिद्धि के लिये मन्त्र व्यर्थ हो जाता है। मन्त्र को व्यर्थ मत बनाओ।' किन्तु रामानुज हिले नहीं। लोक कल्याण के लिये वे गुरु आज्ञा का उल्लंघन करेंगे। गुरु का शाप है 'तुमने मन्त्र रहस्य सर्वजन सुलभ किया है। तुम नरकभागी हो। तुम्हें नरक जाना होगा।' रामानुज गम्भीर हो गये। उनकी करुणा सागर बनकर लहराने लगी। मन ही मन गुरु चरणारविंद का ध्यान किया। लोक हित

में नरक भोगना अकेले के स्वर्ग से कई-कई गुणा अच्छा है। नरक को भी गुरु का आशीर्वाद माना।

आचार्य ने गुरु के चरणों में प्रणाम किया। मुझे आपका क्रोध और नरक दोनों स्वीकार है। गुरु गोविन्द हैं, जैसी इच्छा।

शिष्य की केवल एक कामना है। एक अपराध है—समूह मोक्ष। शिष्य की दृढ़ता को देख आचार्य गोष्ठीपूर्ण का मन पिघला। प्रसन्न हो गये। तथास्तु। ऐसा ही हो। आज से समूह मोक्ष का प्रारम्भ होगा। आचार्य रामानुज होंगे प्रथम मंत्रदाता।

आचार्य रामानुज का यश पूरे देश में फैल गया। दक्षिण से उत्तर, पूरब से पश्चिम। सबकी मुक्ति। समवाय मुक्ति। शूद्र, द्विज, चांडाल, स्त्री सबकी मुक्ति। वेदान्त की यही शिक्षा है।

आचार्य रामानुज की उँगलियों के तीन स्तम्भ टेढ़े हो गये। कारण कौन बताये ? भिषगाचार्य आये। कविराज मार्तण्ड स्वामी बुलाये गये। कुछ बना नहीं। अभी-अभी दिवंगत यामुनाचार्य के शिष्यों ने बताया। मृत्यु के समय आचार्य व्यग्रता और विश्वास से आपकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उनसे अन्तिम भेंट न होने का दुःख आचार्य यामुन के समान ही आपको भी है। उँगलियों का मुड़ना उसी का फल है।

आचार्य की तीन इच्छाये थीं—१. ब्रह्मसूत्र का भाष्य लिखना, २. दिल्ली के सुल्तान के यहाँ से श्रीराम मूर्ति का उद्धार करना, ३. विशिष्टाद्वैत की दिग्विजयी प्रचार। रामानुज ने अपनी टेढ़ी उँगलियों वाले हाथ में जल और अक्षत ग्रहण कर पृथ्वी पर छोड़ दिया। आचार्य यामुन का आदेश पूर्ण करूँगा।

स्वामी रामानन्द ने ऐसे ही गुरु से दीक्षा लेकर काशी आ रहे हैं। जगह-जगह लोग स्वामीजी के आने की प्रतीक्षा में हैं। आज काशी विशेष सजी है। दशाश्वमेध से विशेश्वर तक फाटक बने हैं। जगह-जगह भागवत, रामायण, आध्यात्म के पाठ हो रहे हैं। लोग पंचगंगा घाट की ओर बढ़े जा रहे हैं। स्वामीजी का

अखाड़ा वहीं उतरने वाला है। व्यापारियों के भवनों के आगे कदली वृक्षों में बंदनवार बाँधे गये हैं। घड़ों पर दीप जल रहे हैं। बुनकरों का समूह बनारसी साड़ियाँ लिए दूकानों पर भीड़ लगाये हैं। बुनकर भी स्वामीजी के दर्शन को आतुर हैं। इसीलिए अपना सामान जल्दी बेचकर मुक्त होना चाहते है। स्वामीजी अपना आशीर्वाद सबको देते हैं। आशीर्वाद देने में किसी भी प्रकार का जातिगत भेदभाव नहीं करते हैं।

लहरतारा बस्ती के एक बुनकर का युवा पुत्र कई दिनों से स्वामीजी से मिलने के लिए घूम रहा है। कई बार पंचगंगा घाट पर पूछ आया है। कई लोगों ने आश्चर्यचकित हो पूछा भी 'क्यों हो कबीर, तुम क्यों स्वामीजी का दर्शन करना चाहते हो ? तुम मुसलमान हो और स्वामीजी सनातनी हैं। युवा बुनकर चौंका, 'क्यों जी, क्या कपड़ा बुनने मात्र से कोई मुसलमान हो जाता हैं ? यह बात हैं तो ईश्वर सबसे बड़ा मुसलमान है। उसी ने तो इस जगतवस्त्र को बुना है। सूत उसका अपना है। वही इसका प्रयोक्ता भी है। वही जब जैसा चाहता है कपड़े को वैसा रंग देता है। कपड़ा हिन्दू भी बुनते हैं और मुसलमान भी। जोगी का तो यह पारिवारिक पेशा है। फिर स्वामीजी तो पूरी मनुष्य जाति के गुरु हैं। भक्ति में सबका अधिकार है। भक्ति का द्वार सबके लिये खुला है। मैं भी स्वामीजी से कुछ निवेदन करना चाहता हूँ। स्वामीजी भक्ति के दक्षिणी स्वरूप को उत्तर भारत में भी स्थापित करना चाहते हैं। भक्ति का रास्ता सबके लिए खुला रखिये। जो भी आना चाहे आये। सम्प्रदायों, पंथों, मतान्तरों के विवाद समाप्त हों। अनाचार बन्द हो। साधना आराधना के नाम चलनेवाली कामक्रीडायें खत्म हों। तभी न हम समाज को फिर से संगठित कर सकेंगे। असंगठित और असंशोधित हिन्दू धर्म अपने लिए बुरा है। देश के लिए बुरा है। असंगठित और टूटा समाज तरक्की का रास्ता नहीं पार कर सकता है।

'मैं स्वामी रामानन्द से दीक्षा लेना चाहता हूँ। वे महात्मा भेदभाव से परे परमहंस हैं। वे मुझे अवश्य दीक्षा देंगे।' युवक की आँखों में श्रद्धा, विश्वास

ज्योति बनकर चमकने लगे। उसने भीड़ पर दृष्टि डाली। भीड़ में आश्चर्य और उपेक्षा थी वह आगे बढ़ गया। लहरतारा के लोग तो कनाफूसी करते ही हैं, शहर के लोग भी उन जैसे हैं। क्या संन्यास केवल ब्राह्मण का धर्म है? क्या अद्विज को विराग उत्पन्न नहीं हो सकता? क्या वे केवल संसार में खप जाने के लिये बने हैं? भोग और रोग के लिये बने हैं? काशी केवल द्विजों, ब्राह्मणों और कर्मकांडियों की नहीं है। यही दुनिया का एकमात्र नगर है जहाँ चांडाल भी राजा है। यहाँ के डोम राजा में इतनी शक्ति है कि वह राजा हरिश्चन्द्र को नौकर रखे। काशी के ब्राह्मणों की बुद्धि मारी गयी है। क्या डोम राजा के बिना मुक्ति हो सकती है? मुक्ति के लिए डोम राजा के यहाँ जाना जरूरी है। डोम राजा की आग ही पवित्र है। किसी दूसरी आग से तुम्हारा शरीर नहीं जलाया जा सकता। ऐसी महत्ता है डोमराज की। डोम मुक्ति दे सकता है। किंतु योगी-जुलाहा गुरुमंत्री नहीं ले सकता। कैसा न्याय है? यह न्याय नहीं। ब्राह्मणों की मूढ़ता है। शास्त्र का आधार बुद्धि है। जो शास्त्र बुद्धि से नहीं समझाया जा सकता उसे मानना बेमतलब है।

काशी के पंडितो, ध्यान से सुनो। कबीर भी पूर्वजन्म में ब्राह्मण था। रामदेव की सेवा में चूक हो गयी। मैं जुलाहा हो गया। तुम मुझे भगवान् के भजन से नहीं रोक सकते हो। निराशा की बात नहीं। मेरे पास लोक और शास्त्र दोनों के प्रमाण हैं। न भी हों तो क्या? सच्चा आदमी खुद प्रमाण है। आदमी खुद ही अपना भाग्य बनाता है। साधना, परिश्रम और निष्ठा द्वारा सिद्धि प्राप्त करता है। अशुद्ध आदमी शास्त्रों में प्रमाण खोजता है। शुद्ध हिया वाला अपने भीतर प्रमाण पाता है। घट-घटवासी राम से बड़ा प्रमाण और क्या है? देवल, मस्जिद, काबा-कैलास प्रमाण के स्थान नहीं हैं। मैं भी स्वामीजी को अपना गुरु बनाकर साधना करूँगा। बिना सद्गुरु के ज्ञान नहीं हो सकता। मुझे ज्ञान चाहिये अपने लिए, संसार के लिए। सनातनियों के दबाव में आकर स्वामीजी ने मुझे शिष्य बनाना स्वीकार नहीं किया तो मैं उनके नाम जप को ही अपना गुरु मान लूंगा। साक्षात् देहधारी गुरु नहीं। पुस्तक गुरु नहीं। नाम गुरु ही सही।

लोग गुरु को घेरे हैं। घेर कर मुझे रोंक रहें हैं। किन्तु उजाले को कब तक रोक सकोगे ? उसे तो बाहर आना ही है। बन्द सूरज किसी को रोशनी नहीं दे सकता है।

मौलवी-मुल्लाओं को कबीर से बड़ी आशा है। एक काफिर का लड़का हमारे घर में पल रहा है। लक्षण से लगता है लड़का तेज निकलेगा। नीरू नीमा के घर पर मुल्लाओं की भीड़ लगी रहती। सब उसकी पढ़ाई की चिन्ता करते। ऐसी तालीम दी जाय कि यह लड़का सारी दुनिया में इस्लाम को रौशन करे।

विचित्र लोग हैं। मैं मुल्लाओं की आशा को पूरी करूँ। यह उन्हें कबूल है। हिन्दू धर्म शुतुर्मुर्ग हो गया है। वह जातिपाँति में, छुआछूत में मूड़ी गाड़े है। बाहर क्या हो रहा है ? इसकी उसे खबर नहीं। लोग विधर्मी हो जायँ यह ठीक। किन्तु अपने को सुधारना नहीं चाहता। इस्लाम राजधर्म है। राज-धर्म स्वधर्म नहीं बन सकता। जो लोग भी इस्लाम कबूल कर रहे हैं, लोभ, मोह और क्रोध के वश कर रहे हैं। वह अन्तर का परगास नहीं है। भीतर की रोशनी नहीं है।

आदमी भीतर की रोशनी से बनता है। बाहर की रोशनी जल्दी बुझती है। वैसा असर भी नहीं करती है। हिन्दू हो या मुसलमान दोनों में भीतर का परगास खतम है और भीतर सब एक हैं। इसलिए परगास एक है। पांडे हों या मौलवी कोई आतमराम को नहीं जानत। आतमराम बिना सब झूठा है। काबा, काशी, मथुरा सब बेकार हैं।

मौलवियों को उन्माद है। धर्म बढ़ाने की। कौन-सा धर्म ? कैसा धर्म ? सबका धर्म एक है। भगवान् एक है। सभी एक ही खुदा के बन्दे हैं। इबादत का ढंग अलग हो सकता है। कोई सवारी और कोई पैदल चलकर सफर तय करता है। अगर तुम सबको अपने मजहब में लाना चाहते हो तो सभी मजहबों को अपना मान लो। बस वह मजहब तुम्हारा हो गया। इबादत के सारे ढंग,

रास्ते तुम्हारे हो जायँ। सबको अपना मानो। यह मानते ही तुम्हें अपनी गलतियाँ समझ में आ जायँगी। आपस के वैर खत्म हो जायेंगे। कैसे लोग हैं ? भगवान् के दरबार में भी झगड़ा करते हैं। खुदा की राह झगड़े की नहीं है। कबीर यह बात मुल्लाओं से कहते। पंडितों से कहते।

लोग देखते हैं। झुण्ड के झुण्ड दरवेश आते हैं। बड़ी-बड़ी दाढ़ी। लम्बे बाल। गले में दर्जनों मालाएँ। हाथ में सुमरिनी। अनेक के गले में जंतर भी होते। सब कबीर को छोटा समझ कर आशीर्वाद देना चाहते। दुआ माँगते। किन्तु कबीर का सामना होते ही सब भूल जाते। कबीर को सुनने में तल्लीन हो जाते। अपनी बातें हवा हो जाती हैं।

●

तनना-बुनना तजा....

भक्तों ने कबीर को स्वामीजी से मिलने नहीं दिया। कबीर भीड़ के रेले को चीरकर स्वामीजी के निवास के दरवाजे तक किसी तरह जा सके। किन्तु पहरेदार शिष्यों ने रास्ता रोक दिया। जोगी, जुलाहा, कोरी का आश्रम प्रवेश वर्जित है। पतित, शूद्र, अतिवर्णाश्रमी, पंचमकारी आदि को आश्रम में घुसने नहीं देंगे। इनके प्रवेश से हमारा सम्प्रदाय भी और सम्प्रदायों के समान ही पतित हो जायगा। जोगियों का क्या भरोसा ? आश्रमभ्रष्टता ने इन्हें अहंमन्य बना दिया है। योग साधक अपना सम्बन्ध लोक से न जोड़कर शून्य, आकाश और ब्रह्मलोक से जोड़ता है। गगनगुफा में बैठकर दुनिया की नश्वरता और तुच्छता का अनुभव करता है। स्वामीजी ने देशभर की यात्राएँ की हैं। कौलों, वामाचारियों, सिद्धों, तांत्रिकों, नाथों, कापालिकों, सहजियों ने साधना के नाम पर भयंकर अव्यवस्था फैला रखी है। लोगों के रोजगार चौपट हो रहे हैं। साधना के नाम पर अनेक जातियों ने अपने रोजगार छोड़ दिये हैं। उत्पादन गिर रहा है। रोजगार खतम है। समाज में छुआछूत बढ़ रहा है। कुछ जातियों को अछूत समझा जा रहा है। परोपजीवी जातियाँ हाथ का श्रम करनेवालों को दबा रही हैं। उन्हें छूते डरती हैं। उनसे परहेज करती हैं। कहीं छू न जायँ। इसका ध्यान रखती हैं। पिछड़ी जातियाँ विदेशी विधर्मियों द्वारा सताई जाती हैं। अपने लोग भी घृणा करते हैं। उन्हें वेद पढ़ने की मनाही है। पूजा का अधिकार नहीं है। मंदिरों में जाने से रोका जाता है। इस व्यवस्था का परिणाम है कि देश को परदेशी रौंद रहे हैं। लोभ, मोह और वलात् धर्म-परिवर्त्तन कराये जा रहे हैं। वैष्णव समाज इस अव्यवस्था को खतम करने के लिए कटिबद्ध है। वैष्णव चाहते है कि लोग अपने जातिगत पेशे में रहकर धर्मपालन करें। छुआछूत बुरा है। सभी में ईश्वर है। सभी उसकी सन्तान हैं। किन्तु अपना धंधा छोड़ना अव्यवस्था को बढ़ावा देना है। भ्रष्ट साधना सामाजिक

अव्यवस्था पैदा कर रही है। आश्रमों में साधना-भ्रष्ट व्यक्ति का प्रवेश वर्जित है।

कबीर स्वामीजी का दर्शन न पाकर लौट आये। किन्तु निराश नहीं हुए। बड़ा काम और बड़े उद्देश्यों वाले व्यक्ति जल्दी निराश नहीं होते। निराशा अल्पजीवी प्रज्ञा है। बड़े कामों के लिए आशा की बड़ी डोर चाहिए। कबीर परेशान अवश्य हैं। तनना-बुनना सब छूट गया है। कई दिन हो गये, करघे पर हाथ नहीं रखा। गाहक लौट रहे हैं। इस समय विदेशों में बनारसी वस्त्रों की माँग बढ़ी है। यही कमाने का वक्त है। आस-पास के बुनकर रात-दिन एक कर कमाई में लगे हैं। किन्तु कबीर के घर में सन्नाटा है। करघे की ढक-ढक, खप-खप बन्द है। न केवल कबीर बल्कि पूरा परिवार शून्य में पहुँच गया है। माँ रो रही है। पिता बेहाल हैं। क्या हो गया है कबीर को? क्यों बच्चा, इस तरह घर का काम-काज कैसे चलेगा? क्या खाओगे? क्या साधु-सन्तों को खिलाओगे? माता-पिता वृद्ध हुए। कुछ उनका भी तो ख्याल करो। संतान बुढ़ौती के सुख के लिए होती है। कृषकों, बुनकरों ओर व्यवसायियों के परिवारों में पुत्र बुढ़ौती का अमानत धन है। नीमा और नीरू का यह अमानत-धन स्वामी रामानन्द के चक्कर में घूम रहा है।

एक तरफ बनारसी उद्योग तेजी पर हैं तो दूसरी ओर अकाल अपनी छाया डाल रहा है। वर्षा के अभाव में ताल-तलैया, नदी-नाले सूख रहे हैं। पशुओं के चारे खतम हो गये हैं। बड़ी तेजी से हरियाली सूख रही है। जानवर धरती चाटते-चाटते डायँ-डायँ कर रहे हैं। दूर-दूर तक फैले खेत बीरान हैं। खेतों में बड़ी-बड़ी दरारें पड़ गयी हैं। प्यास से छटपटाती धरतीमाता के ओठ फट गये हैं। फटी दरारों से पृथ्वी का सूखा हृदय अपनी करुण कहानी कह रहा है। रोती धरती के प्राण मुंह फाड़ निकल गये हैं। फटा मुँह पड़ा-पड़ा भयानक हो गया है। धरती किसी लावारिस मुर्दे सी सूख रही है। किन्तु इस मुर्दे में गन्ध नहीं है। गन्ध भी सूख गयी है। लोगों ने गोशालाओं के दरवाजे खोल दिये हैं। छुट्टे पशु इधर-उधर घूम रहे हैं। न घास है, न पानी।

बथान और खूंटे सूने हैं । बड़ी संख्या में जहाँ तहाँ पशु गिर कर मर रहे हैं। चीलों, गिद्धों, सियारों और कुत्तों की बन आयी है। सियार और कुत्ते डरावनी बोली में रो रहे हैं। लम्बी-लम्बी जीभ निकाल कर प्यास के मारे हाँफ रहे हैं। सियार दिन को भी गाँवों के पास निर्भय चक्कर लगाते हैं। गिद्धों की भीड़ बढ़ गयी है। उनके बड़े-बड़े डैनों से झप...झप...झप की आवाजें आती हैं। घरों पर गिद्ध बैठ रहे हैं। उनके भयानक चोंचों से लोग डर गये हैं। गिद्ध इतनी तेजी से पास से उड़कर घरों पर बैठते हैं कि लगता है वे आदमी पर भी बैठ जायेंगे।

अब भी क्या बैठना बाकी है? व्यक्ति पर बैठते तो व्यक्ति मरता। घर पर बैठ रहे हैं तो घर मर रहा है। गाँव, नगर, समाज मर रहा है। गिद्ध सबसे पहले जानवरों की आँखें निकालते हैं। फिर अंतड़ियाँ खोदने लगते हैं। कुत्ते और सियार उन्हें दौड़ाते हैं। वे उड़ उड़कर लोथड़ों पर बैठते हैं। कुत्ते पशु आँतों के टुकड़ों को मुँह में लिये घूम रहे हैं। उन्हें अगले दोनों पैरों से दबाये हैं। मुँह से नोचते हैं।

गाँव में दुर्गन्ध भर गयी है। नाक फट रही है। कहीं पैर रखने की जगह नहीं है। जिधर देखिए उधर ही मरे ढोरें की हड्डियाँ और मांस बिखरे हैं। तेज धूप के कारण लाशें और भी सड़ रही हैं। रास्ता चलना मुश्किल हो गया है। रास्ते से ठठरियों की ढेर कोई हटा नहीं रहा है। खेतों, खलिहानों, पेड़ों, घरों के छप्परों पर कौओं का काँव-काँव बढ़ गया है। सारी पृथ्वी गिद्धों और कौओं से भर गयी है। हजारों कौए चोंच खोले उड़ रहे हैं। सूखी धरती पर चोंच मारते हैं और गिर जाते हैं। तितली, मैना, गौरैया, तोते आदि पक्षी हजारों की संख्या में मर रहे हैं। लोगों के अनाज खतम हो गये हैं। कोई उधार देने की स्थिति में नहीं है। चूल्हे ठंडे हो रहे हैं। जिनके पास कुछ थोड़ा अनाज बचा है वे उसे बहुत सावधानी से खर्च कर रहे हैं। किसी को देने की तो बात ही नहीं है। उल्टे लोगों ने अनाजों को छिपा दिया है। बेचने वाले अकाल का फायदा उठाने के चक्कर में हैं। लोगों के पास पैसा भी नहीं है। जिनके

पास थोड़ा बहुत पैसा है भी वे भी बजारों में घंटों घूमने के बाद थोड़ा अनाज पाते हैं। अनाज के लिये दूकानों पर भीड़ लगी है। मानो कोई मेला है। इस मेले में हँसते चेहरे के स्थान पर उदास, सूखे, निराश और लटके मुँह हैं। धँसी आँखों में दुख लहरा रहा है। भूख की ज्वाला से अँतड़ियों के कुएँ सूख गये। मनुष्य केवल पीठ की पतली दीवार के सहारे खड़ा है। पेट ने जवाब दे दिया है। पीठ न होती तो मनुष्य भी न होता।

रोज मजदूरी करके कमाने खानेवालों की मजदूरी बन्द हो गयी है। कोई काम करा नहीं रहा है। काम के बदले अनाज देना होगा। अनाज कौन दे? कहाँ से दे? मजदूर ज्वार, बाजरा, खेसारी, चीना, मड़ुआ, कोदो, सावाँ, कुलथी, साठी, जौ, जई जैसे कुअन्न भी लेने को तैयार हैं। काम और अन्न के लिये खुशामद कर रहे हैं। चिरौरी कर रहे हैं। किन्तु कोई काम कराने की स्थिति में नहीं है। काल-अकाल की डायन लाल-पीली आँखों में घूम रही है।

कुँओं पर बाल्टियाँ टकरा रही हैं। बाल्टियाँ लड़ते-लड़ते पनिहारिनें आपस में लड़ रही हैं। पहर रात रहते ही कुँओं पर भीड़ जुड़ जाती है। लोग कुँओं पर पहरा दे रहे हैं। कोई अधिक पानी न ले ले। सबको जल्दी है। सूरज उगते-उगते कुँए सूख जाते हैं। कुँए स्वयं अपनी जीभ चाटेंगे। पानी और सूर्य में बैर है। सूर्य को देखने के पहले ही पानी गायब हो जाता है। कहीं सूर्य देवता पानी देख न लें वरना वे भी अपना हिस्सा माँगने लगेंगे। बाल्टी पटकते रहिए एक बूंद पानी नहीं निकलेगा। पनघटों पर घड़ों की भीड़ लगी रहती है। निराश होकर लोग घड़ों को पनघटों पर छोड़कर घर चल देते हैं। मुँहवाये घड़े दिन-दिन भर सूर्य की आराधना करते हैं। तेज गर्मी में सूखते हैं। पड़े रहते हैं। सार्वजनिक कुओं का हाल बुरा है। घरों के कुएँ छिपाये जा रहे हैं। चोरी के धन के समान उनकी रक्षा की जाती है। कोई पानी देनेवाला नहीं है। कौन पानी दे? सभी तो मर रहे हैं। धरती गर्म तवा हो गयी हैं। उस तवे पर रोटी नहीं, आदमी की सिकाई हो रही है।

लोग पाकड़, बरगद और पीपल का गोदा (फल) खाकर जी रहे थे। अब वे फल भी खतम हैं। कच्चे-पक्के गूलर टूट गये हैं। पेड़ के नीचे भीड़ जुटी रहती है। एक भी फल दिखा कि लोग झपटने लगते हैं। आम की गुठलियाँ बीन ली गयी हैं। उन्हें फोड़-फोड़ कर, पीस कर आटे की रोटियाँ बनाकर लोग पेट भर रहे हैं। गुठलियाँ भी खतम हैं। जड़ें खोदकर, पत्ते तोड़ कर कभी उबालकर और कभी कच्चा ही लोग दोजख का गड्ढा भर रहे हैं। दौनी के वक्त बैलों ने अनाज खाकर गोबर किये थे। उनसे निकले अनाज पिछले साल ही खत्म हो गये। इस वर्ष न दौनी हुई, न जानवरों ने अनाज खाया, न गोबरौरा अनाज मिला। इस अनाज से गोबर की गन्ध आती है। बहुत धोने और भूनने पर भी गोबर अपना प्रभाव नहीं छोड़ता। छोड़े भी कैसे ? जानवरों के पेट में पचा है। गोबर के रूप में निकला है। गोबर ही तो है। अन्त तक अपना सड़ा स्वाद बनाये रहता है। किन्तु आज यह सड़ा खाद भी नहीं मिल रहा है। अकाल में सड़ा भी ताजा लगता है। भूखे पेट का स्वाद भी बदल जाता है। दरिद्र जीभ लपक कर सबका स्वागत करती है। बिना पहचाने सबको भीतर धकेल देती है। फसल के दिनों में लोग चूहे के बिलों को खोदकर अनाज निकालते थे। उनसे चूहे भी निकलते थे। चूहों और बिलों के अनाजों को खाकर कुछ समय कट जाते थे। दिन भर काम और रात्रि में चुहरौरा एवं चूहों का भोजन। इस वर्ष वह अवसर भी नहीं मिला। न अनाज हुआ। न चूहों ने बिल बनाये। खेत कटने के बाद गिरे दानों को चुनकर खाने की नौबत भी नहीं आयी। कहीं अनाज हो तब न। ये स्थितियाँ तो तब आती हैं जब उपज हो। इस सूखा और अकाल की सोलहो दंड एकादशी से तंग चूहे परदेश चले गये। किन्तु मनुष्य कहाँ जाय ? यह घर बसाना महँगा पड़ा। खानाबदोश होता तो चूहों की तरह कहीं चल देता। किसी भी बिल में रह लेता। आकाश में प्यासी टिटहरी चिल्ला चिल्लाकर चुप हो जाती है। फिर चिल्लाती है। फिर चुप होती है। कितना डरावना लगता है टिटहरी का बोलना।

भयानक सूखे से महुए भी कम ही गिरे । गिरे भी तो एक महुआ पर दस-दस आदमी गिरते हैं । झरबेरियाँ भी खतम हो गयीं । बच्चे दिन भर झरबेरियों में लटके रहते हैं । ताड़ और खजूर के पेड़ों पर चढ़ना सबके वश का रोग नहीं । इसलिये इनके फल बचे हैं । देशी खजूर के फलों में गूदा नही होता । फिर भी लोग उन्हें चूसते हैं । ताड़ का फल काटने के लिये एक आदमी पेड़ पर चढ़ता है और सौ आदमी उन्हें पाने के लिए पेड़ के नीचे इकट्ठे हो जाते हैं । एक भी वेली मिली कि लेकर भागते हैं । लूट मची है ।

वर्षा में मछलियाँ बेच दी जाती थीं । किन्तु घोंघों को लोग उबालकर खाते थे । इस वर्ष वह स्थिति भी नहीं है । न बरसात है, न घोंघे हैं । घोंघा तो इस साल देखने को नहीं मिलेगा । बरसात का बहुत बड़ा हिस्सा घोंघों पर ही कट जाता था । मेढक खाना सबके वश का नहीं है । किन्तु सूखे में मेढक भी नहीं दीखते । वे भी पानी के साथ आते हैं ।

इस साल न पानी है, न मेढक हैं । पिछले आषाढ़ में ही एकाएक बाढ़ आ गयी । खेतों में अचानक पानी भर गया । चूहे भाग न सके । खेत से जान बचाकर मोटी मेड़ों पर चढ़ आये । किन्तु लोग उनके पीछे पड़ गये । जिसे देखिए वही चूहा पकड़ रहा था । किसी ने पचास, किसी ने सौ चूहे पकड़े । गाँवों में दो दिनों तक चूहाभोज हुआ । अकाल में चूहे भी गायब । भूखे कब तक दंड पेलते ? आखिर भागना पड़ा । लोग पेड़ों की पत्तियाँ साग की तरह खा रहे हैं । कभी उबालते हैं, कभी बिना उबाले । कौन उबाले ? भूख ने स्वाद को बढ़ा दिया है । स्वाद को कौन देख रहा है ? जीभ किसी सामान की परीक्षा नहीं करती है । उसका काम केवल मुँह में गयी वस्तुओं को पेट में धकेल देना है । लोगों ने निमकौड़ियों को भी खाना आरम्भ कर दिया है । अब निमकौड़ियों में स्वाद आ गया है । मीठी लगने लगी हैं । अँतड़ियाँ ऐंठ रही हैं, मरोड़ उठते हैं । उलटी, कै । डकार पर डकार । पेट में दर्द है । लोग रास्ते में पेट पकड़े बैठे हैं । उठने का साहस नहीं हो रहा है । गश्त आ रहा है । आँखों के आगे अँधेरा है । हैजा फैल गया है । अपच, अतिसार, संग्रहणी आदि ने हैजे का रूप

ले लिया है। लोग मर रहे हैं। बड़ी संख्या में मर रहे हैं। कोई लाश उठाने के लिए तैयार नहीं है। भूखे बच्चे माँ का स्तन चिचोड़ रहे हैं। स्तन में दूध न पाकर बिलख रहे हैं। रोते हैं। दाँत काटते हैं। नखों से नोचते हैं। हाथ से पीटते हैं। किन्तु कुछ मिलता नहीं है। माताएँ रो भी नहीं पाती हैं। बार-बार टीसती हैं। मुँह सूखे अमरूद-सा काला हो गया है।

स्तनों को चिचोड़ते-चिचोड़ते माँ और बच्चे दम तोड़ देते हैं। लाशों में बच्चे माँ की छाती पर लुढ़के पड़े हैं। गिद्ध, गिद्ध, गिद्ध। केवल गिद्ध। कहाँ से आ गये इतने गिद्ध ? गिद्ध प्रलय। लगता है अब केवल गिद्ध रहेंगे। मानव आबादी खतम हो जायगी। रह जायेंगे केवल गिद्ध, कौए, सियार और कुत्ते। किन्तु इन्हें कौन समझाये कि धरती मनुष्य पर टिकी है। मनुष्य के मरते ही तुम भी मरने लगोगे। मनुष्य सबका केन्द्र है। मनुष्य देवताओं का भी केन्द्र है। मनुष्य की गृहस्थी में सबको भोजन मिलता है। मनुष्य नहीं तो कुछ नहीं। सबका आधार भोजन है। गृहस्थ भोजन का आधार है। गृहस्थ के बिना भोजन भजन कुछ नहीं रहते हैं।

कबीर दुखी हैं, क्या होगा भगवान ? इस अकाल से कैसे पार पाया जाय ? एक तरफ यह विकट अकाल है। दूसरी ओर शासक वर्ग रंगरेलियों में मस्त है। धर्म के नाम पर शाक्त, शैव, कापालिक आदि सम्प्रदाय अपने मठों में योगिनी साधना में लिप्त है। मांस, मदिरा, मीन, मुद्रा और मैथुन की प्रधानता ने देश को कमजोर कर दिया है। सामन्त वर्ग प्रजा की गाढ़ी कमाई खाकर उनकी उपेक्षा करता। अत्याचार में लगा है। पुरोहितों को साथ ले मिहनत कर उत्पादन में लगे लोगों को अछूत समझ रहा है। पूरा समाज विकृत हो गया है। उस पर कोढ़ में खाज जैसा बलात् धर्मपरिवर्त्तन। शासन अकाल रोकने में अक्षम है। शासन की शोषण नीति प्रजा की नहीं अपनी सुविधाओं में लगी है। न सिंचाई की व्यवस्था है। न अन्न के आपातकालीन भंडार हैं। धार्मिक उन्मादों, बड़े साहूकारों, जमाखोरों की बन आयी है। वर्णव्यवस्था में फँसे लोग त्राहि-त्राहि कर रहे हैं। ब्राह्मण भी समझ रहे हैं। अकाल में

सीधा-पानी बन्द हो चले हैं। जब गृहस्थों के चूल्हे ठंडे हो रहे हैं तो ब्राह्मणों, संन्यासियों और भिखारियों को कौन पूछता है ? किन्तु ब्राह्मण अपनी श्रेष्ठता का अहंकार छोड़ नहीं रहा है। वह प्राण छोड़ देगा किन्तु शास्त्र, पोथी और पुराण का अहं नहीं छोड़ना चाहता है। शूद्रों के रोजगार खतम हैं। भिक्षा एवं दान पर जीनेवाली जाति तथा नित्य मजदूरी करके पेट भरनेवाली जातियाँ और समूह भूख के प्रथम शिकार बनते हैं। ब्राह्मण अपनी श्रेष्ठता के दंभ में जी लेगा। किन्तु शूद्रों का क्या होगा ? उन्हें भी जीने का कोई आधार चाहिए।

नया सामाजिक संगठन आवश्यक हो गया है। राज्य सत्ता के दबाव में लोग विधर्मी बनकर सत्ता के अनाचार का मूक समर्थन कर रहे हैं। धर्म परि-वर्त्तन के पीछे नये शासकों के प्रति समर्थन जुटाना मुख्य उद्देश्य है। जातिवाद ने भी यही किया था। धर्मपरिवर्त्तन भी यही कर रहा है। बहुमत जनता मुसलमान शासकों को अपनी श्रद्धा, स्वीकृति और समर्पण नहीं दे रही है। उन्हें हिन्दुओं पर विश्वास नहीं है। हिन्दुओं को उन पर आस्था नहीं है। दोनों अपने-अपने धर्मों को श्रेष्ठ मानते हैं। दोनों की राह खराब है। दोनों से समाज का कोई हित होने वाला नहीं है। किन्तु कोई किसी का सुन नहीं रहा है। हिन्दुओं में शैव नेतृत्व पुराना पड़ गया है। भाँग, गाँजा, धतूरा आदि कोई भी नशा केवल मन को भुलाने के लिये है। शैव अपने को छल रहे हैं। समाज को छल रहे हैं। नशाखोर सत् समाज नहीं बना सकते। सत् का अर्थ है साधु। साधु पुरुष ही सत् समाज बनाते हैं। हिन्दू-मुसलमान दोनों में साधु का अभाव है। इसलिये दोनों की राह बिगड़ गयी है। दोनों ही सतगुरु के मार्ग पर नहीं चल रहे हैं। एक पत्थर पूजा को सत्य मानता है। दूसरा बांग देता है। मानों खुदा बहरा है। वह अपने भीतर के ईश्वर को नहीं देखता है। अन्तः सत्य के अभाव में बाह्य कलह बढ़ रहे हैं।

कबीर की माँ घूम रही हैं। कहाँ है मेरा कबीर ? सब काम-धाम छोड़कर मुड़ियों के पीछे घूम रहा है। अकाल का समय है। संयोग से कपड़े का रोजगार

ठीक चल रहा है। हमें इस समय कमाना चाहिए। किन्तु बेटा कबीर रोजगार छोड़े हैं। न अपनी चिन्ता है, न घर की। घर में खाने के लाले पड़े हैं।

कबीर माता-पिता को समझाते हैं—कैसा अकाल है? लोग भूख शांत करने के लिए बुरे कर्मों पर उतर आये हैं। बेटा-बेटियों को बेच रहे हैं। इज्जत लुटा रहे हैं। किन्तु फिर भी भूख नहीं मिट रही है। काली, कराली, विकराली भूख। अनन्त भूख। अनन्त का अन्त करनेवाली भूख। पेट की आग बड़वागि से भी भयानक है। यह सब कुछ खतम कर रही है। न्याय, नैतिकता, मान-मर्यादाएँ सब गिर गयी हैं। अकाल की दावागि बढ़ती चली आ रही है। आदमी और जानवर साथ घिर रहे हैं। जल रहे हैं। अब शायद ही कोई बच सके। ऐसे में केवल अपने पेट की चिन्ता करना पाप है। समाज का दुःख हमारा दुःख है। पूरा खलक अपना है। मैं पूरे खलक का हूँ। आदमी अपने को फैलाना चाहता है। किन्तु वह अहंकार के घेरे को नहीं तोड़ पाता है। घोंघा और कछुए जैसा अपने में वन्द रहता है। अहं के घेरे को तोड़कर सबसे मिलना परमात्मा की साधना है। हमारा ईश्वर मनुष्य के भीतर है। बाहर के सत्कार्यों में है। अपने को फैलाने का अर्थ है ईश्वर तक पहुँचना। ईश्वर को पाने के लिए किसी जोग, जाग, तप, तीर्थ और अरचा-पूजा की जरूरत नहीं है। मेरी मिहनत का हर हिस्सा लोगों को अकाल से मुक्ति देने के लिए है। यही भगवान् की भक्ति है, पूजा है, अरचा है। माँ तुम घबराओ नहीं। मैंने संन्यास नहीं लिया है। जब भगवान् सब जगह हैं तो संन्यास कहाँ और किससे लूं? केवल दुखियों का दुःख दूर करना चाहता हूँ। यह दुःख कैसे दूर हो? धर्म का मूल मतलब है दुःख से छुटकारा। दुखी को सुखी बनाना। जो धरम दुखी को सुखी नहीं बनाता वह अधरम है। आनन्द उसका अंतिम लक्ष्य है। इसीलिए हमारे भगवान् सच्चिदानन्द हैं। जो कुछ दिखाई पड़ रहा है वह सब सत् है। उसके भीतर का जीवन चित् है। ये दोनों हम सबके पास हैं। जो नहीं है वह है आनन्द। आनन्द भी घट-घट में मौजूद है। किन्तु आदमी उसे बाहर खोजता है। कस्तूरी कुंडल बसै मृग ढूंढ़ै वन माँहि। किन्तु आज तो सत् और चित् ही संकट

में है। विदेशी राज से, धरमहीनता से, अकाल से दोनों का अकालमरण हो रहा है। हजारों-लाखों सत् मट्टी हो गये हैं। ढेर के ढेर चित् समाप्ति की ओर हैं। संन्यास-साधना इसी में सुफल होगी जब हम सत् चित् के इस विराट् रूप की रक्षा कर लें।

मैं स्वामी रामानन्दजी से दीक्षा लेना चाहता हूँ। बिना गुरु के ज्ञान नहीं हो सकता। गुरु गोविन्द से भी बड़े हैं। स्वामीजी ने सत्, चित् और आनन्द की साधना की है। वे सबकी मुक्ति का मन्त्र देते हैं। कठिनाई उनसे मिलने की है। महात्मा के अगल-बगल ऐसे लोग होते हैं जो नहीं चाहते थे कि उनसे अलग कोई आदमी महात्माजी के पास आए। वे महात्माजी के संरक्षक बन जाते हैं। उस दिन भी यही हुआ। शिष्यों ने मुझे आचार्यजी से मिलने नहीं दिया। जब कोई व्यक्ति संपूरन हो जाता है। बड़ा बन जाता है। तब लोग उसे घेर लेते हैं। सोना-हीरा के समान पहरा देते हैं। केवल अपनी सम्पत्ति बनाए रखना चाहते हैं। लोग देखें भी। प्रभावित भी हों। किन्तु उसके नजदीक न आयें। दूर ही रहें। चेले स्वामीजी को ऐसी ही संपत्ति बनाना चाहते हैं। संसार में पद-पद पर रगड़ा है। लोग कमजोर को रगड़ देना चाहते हैं। झगड़ालू व्यक्ति सद्गुरु को भी घेर लेते हैं। महात्माजी से मिलने के लिए मुझे कोई जुगुति सोचनी है। स्वामीजी से मिले बिना मुझे चैन नहीं है। न लोक सेवा हो पाती है। न करघे पर हाथ जाता है।

इस अकाल में भी लोग जोड़ने में लगे हैं। लूट रहे हैं। न कुटुम को पूछ रहे हैं, न पड़ोसी को। साधुओं की बात कौन कहे। गाँव, नगर सब जगह एक हाल है। गिरहथ संन्यासी जो जहाँ मौका पाता है बटोर रहा है। भगवा पहनता है। बकरे जैसी दाढ़ी बढ़ाए है। माला, छापा, तिलक लगाता है किन्तु दिल गन्हा रहा है। मन में मैल भरी है। माला फेरता है। ध्यान भगवान् का करता है। मन संगरह पर है। इंद्रियों की लालसा बढ़ गयी है। नहाने-धोने से क्या होगा, भीतर मैल जमी है। भीतर की मैल कैसे धुलेगी ? संत का मुख्य

काम है, भीतर की मैल धोना। हिरदय को साफ करना। मन को मैल से मुक्त करना।

मन की गंदगी ने हमारे हिरदयों को कठोर, दुखित और संकीरण बना दिया है। हम अपने भाइयों से ही घिरणा करते हैं। वरणव्यवस्था, जाति-पाँति, छुआछूत सब हमारी संकीरणता के फल है। ऊँची जातियाँ जिनका अगुआ बाभन है, नकली महानता के अहंकार में ऐंठा है। वह मेहनत करने वालों, कारीगरों, सफाई कर्मियों को नीच समझता है।

अकाल का असर बढ़ रहा है। कुछ दिनों बाहर से माँग ही माँग थी। रोजगार अच्छा चला। किन्तु मात्र विदेशी माँग के बल पर कोई व्यापार कब तक चलेगा ? विदेशी व्यापार की प्रतियोगिता भी बड़ी है। प्रतियोगिता कम करने के लिए लोग साम्राज्य फैलाते हैं। साम्राज्य के संरक्षण में व्यावसायिक द्वन्द्व पर काबू रखते हैं। एक तरफ कच्चे सस्ते माल प्राप्ति को निश्चित करते हैं, दूसरी ओर महँगे और तैयार माल के लिए बाजार का संरक्षण करते हैं। किन्तु मूल बाजार तो अपना देश है। भारत के पास कभी कोई राजनीतिक बाजार रहा भी नहीं। यहाँ व्यापार बढ़ाने की मुख्य जिम्मेदारी वणिकवर्ग की है। शासन द्वारा इस काम में बहुत कम दिलचस्पी ली जाती है। हमारा व्यापार, हमारे उद्योग और उत्पादन किसी साम्राज्य के प्रसार अंग या उनके आधार पर चलनेवाले नहीं हैं। हमारे व्यापार-विस्तार का मूल आधार सामानों की अपनी विशेषता और गुणवत्ता है। न कि साम्राज्य और सेना।

अकाल के कारण कारीगरों की कार्य क्षमता में कमी आयी है। सूखा और अवर्षण के कारण माल में जरूरी चमक नहीं आ रही है। गाँवों के आस-पास का हवा-पानी बदला है। अकाल की दहशत ने लोगों में काम का उत्साह कम कर दिया है। बाहर के व्यापारी भारत नहीं आना चाहते हैं। व्यापारियों के आवागमन मार्ग रुक गये हैं। धीरे-धीरे बाहर से आने वाली माँग कम हो गयी है। अपने यहाँ शादी विवाह बन्द है। शायद ही किसी गाँव में विवाह का बाजा बजे। अनपासन, मुंडन, जनेऊ, भूत-परेत से मुक्ति आदि भी नहीं

हो रहे हैं। कहीं-कहीं उपचार मात्र दीख जाय यही बहुत है। माल बिके तो कहाँ ? कपड़े की जगह खाने के बाद है। कपड़े के बिना रहा जा सकता है किन्तु पेट तो माननेवाला नहीं है।

दुकानों पर चावल का कूड़ा बिक रहा है। खुद्दी के लिये भीड़ लगी है। चावल के अत्यन्त महीन कण और धान के छिलके का अत्यन्त बारीक अंश इतने मिल जाते हैं कि निकालना कठिन होता है। सामान्यतः उसे जानवर खाते हैं किन्तु इस समय तो वह मनुष्य को भी अलभ हो गया है। दूकानदार रखकर भी इनकार करते हैं। पैसों की माया में लोग संकट का फायदा उठा रहे हैं।

मन नहीं लग रहा है। स्वामी रामानन्द जी से मिलने की जुगति नहीं दीखती है। शिष्यों ने ठान लिया है कि मैं स्वामीजी तक न पहुँचूं। कैसे पहुँच सकूँगा। बिना सद्‌गुरु के कब तक भटकना होगा ?

कबीर का मन भटकता रहा। तन में अशान्ति छा गयी। धन्धा छूटा। माता-पिता छूटे। गुरु भी नहीं मिल रहे हैं।

रात बीतने को आयी काशी की गलियाँ और सड़कें जग गयीं। गंगा स्नान के प्रेमी मन्त्र, स्तोत्र और नामोच्चार करते आने-जाने लगे। सड़कों पर बत्तियाँ टिमटिमा रही थीं। प्रकाश इतना क्षीण था कि लोग ठीक से अपने को भी नहीं देख पाते थे। अभी सड़कों पर झाड़ू पड़ने की धूल नहीं उड़ रही थी। एक भी दुकान नहीं खुली थी। घाट की सीढ़ियों में इक्के-दुक्के माली बैठने की कोशिश में लगे थे। तीर्थ पुरोहित भी आ डटे थे। सड़कों, गलियों एवं घाटों पर जगह जगह बैठे साँढ़ पागुर कर रहे थे। मन्दिरों में सुबह की आरती की तैयारी हो रही। सरकते अँधरे में आरती के दीपों की लौ जगमगाने लगीं। घण्टा घड़ियों के टनटन······टन। घनघन······घन घाटों को मुखरित करने लगे। नगाड़ों की चोटों ने अन्धकार को अत्यन्त झीना कर दिया है। दीपक की लौ के समान अँधेरा भी काँप रहा है। मलयानिल का मन्द स्पर्श सबको जगा रहा है। दूर किले से शहनाई की आवाजें आने लग गयी हैं। मल्लाह अपनी नावों को सँभाल रहे हैं। अनेक पालें तन गयीं। गंगा की बीच धारा में कोई वंशी बजा रहा है।

भैरवी की तान के साथ नाव सरक रही है। दंडधारी संन्यासी गंगा स्नान के लिए एक-एक कर आने लगे हैं। ब्रह्मचारी, उपाध्याय, आचार्य एवं वैदिक विद्वान स्नान के लिपे निकल कर रास्ते पर हैं। साबुन, तेल बेलपत्र, फूल तुलसी आदि बेचने वाले अपनी टोकरियाँ सजा रहे थे।

इस अँधेरे में एक संन्यासी बड़ी तेजी से गंगा की ओर बढ़े चले आ रहे हैं। उनके पीछे है उनकी शिष्य मंडली। शिष्यों का पीछे चलना शिष्टता भी है और आचार्य की तेजी भी। आचार्य के खड़ाऊँ की खट्-खट् सन्नाटे को चीर रही है। दूर तक सुनाई पड़ रही है।

आचार्य बड़ी तेजी से सीढ़ियाँ उतरने लगे। अचानक खड़ाऊँ सहित उनका पूरा पाँव एक किशोर पर पड़ा। वह जोर से चिल्लाया। रोने लगा। महात्मा उछल पड़े। क्या हुआ बेटा ? क्या हुआ ? रो मत। अरे तू रास्ते पर क्यों पड़ा है ? राम-राम कह। चोट तो नहीं लगी ? शीघ्रता में मैंने ध्यान नहीं दिया। तू यहाँ सोया है। प्रभु तुम्हारी कैसी लीला है ? जाने कितने बालक इसी तरह खुले आसमान में सड़कों और गलियों में पड़े हैं। आचार्य ने पुनः राम-राम का मन्त्र दुहराया। राम-राम कह बेटा। स्वामी जी ने कबीर के माथे पर हाथ रखा। आशीर्वाद दिया।

किशोर ने आचार्य के चरणों पर माथा टेक दिया। गुरुदेव, चोट तो लगी। किन्तु भीतर की चोट से मुक्ति पा गया। मेरा शरीर सद्‌गुरु के चरणपीठ का परस पाकर धन्य हो गया। बहुत दिनों की साध पूरी हुई। कचोट दूर हो गयी। साक्षात् सरकार गुरु महाराज का नाम प्रसाद मिल गया। श्रीचरणों की महती कृपा ने मुझे राम नाम का मन्त्र दे दिया। आज से कबीर गर्व पूर्वक अपने को महान् आचार्य रामानन्द का शिष्य कहेगा।

अब किसी अतिरक्त मन्त्र, उपदेश या आशीर्वाद की जरूरत नहीं। राम नाम का मन्त्र काफी है। पंडित होने के लिये एक या आधा अक्षर ही पर्याप्त है। मुझे तो सद्‌गुरु ने पूरा राम नाम दे दिया है।

युवक ने श्रीचरणों में अपना माथा टेका। स्वामी जी के मुख पर गम्भीरता की रेखाएँ उभरीं। वे जल्दी में थे। अपनी नियमित साधना में किसी प्रकार की बाधा नहीं चाहते थे। पूरी शिष्य मंडली जमा हो गयी थी। अरे यह तो जोगिया है। लहरतारा वाला जोलहवा का लड़का। सबेरे-सबेरे आचार्य को अपवित्र कर दिया।

आचार्य गंगा की सीढ़ियाँ उतरने लगे। शिष्यों ने कबीर को घेर लिया। 'अपवित्र, अस्पृश्य, अलायक। सबेरे-सबेरे गुरु का रास्ता रोकने वाला तू कौन है? न तो तू गुरु मन्त्र का अधिकारी है। न इस तरह से गुरु मन्त्र लिया ही जाता है। वर्षों-वर्षों की साधना, सेवा और तपस्या के बाद भी गुरु हमें मन्त्र कब देंगे कहना कठिन है। जब कि सभी द्विजकुलोत्पन्न, वेद निष्णात ब्रह्मचारी हैं। स्वाध्याय, संध्या और गुरु सेवा ही हमारे अध्यवसाय हैं। फिर भी अब तक गुरु कृपा नहीं हुई है। हमारे रहते एक अस्पृश्य को गुरुमन्त्र मिल जाय यह न तो सम्भव है। न हम इसे बर्दाश्त करेंगे।

जुलाहा तो अस्पृश्य है। यह हमारे साथ कैसे बैठेगा? स्त्री, शूद्र और पतित को वेद सुनने का अधिकार नहीं है। स्मृतिकारों ने इसके लिए कठोर दंड की व्यवस्था की है।

कबीर की वही दशा होगी जो पहले शूद्र बालक शंबूक की हुई थी। शंबूक भी हठी था। तपस्या कर संसार में अधर्म बढ़ाना चाहता था। गुरुदेव रामभक्त हैं। आचार्य श्री रामानुज से दीक्षा ली है। स्वयं राम हैं। रामानन्द हैं। भगवान् का कोई भी भक्त अवर्ण को गुरुमंत्र नहीं दे सकता। भगवान ने शूद्र बालक का वध कर महान् वैदिक मार्ग की स्थापना की थी।'

संस्कृत के अनेक विद्वानों ने शास्त्रार्थ की घोषणा की। अवर्ण को मंत्र देना शास्त्र से सिद्ध करना होगा। तभी यह लोकमान्य होगा। किन्तु कोई भी शास्त्रार्थ के लिए तैयार न था। अवर्ण को मन्त्र देनेवालों का तर्क 'आवश्यकता' पर अधिक बल देता था। ऐसे लोग शास्त्रों पर श्रद्धा तो रखते थे, किन्तु शास्त्रों के मनुष्य विरोधी वचनों को नहीं मानते थे। वे शास्त्रों के अंध अनुयायी न

होकर नीरक्षीर विवेकी थे। कुछ कबीर के समर्थक थे। शूद्र को मन्त्र देने में कोई बुराई नहीं है। शूद्र भी मनुष्य हैं। समाज के अंग हैं। मुक्ति उन्हें भी चाहिये। राम वेद से बड़े हैं। ब्राह्मण अपना वेद अपने पास रखे। उनके वेद को कौन छेड़ने जा रहा है। वेद समझना भी मुश्किल है। वेद हमें क्या छोड़ेंगे। हमीं वेद छोड़ रहे हैं। आखिर वेद भी तो गुणात्मक है। राम निर्गुण हैं। निर्गुण गुण से वड़ा होता है। इसलिए स्वामी रामानन्द ने कबीर को निर्गुण-निराकार राम का उपदेश किया। वैर-विरोध, छुआछूत सगुण में है। साकार में है। निर्गुण तो शून्य है। निराकार है। यहाँ कैसा भेदभाव ? भक्ति के आचार्यों ने वेद की निन्दा नहीं की। किन्तु उसे स्वीकार भी नहीं किया। गायत्री को छोड़कर राम मन्त्र देने लगे। गो, गंगा, गोविंद आदि पूर्ववत रहे। सद्‌गुरु रामानन्द ने कबीर को शिष्य बनाने की घोषणा नहीं की। किन्तु इस प्रचार का खंडन भी नहीं किया। लोक कवीर को स्वामीजी का शिष्य मानने लगा।

नगर हलचल से भर गया। चारों ओर कबीर की दीक्षा की चर्चा थी। शुकदेव बिहारी मिश्र ने भगेलू सरदार को बुलवाया। सरदार ने विनीत होकर पा लागन किया। पा लागी मिसिरजी ! का हुकुम बा ? ई तो देखत हई सभे बौरा गेल हौ। आचारज जी के भी का सूझल ? जोलहवा के चेला वना लेलन। अहिरान में सभा जुटल हौ। बाबू अमिका सिंह के अदमी भी आयल रहल। बाबू लोग भी बड़ा खिसाइल हौ। कहँ दंगा न हो जाय ? संन्यासी के कोइ भरोसा ना हौ। कब का कर दीहें पता नै। हम आपे के यहाँ आवत रहली। आपके राय जानब जरूरी रहल। कुछ बाबाजी लोग भी मियन से मिलल लगलन। उ मियाँ के वेद पढ़ावे चाहलन। भला इ कैसे होई ?

आचार्य रामानन्द मौन हैं। कुछ भी नहीं बोलते। मिलना-जुलना बन्द है। शिष्य परेशान हैं। आचार्य की राय जानना चाहते हैं। एक जुलाहा अपने को उनका शिष्य कहता घूम रहा है। बड़ा चालाक है। कितनी चालाकी से दीक्षा ली। लोगों की राय भी कैसी है ? लोग कहते हैं, उसकी दीक्षा पूरी हुई। आचार्य के श्रीमुख से निकला वचन झूठा नहीं होगा। उन्होंने उसे रामनाम की दीक्षा दी है।

जनता दो भागों में बँट गयी है। कुछ लोग अत्यन्त गुस्से में हैं। कुछ इसे स्वीकार कर मौन हैं। बात बढ़ाने से फायदा नहीं समझते।

बनारस के नागरिकों की सभा जुटी है। पंडे, यादव, व्यापारी आदि सब हैं। कुछ शास्त्रज्ञ पंडित भी बुलाये गये हैं। कुछ दंडधारी संन्यासी भी इधर-उधर घूम रहे हैं। लोगों के मन में गुस्सा है। कुछ होकर रहेगा।

सभा में हर-हर महादेव का घोष हो रहा है। धर्म की जय हो। अधर्म का नाश हो। किन्तु कोई निर्णय नहीं हो पा रहा है। स्थिति विकट है।

तय हुआ कि आचार्यजी से ही पूछा जाय। वे क्या कहते हैं ? उनके आदेश के बिना कबीर को कोई दण्ड नहीं दिया जा सकता है। दण्ड देने में कितनी देर लगती है ? सरदार का इशारा पाते ही कबीर की गर्दन का पता नहीं चलेगा।

मुन्नू सरदार का लड़का कह रहा था। जरा हुकुम तो होय। हम सारे के बल्लम पेल देइं। मियन के दाढ़ी उखाड़ि के··· ।

उधर मुसलमान भी उत्तेजित थे। नीरू का लौंड़ा काफिर हो गया है। खुदा खैर करे। हालात पर गौर कीजिए। काफिर रंग बदल-बदल कर हम लोगों को परेशान कर रहा है। कोई आचारियाजी आये हैं। कबीर उनके ही फेरे में पड़कर राम-राम रट रहा है। जोग साधता है। बांग, नेबाज, खतना सब के गलत बताता है। पच्छिम को छोड़ पूरब मुँह कर बैठता है। कहता है खुदा पूरब में है। रसूल को न मानकर खुदा को अपने भीतर में देखने कहता है। मुसलमानों की मजलिस में कोई फैसला नहीं हो पा रहा है। मामला काजी के पास गया है। काफिरों का हौसला पस्त करना होगा। नाचीज का सिर उठाना खतरनाक है। कुछ लोग बुदबुदाते हैं। काफिर लौंड़ा था ही।··· धोखा दे गया। खैर मनाओ। हिन्दुअन में जाति है। छुआछूत है। वरना ये आचारिया लोग कितने ही मुसलमानों को हिन्दू बना लेते। इस्लामी सल्तनत है। बादशाह और सूबेदार भी हमारी मदद करते हैं। फिर भी कुछ लोग हमसे खिसक रहे हैं। वे ऊँचे हिन्दू से भी नाराज हैं और मुसलमानों से भी। बादशाह को भी

ललकार रहे हैं। लोग कबीर को खोज रहे हैं। किन्तु कबीर गायब हैं। किसी को पता नहीं। कहाँ हैं? लगता है रामानन्द ने कहीं भेज दिया है। छिपा दिया है। गर्मी शांत होने पर बाहर करेंगे।

कबीर के माता-पिता घूम रहे हैं। उन्हें भी पता नहीं, कबीर कहाँ हैं?

अकाल का जहरीला धुआँ अभी फैल ही रहा है। कबीर इसका प्रतिकार करना चाहते हैं। वैराग्य दुःख निवृत्ति के लिएं ही हैं। अपने को दुःख और दूसरों को सुख यही वैराग्य है। दुखिया की सेवा ईश्वर की उपासना का सबसे अच्छा रास्ता है। भगवान् को मनुष्य की किसीं सेवा की आवश्यकता नहीं है। भगवान् न भूख से मरता है। न रोग-शोक में छटपटाता है। ऐसे में उस निर्गुण-निराकार की क्या सेवा हो सकती? केवल इतनी कि उसके बंदों की सेवा की जाय। उसके बनाये संसार की सेवा की जाय।

कबीर ने साधुओं से सम्पर्क किया। उन्हें समझाया। गृहस्थों पर निर्भर साधु-संन्यासी समझ नहीं रहे थे। क्या करें? गृहस्थ स्वयं संकट में थे। कबीर की बात उनकी समझ में आ गयी। यही अवसर है समाज के लिए कुछ करने का।

साधुओं-संन्यासियों की सभा बुलायी गयी। बहुत थोड़े से साधु आये। बहुतों को कबीर पर विश्वास न था। अपनी श्रेष्ठता का अहंकार भी था। कई तो कबीर को साधु मानने को भी तैयार नहीं थे।

कबीर थोड़े से साधुओं के साथ निकल पड़े। कई दल बनाए गए। जिनके पास कुछ अन्न था। वे दे सकते थे तो उन्हें समझाकर सतपथ पर लाना। लोगों को कुखाद्य खाने से यथासाध्य रोकना। अन्न माँगकर वितरण करना। बीमार की सेवा और मरे लोगों का संस्कार करना।

इन कामों में कबीर इतना लगे कि घर छूट गया। महीनों घर के दर्शन नहीं हुए। प्रायः साधना भी छूट जाती। वे रास्तों पर चलते समय खड़े-खड़े रामनाम जपते। छापा-तिलक भी नहीं लगा पाते। पानी की कमी ने स्नान को प्रभावित कर दिया था।

धीरे-धीरे कबीर की अकाल सेवा की चर्चा फैली। भीड़ बढ़ने लगी। लोगों की आशाएँ भी बढ़ीं। बैलगाड़ियों, बैलों, इक्का-ताँगों एवं घोड़ों आदि पर सामानों के वितरण होने लगे। विश्वास बढ़ा तो लोग दूर-दूर से अन्न भेजने लगे। पानी के स्रोत खोदे जाने लगे। पानी भी मँगाया जाने लगा।

कबीर और उनके विश्वस्त सहायकों ने रात-दिन एक कर दिया। उन्हें देखकर दूसरे लोग भी आये। यह कबीर साहब के व्यक्तित्व का प्रभाव था। अभी तक समाज में उनकी मान्यता न थी। धीरे-धीरे लोग प्रभावित होने लगे। विरोधी भी चुप थे। क्या कहें? कैसे रोकें? इसी बीच कभी-कभी भजन-कीर्तन भी होता। अपने प्रयत्न के साथ प्रभु की सहायता माँगी जाती। कर्म अपना था। किन्तु भरोसा ईश्वर का था। इससे एक आत्मिक शक्ति की वृद्धि हुई। मन बदलने लगा। स्थितियाँ बदलने लगीं।

बड़ा अद्‌भुत दृश्य था। लोग अपनी सुधि भूल गये। सब दूसरों के लिए दौड़ रहे थे। अपनी भूख पर दूसरों की भूख हावी थी। अपनी भूख जैसे गायब हो गयी। दूसरों को खिलाना धर्म बन गया। तृप्ति और संतोष का साधन बन गया।

कुछ कट्टरपंथी अब भी मानने को तैयार नहीं थे। उन्हें कबीर का बढ़ता प्रभाव खटकता था। किन्तु करें क्या? राजकी कर्मचारियों को उभाड़ने की कोशिश करते। कबीर का प्रभाव लोगों को विद्रोही बना देगा। कबीर किसी राजा, राजकर्मचारी, नवाब या बादशाह को मान्यता नहीं देता है। यह अपने को ही बादशाह समझता है। कहता है—बादशाह तो एक है। राम ही सबके मालिक हैं! राम के अलावा और कौन मालिक हो सकता है? और सारे राजे-नवाब एवं बादशाह नश्वर हैं। पतिंगे से जल मरनेवाले हैं। इनसे किसी प्रकार के डर की जरूरत नहीं है। केवल ऊपरवाले से डरो। उसी का हुक्म मानो। वही सत्य है। उसी की कृपा प्राप्त करने की कोशिश करो। संसार में सभी तो दुखिया हैं। कौन किस प्रकार दया करेगा? सारा खलक काल का चबेना है। कुछ मुख में कुछ गोद।

उच्चवर्गी व्यक्ति कबीर के बारे में मौन रहते हैं। उनके भीतर श्रद्धा मिश्रित आतंक के भाव हैं। किन्तु सामान्य जन अत्यन्त उत्साहित हैं। वह कबीर को उद्धारक मानता है। संत ने अद्‌भुत कार्य किया। वे न होते तो अकाल का काल सबको निगल जाता। संतों के भंडारों, लंगरों ने ही सबकी जान बचाई। संतों के भंडारे प्रसिद्ध हो गए। बिना किसी भेदभाव के सबके लिए खुले रहते हैं। गरीब-अमीर, शूद्र-द्विज कोई हो सभी खा सकते हैं। प्रभु को समर्पित यह भोज सबका हो गया। सबका कल्याण, भरण, पोषण हो। विष्णु संतों को माध्यम बनाकर जीव का पालन करते हैं। भक्त ही उनके साधन हैं। कारण हैं। रुद्र राक्षसों को आधार बनाकर नाश करते हैं।

●

नारी बड़ा...

सम्पूर्ण काशी में कबीर की चर्चा है। किन्तु कबीर का कहीं पता नहीं है। स्वामी रामानन्द जी चुप है। क्रोध की लहरें मौन किनारों से टकरा कर लौट जाती हैं। चर्चा, संशय, श्रद्धा, विवेक, ज्ञान आदि सब बुलबुले सा उठ-उठ कर फूट रहे हैं। फैलकर विलीन हो जा रहे हैं।

हिन्दुओं का एक वर्ग परेशान है। उसे कबीर के संन्यास ग्रहण में विधर्मियों की चाल दीखती है।

कबीर कौन है ? कहाँ से आया है ? इसकी क्या जाति है ? इसके बारे में अफवाहों का बाजार गर्म है। साधुओं की एक जमात कबीर को अवतार कहती है। कबीरदास नहीं, कबीर साहब। लहरतारा तालाब के कमलपत्र पर एक ज्योति उतरती है। लोग आश्चर्य से देखते हैं। यह ज्योति बालक का आकार ग्रहण करती है। बालक ज्योति की चमक में खो जाता है। एक महात्मा खड़ाऊँ पहने पुरइन के पत्ते पर चल रहे हैं। कमल के लाल-लाल फूलों पर उनके पैरों के निशान बने हैं। निशान मिटते हैं। ज्योति विलीन होती है। बालक के रोने की आवाज आती है।...कोई महात्मा उपदेश दे रहे हैं।...मैं कबीर हूँ। हंस उबारन जग में आया हूँ। संसार की मोह माया में पड़े लोग मेरी बातें सुनो। तुम्हारा कल्याण होगा। मैं और कोई नहीं। स्वयं ब्रह्म हूँ। पुराण पुरुष हूँ। मेरी कोई जाति नहीं। धर्म नहीं। कर्म और आश्रम नहीं। मैं केवल जोगी हूँ। साधु हूँ। भगत हूँ। हिन्दू, मुसलमान, बोध, जोगी, मौनी, जैन, जटाधर, शाक्त, शैव आदि सब सीमाएँ बनाते हैं। इन सीमाओं में पड़ा आदमी दुख भोग रहा है। वेद कितेब सब व्यर्थ हैं। सबको छोड़ो। रूढ़ियाँ तोड़ो। प्रभु की शरण में आओ। प्रभु ही तुम्हारा रच्छक है। पोथी, पंचांग और वेद कितेब में कुछ भी धरा नहीं है। राम-रहीम एक है। इसी एक से जुड़ो।

अभी मैं नीमा और नीरू के घर रहूँगा। यही मेरे माता-पिता होंगे। किन्तु सच्चाई यह है कि कोई किसी का माता-पिता नहीं है। माता, पिता, पुत्र आदि सब माया हैं। भ्रम हैं। भ्रम और माया से माया पैदा होती है। प्रभु नहीं पैदा हो सकते हैं। प्रभु को पाना हो तो माया को छोड़ो।

कुछ लोग मानते हैं कि यह सब झूठ है। कबीर विधवा ब्राह्मणी की सन्तान हैं। जिन्हें उस विधवा ने लोक भय से तालाब के किनारे फेंक दिया था। विधवा की हथेली से पैदा होने के कारण वे करबीर कहलाए। बाद में कबीर। कोई उन्हें मुसलमान मान रहा है। जिसके पूर्वज कुछ पीढ़ियों पहले हिन्दू से मुसलमान हुए थे।

कुछ लोग इन्हें शंकराचार्य के गृहस्थ शिष्यों के बीच पैदा हुआ मानते हैं। ये शिष्य जोगी कहलाते हैं। ये गृहस्थ रहकर योग साधना करते हैं। इसलिये बहुत से लोग इन्हें संन्यास से च्युत मानकर अच्छा नहीं मानते। संन्यासी का गृहस्थ होना ठीक नहीं। इससे संन्यासी का पतन हो जाता है। शंकर के संन्यास मार्ग से गृहस्थ आश्रम में लौटने की व्यवस्था नहीं है। जो संन्यासी हो गया। दंड कमंडल उठा लिया। भगवावस्त्र पहन लिया। वह गृहस्थी में लौटकर कहाँ जायगा ? संन्यासी की जाति खतम हो गयी। वर्ण खंडित हो गया। ऐसे में उसे किस वर्ण में रखा जाय ? संन्यासियों के परिवार में लौटने से उपजातियाँ बढ़ेंगी। वर्ण क्रम, धर्म और व्यवस्था टूटेगी।

लेकिन लोगों ने माना नहीं। हजारों की संख्या में संन्यासियों ने गेरुआ चोला उतार कर सफेद वस्त्र पहन लिये। अस्वाभाविक संन्यास धर्म को छोड़ दिया। गृहस्थी के भव जाल में फँस गये। यहाँ रहकर ही भगवान की साधना-उपासना करने लगे।

कहते हैं कबीर ऐसे ही परिवार से पैदा हुए थे।

स्वामी रामानन्द जी ने अपने किसी शिष्य से कहलवा दिया कि उन्होंने कबीर को राम नाम की दीक्षा दी है। वे मनुष्य मात्र को साधु बनाने के पक्षपाती हैं।

कबीर से इसका आरम्भ किया है। वे चाहते हैं कि दूसरे महात्मा भी यही करें। यह मार्ग इह लोक और परलोक दोनों के लिये कल्याणकर है। शूद्रों, मुसलमानों आदि को शिष्य बनाना समय की आवश्यकता है। सामाजिक आध्यात्मिक न्याय है। अद्वैत स्थापना का मार्ग है। इसके बिना धर्मनिष्ठा परिवर्त्तन को रोका नहीं जा सकता है। स्वामी जी वेद विरोधी नहीं हैं। किन्तु उनका विश्वास बदल गया है। वेद को मानो। किन्तु अब वेद से काम नहीं चलेगा। वेद शब्द मात्र हैं। राम नाम भी शब्द है। किन्तु सहज, सरल शब्द है। भाषा में भी चल सकता है। व्याकरण के बिना भी चल सकता है। कोई भी चला सकता है। वेद इतना सरल नहीं है।

धीरे-धीरे चर्चाएँ शान्त हुईं। लोग अपने कामों में लग गये। आखिर कब तक इसकी चर्चा करते? गुरु-शिष्य दोनों की दृढ़ता ने भी काम किया। एक शिष्य बनाने पर दृढ़ था। दूसरा बनने पर। कुछ दिनों की लुका छिपी ने भी काम किया। लोग भूलने लगे। कुछ लोगों में श्रद्धा-विश्वास का उदय हुआ। महात्माओं का क्या विश्वास? पता नहीं वे किस रूप में जगत् का कल्याण करना चाहते हैं? नाना मुनि के नाना मत हैं।

यह भी प्रचारित किया गया कि स्वामी जी एक बड़ा संगठन बनाना चाहते हैं। कौल, कापालिक, सहजिया, सिद्ध, नाथ, शैव, शाक्त, इस्लामी आदि संप्रदायों के झगड़े से लोग ऊब चुके हैं। वे अपने सम्प्रदाय का द्वार सबके लिये खोलना चाहते हैं। बिना भेद भाव के दीक्षा देंगे। लोग अपने संस्कारों, सामाजिक परिवेश और आवश्यकताओं के अनुसार ग्रहण करें।

स्वामी रामानन्द के नाम पर चलने वाले संगठन सम्प्रदाय परस्पर विरोधी भी लगें तो हर्ज नहीं। शर्त केवल राम उपासना की है। राम निर्गुण हैं या सगुण? यह महत्वहीन है। रामानन्द जी दोनों में विश्वास करते हैं। बिना निर्गुण के सगुण नहीं हो सकता। बिना सगुण के निर्गुण कहा नहीं जा सकता। सगुण झूठा है। किन्तु यह झूठा ही निर्गुण का बोध करा सकता है। झूठा का अर्थ अस्तित्वहीनता से नहीं, भंगुरता से है। निर्गुण सनातन है। उसका

कभी नाश नहीं होता। वह एकरस है। अखंड और निर्विकार है। सगुण निर्गुण का विकार मात्र है।

कबीर बुलाए गये। शिष्यों ने उन्हें खोज निकाला। स्वयं गुरुदेव का आदेश हुआ। कबीर को बुलाओ। असाधारण व्यक्तित्व है इस युवक में। ऐसे व्यक्ति बार-बार नहीं दीखते। सर्वत्र और सब काल में नहीं दीखते। यह अवतारी पुरुष है। कबीर से ही अवतार विश्वसनी बनता है। यह मत पूछो कि स्वयं कबीर को अवतार ने विश्वास है या नहीं।

कबीर स्वयं स्वामी जी से मिलने को उत्सुक थे। वे शीघ्र उपस्थित हुए। स्वामी जी के सामने दो-चार शिष्य बैठे थे। कोई बाहरी व्यक्ति न था। उन्होंने कबीर से कहा बच्चा कबीर मेरी बात ध्यान से सुनो—'मैं तुम्हारी शक्ति को देख रहा हूँ। मेरे द्वारा तुम्हें राम मन्त्र देना आकस्मिक न था। किसी योजना का परिणाम भी न था। प्रभु की प्रेरणा थी। प्रभु ही हमें निमित्त बनाकर सब करता है। उसी प्रभु की इच्छा है तुम देशाटन करो। योग की साधना तुम कर चुके हो। भक्त के लिये सहज़ योग पर्याप्त है। देशाटन से तुम्हें नयी सिद्धि प्राप्त होगी। ज्ञान और साधना का आदान प्रदान होगा। तुम समाज को भली-भाँति देख सकोगे। प्राणियों के दुख की अनुभूति करोगे। उनके उद्धार का उपाय करोगे। बस। आगे तुम समर्थ हो। मैं तुम्हारे लिये किसी विधि निषेध का निर्धारण नहीं करता।' आचार्य के इन थोड़े से वाक्यों को मन में स्थापित कर कबीर लौट आये। उन्हें देशाटन की जल्दी है। लेकिन घर से निकलना आसान नहीं। कबीर आस-पास घूमने लगे। कभी विन्ध्याचल की ओर जाते। कभी बनारस की पूरब दिशा में चल देते। किन्तु अक्सर बनारस में ही घूमते। साधुओं संन्यासियों का साथ करते। यहाँ होनेवाले प्रवचनों को ध्यान से सुनते। अनेक स्थानों पर रात-रात भर महात्माओं के प्रवचन होते। विद्वानों के तर्क और शास्त्रार्थ होते। कथाएँ होतीं। यज्ञ होते। हवन कुंडों से आग की लपटें उठतीं। धुओं से आकाश भर जाता। सैकड़ों, हजारों वैदिक वेद पाठ करते।

कबीर सब सुनते। सब देखते।

मन्दिरों में उनका प्रवेश वर्जित था। वे चाहकर भी वहाँ नहीं जा पाते थे। अन्नकूट को वे दूर से ही देखते। भोग सामग्रियों की भीड़ लग जाती। छप्पन प्रकार तो कहने के हैं। सौ छप्पन हों तो ताज्जुब नहीं। लोग रस ले ले कर भोगों की चर्चा करते। किस-किस मन्दिर में कौन सा भोग लगा ? किस मन्दिर के भोग की क्या विशेषता थी ? ऐसे ही और उत्सव होते। लोग नदियों के किनारे, गंगा के उस पार, किसी विशिष्ट कुएँ के पास जाकर भाँग बूटी छानते। लंगोट लगाकर पहना कपड़ा उतारकर साफ करते। फिर उसे सुखाते। फिर उसी ताजे धुले वस्त्र को पहनकर घर लौटते। कम से कम वस्त्र में काम चलाते। इसे साफा पानी कहते। भाँग की ठंडई बनती। गोली, गोले भी लेते। भाँग, दूध, मलाई, बादाम आदि मिलाते।

कबीर के मन में विरक्ति भर जाती। वे इसे ऐयाशी मानते। इसमें अधिकतर लोग वे हैं जो सामाजिक स्थिति से उदासीन हैं। कुछ ऐसे भी होंगे जो अपने दुख को नशा में डुबो देना चाहते हैं। उन्होंने भगवान शंकर को भी मनोरंजन का साधन बना लिया है। मुक्ति नहीं मनोरंजन। कल की खबर से मुक्त। 'बम भोला' की ध्वनि से यम को भगाना चाहते हैं। किन्तु गले पड़ी यम की फाँसी को नहीं देखते। कबीर को यह नशा पसन्द नहीं है। वे भाँग, गाँजा धतूरा, दारू आदि सबको बुरा मानते। पीना है तो महारस, हरि रस का पान करो। उससे मीठा कोई रस नहीं है। कभी नशा न उतरने वाला रस पीओ। ईश्वर सभी रसों का भंडार है। आदि देव है। अनादि कारण है। बनारस के पंडे पुरोहित कबीर की उपेक्षा करते हैं। मजाक उड़ाते हैं। गाली गलौज को कबीरा और जोगीड़ा कहते हैं।

कबीर भी उनके विरुद्ध प्रचार करते हैं। इस प्रकार सदा एक तनाव की स्थिति रहती है। फिर भी कबीर अपनी साधना में लगे रहते हैं। कभी-कभी कुछ कह भर देते हैं। मन के भीतर तनाव का प्रवेश नहीं होने देते। मन मुक्त है। वह तो राम नाम में लगा है। उसे बैर विरोध की अनुभूति नहीं होती।

एक दिन सन्ध्या को घूमने निकले तो लहरतारा का दक्खिनी मार्ग पकड़ लिया। कुछ दूर पर एक पीपल का पेड़ था। इसे लोग 'भुतहा पीपर' कहते हैं। सन्ध्या हुई कि आवागमन बन्द। दिन में भी कम ही लोग उधर जाते हैं। राही प्रायः रास्ता काट कर दूर-दूर जाते। इस पीपल के बारे में अनेक कथाएँ हैं। जाने कहाँ-कहाँ के भूतों ने यहाँ डेरा जमा रखा है। हिन्दू का भूत। मुसलमान का जिन। दोनों सम्प्रदाय के लोग इस पीपल के पत्ते से भय खाते हैं। जरा पीपल हिला, कोई पक्षी खड़का, कोई आवाज हुई, आँधी तूफान में कोई डाल टूटी, रात को जुगनू चमके। लोगों ने समझा सब भूत कर रहा है। पीपल जितना पुराना है उतना ही विशाल। हजारों बगुलों को बैठा देख लोग दूर से कहते 'देखो भूवों की सभा हो रही है।' दिन में भूत बगुलों में बदल जाते हैं। गिद्धों को ब्रह्मराक्षस समझते।

माताएँ बच्चों को उधर जाने से रोकतीं। कोशिश करतीं कि उधर की हवा भी न लगे। भूतों का क्या भरोसा ? वे भेस बदलकर चलते हैं। कभी-कभी हवा वन जाते हैं।

एक बार बगल वाले गाँव में बड़े जोरों की आँधी आयी। शाम होते-होते गाँव में हैजा फैल गया। पहले चमरौटी के सोमारू मरे। फिर तो ताँता लग गया। एक···दो···तीन···चार। गिनना मुश्किल हो गया। लगा पूरा गाँव उजड़ जायगा। पूरे गाँव में सायँ-सायँ की आवाज आने लगी। दिन को निकलने में भी डर लगता था। लोग मुर्दा छूने में डरते थे। यह उसी भुतहा पीपल की करामात है। सोमारू ने उसे दिखाकर पेशाब कर दिया था। यह क्रम काफी दिनों तक चला। गाँव के अनेक गभरू ज्वान उसी हैजे में चल बसे। नरायन जोगी का बेटा किसन। क्या शरीर पाया था उसने ? चिकनी चौकठ और पटड़े सी देह। हर समय तेल में डूबी। अखाड़े पर उतरता तो बड़े-बड़े उस्तादों का भरम टूट जाता। किन्तु एक घण्टे की कै दस्त ने उसे सदा के लिये सुला दिया। था तो जोगी। किन्तु शरीर से सरदार और मन का राजा था। नरायन

भी तब से घूमते-फिरते नहीं दिखे। खाट पकड़ लिया। छह महीना भी नहीं बीता कि……।

घर में रह गयी केवल किसन की मेहरारू और उसके दो बच्चे। तीन जनावर और एक बूढ़ा करघा। एक करताल। एक सारंगी। दो कंथा। मजीरा, मृदंग और कुछ वर्त्तन। किन्तु रमदेई ने हार नहीं मानी। ससुर के मरते ही उठ खड़ी हुई। जब तक जोगी जीवित रहे उनकी सेवा की। मरते ही आँखो के आँसू पोंछ कर अपने काम में लग गयी। पास-पड़ोस की औरतों ने पूछा तो उसने कहा 'जे भगवान हमके विपत्ति देले हउअन उन्हें उबारो करिहें। कब तक रोईं। बहुत रो लेली जादे रोले उ लौटि नै अइहें। दू ठो गदेलन के प्रतिपाल भी तो हमरे जिम्मे हौ।' उसके इस साहसिक बयान को लोगों ने अपने-अपने ढंग से लिया। अधिकांश ने समझा यह दूसरा विवाह कर मौज करना चाहती है। सतरह-अठारह की उम्र होती क्या है ?

पीपल का पेड़ अभी दूर था। कबीर चले जा रहे थे। मन ही मन रामनाम जप रहे थे। अजपा जाप चल रहा था। अगल-बगल दोनों ओर अरहर के खेत थे। जाड़े की उदास संध्या घनी हो गयी थी। उन्हें किसी स्त्री के चिल्लाने का स्वर सुनाई पड़ा। बचाओ…बचाओ।

संत के पाँव रुक गये। पेड़ का भूत इधर तो नहीं आ गया है या भूत की पकड़ से बचने के लिए कोई चिल्लाता हो ? भूत स्त्रियों और बच्चों को जल्द ही अपना शिकार बना लेते हैं। कान स्त्री स्वर की दूरी और दिशा की ओर उन्मुख हुए। संत को खड़ा देख स्त्री और भी शक्ति से चिल्लाई।

कबीर को समझते देर नहीं लगी। आवाज बगल के रास्ते पर थी। वे उधर ही चल पड़े। एक पुरुष एक स्त्री को पकड़े था। अरहर की ओर घसीट रहा था।

स्त्री स्वस्थ थी। सुन्दर भी। वह उस पुरुष को बार-बार धक्का दे रही थी। किन्तु पुरुष के हाथों में उसकी साड़ी का छोर दबा था। ज्यादा जोर लगाए तो नंगी हो जाय। यह डर उसे भागने नहीं दे रहा था। पुरुष कोई

तुर्क सिपाही था। जो उससे प्रार्थना भी करता। धमकी भी देता। बार-बार गिरता और उठकर उससे लिपटना चाहता। किन्तु उस औरत के धक्के से पुनः गिर जाता था।

संत को देख वह आदमी जोर से गुर्राया हट जा। हमारे बीच में मत पड़ना। यह औरत हमसे राजी है। केवल नखरा कर रही है। मैं अभी-अभी इसे ठीक कर लेता हूँ। मैंने बहुत-सी औरतों के नखरे देखे हैं। तुम औरतों के नखरे नहीं जानते। यह नखरा नया नहीं है। कुतिया पहले भू''भू'''कर भूंकती है। किंतु गरम-गरम मांस का टुकड़ा पाकर गोद में सोना चाहती है। जोगी और मुसलमान में क्या फर्क है? हम निकाह के लिए भी तैयार हैं।

स्त्री जोर से चिल्लाई 'झूठा है, झूठा। मैं अपने काम पर से आ रही हूँ। रोज ही इस समय आती हूँ। कभी ऐसा नहीं हुआ था। राजी-ऊजी की बात बिलकुल झूठ है। वह मुसलमान और मैं हिन्दू जोगी। गरीब हूँ तो क्या मेरा कोई धरम नहीं है? इसके मुँह से ताड़ी की गंध आ रही है। यह होश में नहीं है। एक अबला की इज्जत लेना चाहता है और हिन्दू-मुसलमान की बात करता है।' युवती काँप रही थी। उसकी देह थरथरा रही थी।

पुरुष एकाएक किसी व्यक्ति की उपस्थिति को देखकर डर गया। उसका नशा उतर चला था या नशे की हालत में भी उसने संतजी को पहचान लिया।

पहले उस पर दो नशे छाये थे। मद का, काम का। अब भय ने उसे भागने को मजबूर कर दिया। भय का नशा स्थायी नहीं होता। किन्तु जब होता है तो सारे नशे को दबा देता है।

स्त्री कुछ शांत हुई। पूर्णिमा की स्वच्छ चाँदनी उसके चेहरे पर बिछल रही थी। इस एकांत में एक युवती से बात करना उचित नहीं।

संत ने युवती से कहा, यह दुष्ट यहीं कहीं छिपा होगा। आओ बहन, मैं तुम्हें इन खेतों के पार कर दूँ।

युवती बहन संबोधन पर चौंकी। किन्तु मौन रही। काफी देर संत के उन्नत ललाट को देखती रही। वह जानती थी संत भी जोगी है। कुँआरा है।

संत ने भी सुना था। स्त्री जोगी जाति की है। किन्तु दोनों ने एक दूसरे का परिचय जानना आवश्यक नहीं समझा।

संत उसके उठने की प्रतीक्षा करने लगे। अंत में उसने कहा, 'ठीक है। चलती हूँ। आपने इस दुष्ट से मेरा उद्धार किया।'

संत ने युवती को काफी दूर तक पहुँचा दिया। गाँव नजदीक आ गया। अब वह किसी भी खतरे के बाहर थी।

युवती डरी थी। छूट तो गयी। किन्तु यह कहीं संत को फँसा न दे? पता नहीं कौन-सा षड्यन्त्र रचेगा? कचहरी पर इसका प्रभाव है।

उसने अपना डर संत से कहा। संत निर्भय थे। उन्होंने कहा—यह कुछ नहीं कर सकता है। कामी और पतित किसी का कुछ नहीं बिगाड़ सकते। वे तो स्वयं लज्जित रहते हैं। डरे रहते हैं।

संत कबीर बिना किसी भ्रमण के लौट गये। स्त्री के प्रति पुरुष के इस व्यवहार ने मन को क्षुब्ध कर दिया था। आखिर स्त्री को देख मनुष्य पागल क्यों हो जाता है? क्या है इस लोथड़े में? निश्चय ही इसका एक कारण स्त्री का अकेला और एकान्त में होना है। तो स्त्री को इन दोनों से बचना चाहिए। किन्तु पुरुष के लिए भी यही सत्य है। वह स्त्री के संग, अकेलेपन एवं एकान्त से बचे।

एक दिन उन्होंने वरुणा के किनारे एक अजीब दृश्य देखा। इधर बाहर से कुछ साधु आये हुए थे। पूरे शहर में उनकी साधना की चर्चा थी। वे प्रायः पिछड़ी जाति की स्त्रियों को अपनी साधना के लिए रखते थे। रजकी, डोमनी, बंगाली, योगिनी आदि।

चर्चा सुनकर कबीर में संत समागम की इच्छा बलवती हो उठी। वे अपने दैनिक कार्यों से निवृत्त हो घर से चल पड़े। रात काफी जा चुकी थी। एक साधु की झोपड़ी में दीपक टिमटिमा रहा था।

शायद यह डोम्बिपा की कुटिया थी। संत कबीर जाकर कुटी द्वार पर खड़े हो गये।

बाहर कुछ लोग बैठे थे। उनके पास खाली बोतल और पुरवे पड़े थे। उन्होंने बहुत पी लिया था। कौन आया इसका उन्हें कोई ज्ञान नहीं हुआ। कई कुत्ते दाँतों में हड्डियाँ दबाए इधर-उधर घूम रहे ये। लगता है अभी-अभी यहाँ मांस-भोज हुआ है।

भीतर का बाबा बिलकुल नंगा था। मदिरा से आँखें लाल। बगल में एक नंगी युवती लेटी थी। बाबा उसकी छाती, पेट ओर योनि द्वार पर मदिरा की छींटे मार रहा था। पुष्प, सिन्दूर, अक्षत फेंक रहा था। कुछ मंत्र जैसा उच्चारण कर रहा था। ओं ह्रीं क्लीं···वषट्कार। लगता है वह मुद्रा की पूजा कर रहा था और भैरवी जगा रहा था। उसने अनेक प्रकार के लाल फूलों को सहज भाव से तीनों स्थानों पर रखा। उसके बाद बगल में रखे मांस और मीन के टुकड़े उठा-उठा कर युवती को खिलाने लगा। कभी स्वयं खाता। कभी उसे खिलाता। बगल की अग्नि में होम करता जाता। बाद में बाबा ने मदिरा का कुछ अंश युवती के मुँह पर भी छिड़क दिया।

पूरी झोपड़ी होम धूम से भर गयी थी। कभी हवन कुण्ड से लहरें उठतीं। इनसे बाबा और उस युवती की देह तप्त तामे सी चमकती।

बाबा ने पहले होम की राख देह में लगायी। फिर ललाट, बाँह और छाती पर लाल चन्दन लगाये। उसके बाद अपने खुले बालों को जोर का झटका दिया। उसके बाल फैल गये।

उसने उसी क्रम से स्त्री शरीर पर चन्दन का लेप किया। उसकी छाती पर भी चन्दन लगाया। छाती और योनि पर लाल फूल चढ़ाया। कपूर जलाकर आरती उतारने लगा। जोर का श्रृंगीनाद किया।

श्रृंगी बजाते समय उसकी नजर ऊपर उठी। सामने एक अजनबी को खड़ा देख शान्त रहा। किन्तु तेज स्वर में बोला—तू कौन है ? यहाँ कैसे और क्यों आया है ? भाग जा।

कबीर कुछ बोलें इसके पहले ही स्त्री हड़बड़ा कर उठ बैठी।

बाबा ने काह—नहीं, तुम्हें उठना नहीं है। अभी तो मेरी साधना का प्रथम चरण है। यह स्वयं भाग जायगा। तुम डरो मत। महामाया हम पर प्रसन्न है।

यह काल हमें अवश्य सिद्धि देगा। इस व्यक्ति को मैं अभी भगाता हूँ। यह कहकर उसने राख उठाकर कुछ मन्त्र पढ़ा। पढ़कर कबीर की ओर फेंक दिया।

जा। भाग जा। क्यों व्यर्थ में मरना चाहता है। महामाया की उपासना में विघ्न कर अपना नाश मत कर। वे तुम्हारे शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर देंगी। यह स्थान गृहस्थों में लिये निषिद्ध है।

कबीर पर इन बातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वे सीधे खड़े रहे। बाबा ने बटुए से कोई अत्यन्त सुगन्धित पदार्थ स्त्री की ओर फेंका। उसके फेंकते ही गुलाब के इत्र की तेज गन्ध हवा में तैर गयी।

किन्तु उस गन्ध का कोई असर हो इसके पूर्व ही स्त्री तेजी से आकर कबीर से लिपट गयी। बचाओ। कहते-कहते वह सन्त की बाँहों में थी। सन्त ने उसे बाँहों में थाम नहीं लिया होता तो वह मुँह के बल धरती पर गिर पड़ती। वह कुछ-कुछ बेहोश हो रही थी। लगता है कुछ देर पूर्व उस पर बेहोश करने वाली इसी गन्ध का प्रयोग हुआ था। थोड़ी ही देर में पुनः उसी गन्ध के प्रयोग ने उस पर तीव्र असर डाला।

बाबा ने झपट कर उसका बाल पकड़ना चाहा। किन्तु मदिरा की मत्तता से उसके पैर लड़खड़ा गये।

सन्त को अवसर मिला। वे स्त्री को छाती से चिपकाए झोपड़ी से दूर अँधेरे में निकल आये।

बाहर के लोग बेहोश पड़े थे। बाबा की क्रुद्ध वाणी अँधेरे को चीर रही थी। गालियों के बाण प्रतिध्वनित हो रहे थे।

थोड़ी ही दूर जाते-जाते सन्त का दम फूलने लगा। नारी शरीर का इतना स्पष्ट और खुला स्पर्श उनके लिये नया था। पुष्ट मांसल और स्निग्ध देह से निकलने वाली गन्ध ने उनके मन की धारा बदल दी। उनके प्राण आकुल हो उठे। किन्तु उन्होंने अपने पर संयम रखा। भगवान का स्मरण किया। मन ही मन राम-राम का जप करने लगे। सन्त ने अपनी छाती झाड़ी। पसीना पोंछा। जैसे स्त्री के दोनों स्तन उनकी छाती से गड़ गये हों। वे बार-बार

छाती खुजला रहे थे । एक अनुचित एवं आकस्मिक से मन दुखी हो गया । बाहर शीतल हवा पाकर स्त्री होश में आ चुकी थी । उसने पुनः सन्त से लिपटना चाहा । किन्तु ऐसा हो न सका ।

सन्त ने दो कदम पीछे हटते हुए कहा—ऐसा न करो देवी । मैंने गुरु की दीक्षा ली है । स्त्री का परस नहीं करूँगा । अभी तक जो कुछ हुआ वह अचानक हुआ । तुम्हारी रखवाली में हुआ । संकट का धरम दूसरा होता है । तब तुम स्त्री की अपेक्षा जीव थी । जीव धरम के नाते ही मैंने तुम्हें बचाया । स्त्री के लोभ मोह में नहीं । स्त्री उनके पैरों पर सिर रखकर रोने लगी । कैसा दैव संजोग है । आप ने मुझको पहिचान लिया होगा । मैं वही हूँ जिसे आप ने उस दिन तुरुक के हाथ से बचाया था । और आज इस पापी बाबा से । यह हमको धोखा देकर ले आया था, जोग सिखाने के लिये । मैं जोगी जाति की हूँ । यह तो आपको मालूम ही है । घर में दो बच्चों के अलावा और कोई नहीं है । मेरी देह आपको अरपित हो गयी है । अब यह कहीं नहीं जायेगी ।

मैं भी जोगी परिवार की हूँ । आप भी जोगी हैं । हम दोनों का विवाह ठीक होगा । अकेली औरत को सभी लोग छुट्टा माल समझते हैं । जिसे देखो वही उसे घेरना चाहता है । किन्तु रखना कोई नहीं चाहता है । जीवन भर का कौन कहे ? वार्षिक, मासिक भी नहीं । दैनिक भी नहीं । कुछ लमहों के व्यायाम के बाद भगा देना चाहते हैं । मैं अकेलेपन से ऊब गयी हूँ । पहली बार जब आपको देखा तभी से मन में बसे हो । अब देर न करो । इस अबला को शरण दो ।

यह कहकर उसने सन्त को जोर से बाहों में दबा लिया । सन्त कोई प्रतिरोध भी नहीं कर सके । केवल मुँह से इतना कह पाये ऐसा मत करो देवी । मेरी तपस्या में अप्सरा मत बनो ।

अँधेरा और गहरा हो रहा था । जोगिनी की साँस तेज हो गयी थी । सन्त उसके शरीर की गर्मी का अनुभव कर रहे थे । अचानक उन्हें कोई सुधि आयी । उन्होंने हल्के झटके के द्वारा अपने को जोगिनी की पकड़ से मुक्त करना चाहा । किन्तु योगिनी की पकड़ मजबूत थी । वे ऐसा कर न

सके। योगिनी हँसी। भागना चाहते हो। भाग नहीं सकोगे। स्त्री की पकड़ से कोई भाग नहीं सकता। ब्रह्मा, विष्णु, महेंश सबको स्त्री है। सब उसके बन्धन में हैं। क्या सीता के बिना राम को भजना चाहते हो ? राधा-रुक्मिणी के बिना कृष्ण क्या हैं ?

भगवान कृष्ण ने द्रौपदी देवी की लाज बचाई थी। तुमने मेरी लाज बचायी। किन्तु द्रौपदी के तो पाँच पति थे। मुझे क्या एक भी नहीं मिलेगा ? क्या मैं इतनी अभागिनी हूँ ? एक प्रभु को प्यारा हो गया। दूसरा प्रभु के प्यार में मुझे छोड़ रहा है। क्या तुम्हें अच्छा लगेगा कि इस अबला के माँस को गिद्ध नोंचे ? कुत्ते चबाएँ ? आखिर इस प्रकार तुम मेरी रक्षा कहाँ-कहाँ करोगे ? द्रौपदी पंच पंचायत में कान्हा को न पा सकी। किन्तु मैं अपने प्रभु को पा गयी। अब यह छूट नहीं सकता।

यह कहकर स्त्री ने धीरे-धीरे एक गीत गाना शुरू किया। जिसका भाव है तुम जोगी हो। जोगी के घर जाओगे। यहाँ अन्न जल से तुम्हारा स्वागत होगा। तृप्त होगे। इसमें सोचो मत। हम दोनों एक ही जाति और एक ही गोत्र के हैं। तुम बलिष्ठ युवक हो। मैं जवान जोगिनी हूँ। फिर अलग क्यों रहें ? क्यों न अपना व्यवहार शुरू करें ? हमें किसी का डर नहीं है। मैं रात-दिन तुम्हारी सेवा करूँगी। दिन भर की यात्रा से थके तुम्हारे पैरों में तेल लगाऊँगी। मैं सूत कातूंगी। तुम उनका कपड़ा बुनोगे।

योगिनी भावुक हो उठी थी। उसने सन्त को तुम कहने में जरा भी संकोच नहीं किया।

सन्त किसी दूसरी दुनिया का साक्षात्कार कर रहे थे। जैसे उन्होंने कुछ सुना ही न हो। उनके चेहरे पर परेशानी बढ़ आयी। किन्तु वह अँधेरे में मुंह छिपाए थी। फिर भी योगिनी समझ गयी। सन्त परेशान हैं। उसे सन्त की परेशानी ने सुख दिया। सागर की गगनचुम्बी लहरों में बाड़व की बेचैनी।

सन्त ने कहा 'देवी, तुम अभी बिल्कुल नंगी हो। ऐसे में तुम्हें घर नहीं पहुँचा सकता। यहाँ दूसरा कपड़ा है भी नहीं। आखिर कब तक ऐसे रहोगी ?

ठहरो, मैं एक काम करता हूँ। वे सभी अब सो गये होंगे। कुटिया में अब भी रोशनी है। मैं धीरे से तुम्हारा वस्त्र उठा लाता हूँ।'

स्त्री हँसी। बेवकूफ बनाकर भागना चाहते हो। तुम्हारे साथ नंगी होने में मुझे कौन सी शर्म है ? तुम अपनी ही चादर में मुझे भी समेट लो। मैं ऐसी ही हालत में तुम्हारे घर जाऊँगी। कहूँगी चोरों ने मेरा सब छीन कर नंगा कर दिया। कोई नई बात है क्या ? सभी तो मुझे नंगा ही करना चाहते हैं। नंगा देखना चाहते हैं। मैं एक-एक कर सबके सामने नंगी हो जाऊँ। यह सबको अच्छा लगेगा। किन्तु सबके लिये एक ही बार नंगी होती हूँ तो इस में कौन सी बुराई है ? सभी तो नंगे हैं। मैं दुनिया के नंगों से ऊब चुकी हूँ।

तुम यहाँ से जा नहीं सकते ? मैं सीता की गलती नहीं कर सकती। उन्होंने राम को सोना मृग मारने के लिये भेजा था। राक्षस के हाथ चली गयीं। मैं यह नहीं कर सकती। सीता देवी थीं। औरत कम थीं। औरत को न सोना चाहिए, न कपड़ा। उसे चाहिए केवल पुरुष। पुरुष पाकर ही स्त्री मुक्त होती है। बन्धन रहित होती है। पुरुष ही स्त्री की ग्रन्थि खोलता है। उसके आवरण को हटाता है। तुम्हें देखते ही मेरा आवरण हट गया। अब तुम मुझे बहला नहीं सकते। सो, तुम मुझे मिल गये हो।

सन्त कबीर ने पूछा तुम्हारा क्या नाम है ? स्त्री ने कहा नाम नहीं काम की बात करो। नाम से कोई मतलब नहीं। स्त्री का कोई नाम नहीं होता है। पति ही उसका नाम है। मैं तुम्हारी लुगाई हूँ। स्त्री हूँ। आज से लोग मुझे सन्त कबीर की मेहरारू के नाम से जानेंगे। सन्त मंडली इसे झूठ कहेगी। किन्तु लोग सच मानेंगे। समर्पण ही सत्य है। मैंने अपने को दिया। जाने अनजाने दिया। लेना न लेना तुम्हारा काम है। किन्तु न लेने से क्या मेरा समर्पण लौट जायगा ? लौटे भी वो कहाँ लौटे ? घरों पर ताले जड़े हैं। हाँ, निर्जन, खंडहर और ऊँची घासों के अंधकार मुँह बाए खड़े हैं।

सन्त ने स्त्री को बातों पर ध्यान न देकर कहा अभी तो मैं तुम्हारे कपड़े लाना चाहता हूँ। विश्वास रखो। अवश्य लौटूंगा। मैं अभी लौट आता हूँ। दुनिया

में दो तरह के नियम चलते हैं। एक है निर्गुन और दूसरा है सगुन। निर्गुन में सब नंगे हैं। सब तुम्हें नंगा देखना चाहते हैं। किन्तु सगुन में यह नहीं चलता।.......

सन्त अभी कुछ और कहना चाहते थे। किन्तु उन्हें स्त्री की पकड़ कुछ ढीली लगी। वे झटके से उठे और अन्धकार में विलीन हो गये।

वे बाबा की कुटिया पर आकर खड़े हो गये। बाहर और भीतर के सभी लोग गहरी नींद में सो रहे थे। टिमटिमाता दीपक अब बुझना ही चाहता था। सन्त को लगा कि बाबा जगा है। उन्होंने देह को कड़ा किया। अगर बाबा ने रोकना चाहा तो ऐसा झापड़ दूंगा कि बच्चा को छठी का दूध याद आ जायगा। सारी साधना धूल में लोटने लगेगी। यह सब राजसिक साधना है। साधना के नाम पर देह व्यापार है। भ्रष्टाचारी साधना के मार्ग में भी घुस आये हैं। यह सब माया का खेल है। किन्तु उन्हें इसका अवसर नहीं मिला। बाबा खर्राटे ले रहा था। स्त्री के कपड़े कुटी के कोने में पड़े थे। उन्होंने उन्हें धीरे से उठाया और बाहर आ गये। कपड़े क्या थे? एक धोती और एक अंगिया।

उन्होंने लाकर स्त्री को दे दिया। लो इसे पहन लो। अचानक उनकी हथेली नाक से छू गयी। उन्होंने हथेलीं को अपने कपड़े में रगड़ दिया। जैसे हथेली में कुछ लग गया है जिसे वे पोंछ देना चाहते हैं। उन्होंने हथेली को पुनः सूंघा। गन्ध मौजूद थी। उनका मन दुखी हो गया। हे प्रभु! तुम्हारी कैसी लीला है नाथ। जिसके वस्त्र की गन्ध ने हथेली को इतना प्रभावित किया है उसका शरीर क्या करेगा? मन में आया कि यहीं धरती पर बैठकर हथेली को मिट्टी में खूब रगड़ें। या पास की नदी में मलमल कर धोएँ। किन्तु स्त्री तो उनके सारे शरीर से चिपक चुकी थी। अचानक एक दर्प पूर्ण मानवी गन्ध चारों ओर फैल गयी। अब अँधेरा नहीं। गन्ध का अँधेरा था। कबीर बुरी तरह घिरे थे। नाक, कान, आँख तो क्या सारे रोम कूपों में स्त्री गन्ध का अँधेरा भर गया। सन्त को गुरु की बात याद आयी। स्त्री अँधकार है। माया है। ठगिनी है। मधुरी बानी बोल कर सबको बाँध लेती है। साधक को इससे बचना होता है। उनकी इच्छा हुई

कि वे अभी घर भाग जायँ। दूर नदी के किनारे सियार बोल रहे थे। बाँसों में लटके गादुर चाँय-चाँय करते उड़ रहे थे। सन्नाटे की रात में उनके उड़ने की आवाज आ रही थी। चारों ओर घोर अँधेरा था। अपना हाथ देखने में भी कठिनाई हो रही थी।

सभी प्रकार के अँधेर से बड़ा अँधेरा इस स्त्री को क्या करें? यह तो चिपक गयी है। रोम-रोम में समा गयी है। सन्त अपने घर का रास्ता भूल गये। सारे रास्ते स्त्री के अंधकार में डूब गये। क्या करें? वे मौन बैठे थे। समाधि नहीं लग रही थी।

स्त्री ने मौन तोड़ा। क्या सोच रहे हो? चलो, घर चलें। तुम्हें दो संतानें भी हैं। पता नहीं उन्होंने कुछ खाया होगा या बिना खाये सो गये होंगे? स्त्री की आँखों में माँ की वेदना डबडबा आयी। उसने कबीर का हाथ पकड़ लिया। यह हाथ दूसरा था। इसमें वासना का ताप नहीं था। स्नेह की शीतलता थी।

सन्त ने उस अँधेरे में भी अनुभव किया। पुरुष संन्यास और वैराग्य से परे भी एक संसार है। माँ का संसार। संतान की दुनिया। जहाँ इंगला, पिंगला और सुषुम्ना की साधना नहीं है। किन्तु एक साधना है और कई साधनाओं से महत्वपूर्ण है। साधनाओं में ढोंग, धोखा और छल हो सकता है। किन्तु माँ की साधना भक्तिन की साधना है। यह भक्तिन केवल देती है। दर्द से तक दूध।

दो बच्चे इला, पिंगला हैं। स्त्री सुषुम्ना है। सुखमना है। जिसमें दोनों संतानरूपी नाड़ियाँ समाहित हैं। तीन गुन की बिनी चदरिया—

सो चादर सुरनर मुनि ओढ़िन
ओढ़ि के मैली किनी चदरिया।

तो क्या कबीर की चादर भी अब मैली होगी? क्या उनकी चुनरी में स्त्री और सन्तान की मैली दाग लग जायगी? स्त्री की वासना जैसी ही प्रबल है सन्तान की वासना। मनुष्य सन्तान के रूप में सनातन रहना चाहता है। स्त्री की वासना में उबाल है वासन का तूफान है। किन्तु सन्तान की वासना सर-

स्वती-सी अंतःसलिला है। बहती है। कभी उफनती नहीं। ऊपर से सूखी। भीतर प्रवाह भरी। सन्त ने अपने मन के भावों को रोका। मन ही तो है। जाने किधर और कहाँ निकल जाय ? मैमंत है मन। इसी लिए मन को मारना चाहिए—

मैमंता मन मारि रे नान्हाँ करि-करि पीसि।
तब सुख पावै सुन्दरी ब्रह्म झलकै सीसि।

सुन्दरी का ध्यान आते ही सन्त पुनः सचेत हुए। वे बिना कुछ बोले उठ खड़े हुए। सुन्दरी से कहा चलो। आगे-आगे सुन्दरी। पीछे-पीछे सन्त। कुछ समय बाद सुन्दरी ने अपने घर में पैर रखा। सन्त ने कहा—अच्छा मैं चलता हूँ। सुन्दरी बोली—घर में आने से कोई परहेज है क्या ? बच्चों को देख तो लो। क्या सन्त-मार्ग में बच्चों को देखना भी पाप है ? स्त्री अपराधिनो हो सकती है। किन्तु बच्चों ने क्या अपराध किया हैं ? इन्हें छोड़ने का कोई कारण नहीं समझती।

संत उदास हो गये। नहीं, मुझे मत फँसाओ। मैं तुम्हारी सहायता करूँगा। अवश्य करूँगा। किन्तु अलग रहकर। सुन्दरी ने उनकी बाँह पकड़ ली। तुम पुरुष भी कैसे निरदया होते हो ? क्या तुम्हें सन्तान का मोह नहीं है ? एक बार उन्हें देख तो लो। लगता है दोनों सो गये हैं।

सन्त ने उसके साथ घर में प्रवेश किया। बच्चे सो गये थे। अत्यन्त सुन्दर। कहना कठिन था कि लड़का अधिक सुन्दर था कि लड़की ? दोनों जुड़वाँ पैदा हुए थे। सन्त बच्चों को देख प्रभावित हो गये। उनके मुँह से निकला कमाल। स्त्री ने कहा कमाली भो। और तब से दोनों बच्चे कमाल और कमाली के रूप में प्रसिद्ध हुए। लोग इन्हें कबीर साहब की सन्तान के रूप में जानते हैं। सब कुछ का खंडन करने वाले साहब से इस छोटी-सी बात का खंडन करते न बना। खंडन किया भी हो तो सुनता कौन है ? सत्य तो प्रचार का दास है।

फिर क्या हुआ ? यदि ये आत्मज नहीं हैं ? बच्चे तो बच्चे हैं ? सन्त कैसे कहें कि ये बच्चे हमारे नहीं हैं। हमारे नहीं तो किसके हैं ? कौन इनका प्रभु, पिता और मालिक ?

स्त्री ने पुनः सन्त का हाथ पकड़ लिया। वह सन्त के शरीर से लिपट जाना चाहती थी। किन्तु सन्त ने ऐसा होने नहीं दिया। किन्तु सन्त ने स्त्री के शरीर के कंपन का अनुभव किया। स्त्री अब भी डरी थी। काँप रही थी। सन्त ने पूछा—इतनी देर बाद भी तुम काँप रही हो ? विश्वास रखो। अब तुम मुक्त हो। वे नकली साधक तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते। होश आने पर वे श्वान-सा भूकेंगे। उन्हें अपनी साधना की गलती का अनुभव हो जायगा। ऐसी साधनाएँ न तो उपयोगी होती हैं। न टिकाऊ।

स्त्री ने कहा—नहीं। मुझे एक बात का भय है। ये लोग अपने पास भूत-प्रेत रखते हैं। ये दुष्ट जिसका नुकसान चाहते हैं इन भूतों को उसके घर भेज देते हैं। भूत घर में घुसकर उपद्रव करते हैं। हमारे गाँव में ऐसी कितनी ही घटनाएँ हो गयी हैं। किसी के घर में हड्डी फेंकी जाती है। किसी के घर में मांस के लोथड़े फेंके जाते हैं। कोई बीमार हो जाता है। कै-दस्त में मर जाता है। खून फेंकने लगता है। कई बार हमने भी सुना है, अच्छे-खासे मोटे मुसटंडे लोग खून फेंककर मर गये। बच्चों पर इनकी खास निगाह रहती है। मेरे भी बच्चे हैं। कहीं उनका कुछ···।

यह कहते-कहते स्त्री रोने लगी। कहीं मेरे बच्चों को कुछ हो न जाय। मैं पहले भी इसी से डरी थी। इस डर ने भी मुझे उनके साथ जाने को मजबूर किया था। ये बड़े दुष्ट होते हैं। सारा गाँव इनसे डरता है। ये जिधर जाते हैं आतंक फैल जाता है। साधु क्या आये हैजा, प्लेग आ गया। महामारी फैल गयी। अब तो मुझे तुम्हारे बारे में भी डर लगता है। कहीं तुम्हारे पीछे भी भूत न लगा दें ? इनके भूत बड़े खतरनाक होते हैं।

सन्त हँसे। वे ठहाका लगाना चाहते थे। किन्तु उन्होंने अपने को रोका। इस सूनी रात में उनकी आवाज दूर तक जायगी। पता नहीं कौन जगा हो ? जागे ? क्या सोचे ? कोई उपद्रव न हो जाय ?

उन्होंने स्त्री के माथे पर हाथ रखते हुए कहा—'बस, इतनी ही बात के लिए परेशान हो ? याद रखना। वह साधु नहीं, चांडाल हैं। अघोरी, कापालिक आदि साधु नहीं होते हैं। यह अपढ़, अशिक्षित लोगों को धोखा देता है। जहाँ राम हैं वहाँ उसका भूत कुछ नहीं कर सकता है। राम भूतों, प्रेतों, डायनों सब के मालिक हैं। तुम राम को याद करो। हर समय रामनाम जपो। प्रेत वहीं रहते हैं जहाँ राम नहीं हैं। जहाँ राम हैं वहाँ उनका कोई बस नहीं चलता। तुमने देखा नहीं कबीर का वे कुछ न बिगाड़ सके। कुछ बिगाड़ भी नहीं सकते। राम के राज में घुसने की उनकी हिम्मत नहीं है। रामनाम सुनते ही वे सिर पर पैर रखकर भागते हैं। वे क्या हैजा लायेंगे ? खुद ही मरने लगते हैं।

वैष्णवों के यहाँ कोई भूत-प्रेत नहीं आता। ये लोग किसी से नहीं डरते। केवल वैष्णवों से डरते हैं।

ये लोग माया के चक्कर में हैं। हम माया के स्वामी के सेवक हैं। माया की क्या मजाल कि वह राम-भक्तों की परछाहीं भी छू सके।

भूत उसे ही डराते हैं जो उनसे डरता है। भगवान् में लौ नहीं लगाता है। जिसका ध्यान राम में है उसका वे कुछ नहीं करते। तुमने सुना होगा। राम अपनी स्त्री और छोटे भाई लछमन के साथ वन-वन घूमते रहे। १४ वर्षों तक वन में रहे। वन में लाखों भूत रहते हैं। हर वनवासी प्रेतों से डरकर पूजा चढ़ाता है। मनौती मानता है। तरह-तरह के पेड़ों, पौधों, पत्थरों, ढेलों आदि को सिर झुकाता है। शोखा, ओझा की शरण में जाता है। किन्तु राम, सीता, लछमन कहीं नहीं गये। कोई ओझा, शोखा उनके पास नहीं आया। किसी भूत-प्रेत ने उनका कुछ नहीं बिगाड़ा।

हर समय रिखियों, मुनियों से घिरे राम को किसी भूत-प्रेत ने देखा तक नहीं। साधु-संगति से वे लोग डरते हैं। साधुओं के बीच उनकी हिम्मत नहीं होती। भूत-प्रेत गरीबों को ही सताते हैं।

स्त्री ने कहा—किन्तु राक्षसों ने तो रामजी को बहुत तंग किया। बेचारे बच गये। नहीं तो उनकी पत्नी को ही हर ले गये थे। जैसे ये दुष्ट कापालिक अघोरी मुझे ले गये थे। बेचारी सीता माता को दुष्टों ने कितना कष्ट दिया।

सन्त हँसे । इसका कारण जानती हो ? तुम्हें पता होगा । एक औरत उनके पीछे पड़ गयी थी । औरतों से भगवान् बचाएँ । जिसके भी पीछे पड़ीं उसका नाश कर देती हैं । वन में कौन-कौन उपद्रव नहीं हुए ? बालि मारा गया। रावण के तो पूरे परिवार का ही नाश हो गया ।

स्त्री अत्यन्त सावधान हो गयी । तन कर बोली—तुम कहना क्या चाहते हो ? मैं भी तो स्त्री हूँ । तुम्हारे पीछे पड़ गयी हूँ । यही न ।

सचमुच बात सही थी । सन्त यही सोच रहे थे । उनके मन में स्त्री के प्रति अत्यन्त विराग था । डरे थे । वे हर स्त्री को सूपनखा समझते थे । किन्तु दया भी थी । नाक-कान काटना ठीक नहीं है । रामजी ने अच्छा नहीं किया । लछमन को कहकर उसकी नाक कटवा दी । लछमन को भी ऐसा नहीं करना चाहिए था । सन्त ने इस कथा पर बार-बार सोचा था । किन्तु वे किसी निर्णय पर पहुँच नहीं पाते थे । एक तरफ थी स्त्री की कामदुष्टता । दूसरी ओर था राम-लछमन का कड़ा दण्ड । वे सोच नहीं पाते थे । कौन ठीक है ? एक या दोनों ? या दोनों में कोई भी नहीं ।

सन्त ने अपनी भावनाओं पर अंकुश रखा । बोले—तुम ठीक कहते हो । स्त्रियों के बारे में हमारा विचार अच्छा नहीं है । ये अक्सर युद्ध करा देती हैं । साधना के मार्ग से गिरा देती हैं । साफ-साफ कहूँ । मैं तुमसे भी डरता हूँ ।

तुम्हारा साथ भी ठीक नहीं है । संग-साथ के कारण ही नारद मोह हो जाता है । नारदजी भी बड़े रिखी थे । किन्तु स्त्री के कारण उन्हें मोह हो गया । वे योग के उच्च आसन से गिर गये । अंत में रामजी ने ही उन्हें बचाया वरना सारी साधना नष्ट हो जाती ।

स्त्री उनकी बातें सुनती रही । उसने जोर से निश्वास लिया । बोली—इतना अपमान मत करो । मैं तुम्हारे लिए प्रेत नहीं बनूंगी ।

सन्त दृढ़ रहे । बोले यही तो संकट है । प्रेत या राक्षस सुन्दर नहीं होते । उनकी सूरत डरावनी होती है । उन्हें देखकर आदमी बेहोश हो जाता है । भागता है । ठीक उलटे स्त्री लुभाती है । स्त्री जितनी सुन्दर होगी उतनी ही खतरनाक होगी । रूप का आकर्षण मनुष्य को नष्ट कर देता है ।

नारि नरक की खानि है। भगवान् बुद्ध ने यशोधरा को सोती छोड़ न दिया होता तो वे वहाँ से निकल पाते क्या ? उसी नरक में पड़े रहते। जिस नरक में लाखों करोड़ों पड़े हैं। सबसे मजे की बात तो यह कि नारी उसे ही पकड़ती है जो उसका भला चाहता है। उद्धार करता है। स्त्री का तो शायद उद्धार हो जाता है किन्तु पुरुष पंक में फँस जाता है। एक नदी में एक बनरिया डूब रही थी। एक साधु पुरुष घाट पर नहा रहे थे। उन्हें दया आ गयी। आगे बढ़कर बनरिया को निकालना चाहा। वे बनरिया के पास गये। पकड़कर बनरिया को कन्धे पर बिठाना चाहा। बनरिया उछल कर कन्धे पर चढ़ी। दूसरी छलांग में वह नदी पार हो गयी। किन्तु पुरुष पानी में दब गया। डूब गया। अब बनरिया पेड़ पर थी और मृत पुरुष पानी में बह रहा था। इसमें किसी का कोई दोष नहीं है। यह स्वभाव है। यह रोका नहीं जा सकता। इसे रोकने का एक ही उपाय है। आदमी स्त्री से दूर रहें।

घर से निकले गौतम को यशोधरा ने क्या-क्या नहीं कहा होगा। दूसरे लोगों को भी बुरा लगा होगा। किन्तु बिना इसके गौतम बुद्ध नहीं बन सकते थे। सिद्धि और सिद्धार्थ के लिये आदमी को निर्मम बनना पड़ता है। मैं, मम, मेरा, हमारा से बचना होता है। स्त्री के साथ रहकर यह सब नहीं हो सकता है।

स्त्री के पास किरनों की डोरी है। रेशमी रस्सी है। काजल भरा लासा है। भूल भुलैया है। अनेक द्वारों का घर है। जहाँ आदमी बँध जाता है। चिपक जाता है। भुलैया में फँसकर खो जाता है। क्या करने चला था क्या करने लगता है ? भूत, प्रेत से छूटना आसान है। स्त्री से छूटना आसान नहीं है। स्त्री से आज तक कोई छूटा है ? इस खूंटे में जो बँधा उसकी बलि हो गयी। जानते हुए भी कि हमारी बलि होने वाली है आदमी स्त्री का पशु सा हाथ चाटता है। पैर चूमता है। उसके दिये कणों को खाकर सुख का अनुभव करता है। स्त्री भीतर ही भीतर दुखी हो रही थी। किन्तु उसने कोई प्रतिवाद नहीं किया। शायद रो रही थी। अँधेरे में कुछ दीख नहीं रहा था। उसने काँपते स्वर में कहा—यह सब क्या कहते हो ? यह कहकर उसने सन्त का हाथ पकड़ना चाहा किन्तु सन्त आगे बढ़ गए।

खंखर भये...

सन्त आजकल उदासीन रहते हैं। मौन। सबेरे थोड़ी सी रामधुन। शाम को सत्संग में पदों का गायन। बाकी समय चुप। सतसंग की लाचारी है। लोग आ जाते हैं। अब तो अनेक महात्मा आने लगे हैं। रामचर्चा होती है। सन्त कबीर कुछ नहीं बोलते हैं। महात्माओं से सुनते हैं। ध्यान से सुनते हैं। साधुओं, जोगियों, दरवेशों एंवं फकीरों की जमात जुटती है। युवक साधु उनका स्वागत सत्कार करते हैं। किन्तु कबीर साहब की बानी नहीं खुलती है। तमूरे पर हाथ नहीं धरते। तारों से उँगलियों का परस नहीं होता। कोई पूछता भी नहीं। आखिर महात्मा को क्या हो गया है? क्यों इतने मौन हैं?

नयी युवती से सम्बन्धों की चर्चा जोरों पर है। लोग अनेक किस्से सुनाते हैं। स्त्री-पुरुष के वैध सम्बन्धों की चर्चा कोई नहीं करता। किन्तु ज्यों ही लोग अवैध सम्बन्धों की जानकारी सूंघ लेते हैं उन्हें सारे संसार में फैला देना चाहते हैं। नाना प्रकार के क़िस्से वामन से विराट् बन जाते हैं। फिर तो असत् भी सत् दीखने लगता है।

महात्मा कबीर के विरोधी प्रसन्न हैं। कुछ मिला तो सही। बेचारे बहुत दिनों से खाली बैठे थे। निन्दा रस स्वयं सूख रहा था। सबकी जबान चल रही है—बड़ा छली है यह कबीर। पहले आचार्य रामानन्द जी को धोखा दिया। गुरु बना लिया। देखा नहीं, कैसा स्वांग रचा। वैरागी बना। अब विवाह कर लिया। अब चुपके-चुपके मौज करता है।

कुछ लोगों की राय में विवाह कर लिया तो कोई बुरा नहीं किया। जोगी तो गृहस्थ होते ही हैं। किन्तु विवाहिता को घर में रखना चाहिये। उसे पत्नी का आदर देना चाहिए। किन्तु यह व्यक्ति अभी भी वैराग का ढोंग रचे है। उस स्त्री के यहाँ जाता है। वह भी आती है। लेन-देन भी होता है। किन्तु

कहता है वह मेरी स्त्री नहीं है। बहुरिया को कैसी बहुरिया ? मैं तो खुद ही राम की बहुरिया हूँ। दुनिया में कहीं मेहरारू ने मेहरास रखा है क्या ? मेरा विवाह तो राम से हुआ है। हरि से हुआ है। हरि ही मेरा पिउ है—हरि मोरा पिउ मैं तो राम की बहुरिया।

पांडे बहुरिया को अरथाते हैं—बहुरिया नहीं। इसे बहुरुपिया कहो। कबिरा बड़ा चालू हो। कुछ लोगों को इस निन्दा में बड़ा मजा आता है। निन्दा ही उनका भगवद् भजन है। भक्ति संगीत है।

युवकों के दल की राय भी इसी प्रकार की है। बहुरिया बनना नाटक है। राम तो भगवान् हैं। सबके प्रभु हैं। मालिक हैं। उन्हें किसी को मेहर बनाने से क्या काम ? कबीर कहते हैं कि राम अलख हैं। निरंजन हैं। भला निरंजन राम अंजन वाली के पीछे क्यों दौड़ेगा ? विदमान लोग ठीक ही कहते हैं यह और कुछ नहीं वासना का बदला रूप है। औरतन में ज्यादे आसक्ति ने इन्हें औरत जैसा बना दिया है। मन वासना में डूबा है। कभी भगवान् को अपने में देखते हैं। कभी अपने को औरत रूप में देखते हैं।

दूसरे ने ताना कसा। देखते नहीं, कैसी जानमारू आँख है ? आँख क्या है रोशनाई भरी दवात। दो कजरौटी एक साथ। बिना आँजन के आँजन। उसकी आँखों की कालिमा देख भादो की अन्हरिया भी सफेद पड़ जाती है। कलमी आम की फाँकियो को कालिख में डुबो दिया है। और भैया बदमाश भी कम नहीं। इसी के कारण एक मियाँ और एक बाबा की पिटाई हो गयी। ऐसी कुटम्मस हुई कि बाबा का सारा तन्तर-मन्तर भूल गया। चले थे ससुर साधना करने। नंगी औरत के साथ सोकर साधना करते थे। कैसे-कैसे ढोंगी हैं ? अरे भाई, सीधे क्यों नहीं कहते कि हम औरत चाहते हैं। औरत की चाह क्या कोई बुरी चीज है ? युवक ठहाका मारकर हँसा।

तीसरा आगे बढ़कर बोला—साधुता एक अच्छा धन्धा है। काम न धाम। पूजा अलग से। मजा लो। वे लोग ठीक थे जिन्होंने स्त्रियों को योग से अलग

रखा । स्त्री योग करेगी तो भोग क्या पत्थर से होगा ? स्त्री-पुरुष का योग ही भोग है । दोनों को जोड़ने से भोग ही तो निकलेगा ।

पास के पीपल पेड़ की जड़ में कुछ हिला । एक मूर्ति ने अपनी चादर हटाई । ऊँची आवाज में कहा— सब सुन रहा हूँ । तुम लोग साधु निन्दा का सुख ले रहे हो । ले लो । कबीर को कुछ नहीं कहना है । मैं निन्दा की परवाह नहीं करता हूँ । खुद लुकाठी लिये हूँ । घर फूंक तमाशा देखने वाले को कैसी निन्दा ? कैसी प्रशंसा ? साहस हो तो साथ आओ । मैं तो चला ।

यह कहते हुए सन्त खड़े हो गये ।

युवक सकपका गये । उन्होंने सन्त को देखा । पीपल की जड़ को देखा । सन्त ने पुनः कहा परेशान मत हो । केवल एक बात कहूँगा । सुन लो । राम की बहुरिया बनना आसान नहीं है । इसकी जरूरत भी समझो । यह संसार की बहुरिया से छूटने का उपाय है । स्त्री मोह है । काम, क्रोध और लोभ है । इससे छूटने के लिये राम से जुड़ना जरूरी है । अपने को राम पर छोड़ दो । कोई चिन्ता मत करो । भगवान भगत का लोभ, मोह, काम, क्रोध सब ले लेता है । सब देता है । भोजन पानी तो देगा ही । और जो माँगो । सब देगा ।

धन ही तो पाप का मूल है । भगवान के पास पहुँचकर धन का लोभ खतम हो जाता है । साँईं से हम उतना ही माँगते हैं जितने में कुटुम समाय । मैं भी भूखा ना रहूँ । साधु न भूखा जाय ।

साधु का पेट छोटा होता है । गृहस्थ का पेट पाताल है । पहाड़ भी समाये तो खाली रह जाय ।

बस, जाओ । मैं चला । आज यहाँ का बैठना सुफल हो गया । मालूम हो गया । लोग मेरे बारे में क्या सोचते हैं ? मैं निन्दक को पसन्द करता हूँ । निन्दक मेरे मित्र हैं । उसे नियरे रखना चाहता हूँ । बेचारा बिना साबुन पानी के मन की मैल साफ करता है । हाँ, पाँडे से बचना । अपने कसाई का काम करता है और दूसरों को उपदेश देता है । जीभ के लोभ को देव-बलि

कहता है। अपनी बलि कोई नहीं देता। बकरे की बलि सब देते हैं। अपने विकारों की बलि दो। सब कुछ प्रभु चरणों में बलिदान कर फक्कड़ घूमो।

सन्त ने बात कह दी। लोगों ने उनसे बहस नहीं की। इसके पीछे श्रद्धा भी है! उपेक्षा भी है।

किन्तु सन्त का मन क्षुब्ध हो गया। कैसे-कैसे लोग हैं। कोई हिचक नहीं। कोई संकोच और लज्जा नहीं। सच का पता लगाये बिना कैसी-कैसी बातें सोचते हैं? क्या-क्या कहते हैं? मन आया बोलते हैं। लोगों को दूसरों की निन्दा में सुख मिलता है। परनिन्दा संसार की बहुत बड़ी व्याधि है। रोग है। किन्तु यह रोग पत्नी सा प्यारा एवं पुत्र सा दुलारा होता है। कोई इस रोग की दवा नहीं लेना चाहता। उलटे लोग चाहते हैं कि यह रोग सदा बना रहे।

किन्तु परनिन्दा अपनी ही निन्दा है। हम अपना उद्द्म छोड़कर दूसरों की बुराई ढूँढने में लग जाते हैं। निन्दा करते-करते निन्दा बन जाते हैं। निन्दा कीट निन्दा से भौरा बन जाते हैं। दूसरों का बिगाड़ने के चक्कर में अपना अधिक बिगाड़ लेते हैं। एक आदमी दिन भर पत्थर फेंकता है। दूसरे घायल होते हैं। किन्तु शाम को उसके हाथ में क्या बचता है? वे ही पत्थर जिन्हें वह दिन भर फेंकता रहा है। दूसरों को दुखी करनेवाला कभी सुखी नहीं रह सकता है।

सन्त का मन उचट गया। कहीं घूम आऊँ। साधु को रमता होना चाहिए। सद्गुरु ने भी कहा था देश देखो। लोग तीर्थों में जाते हैं। किन्तु तीर्थों में भी झमेला है। वहाँ भी मन को शान्ति नहीं मिलती है। काशी भी तो तीर्थ है। सारे देश के लोग यहाँ आते हैं। कितनी श्रद्धा लेकर आते हैं। दान, पूजा, अरचा सब करते हैं। जिसके पास जितना है सब दिखाता है। लुटाता है। पंडे-पुरोहित लूटते हैं। कोई काम धन्धा नहीं करते। बात-बात पर गाली, गोजी, लाठी, फरसा। तीर्थ विकारों से भर गये हैं।

तीर्थ व्यापार बन गये हैं। पुरोहितों में भक्ति का लेश भी नहीं है। किन्तु टीका फटाका ऐसा लगाते हैं जैसे कोई बड़े संन्यासी हों। साधु महात्मा हों। यात्री या बाहर से आया सरघालू उनका धन है। पशुधन है। धन पशु है। और पुरोहित धन पिशाच हैं। जजमान का सब कुछ छीन लेना चाहते हैं। कभी-कभी लोभ इतना बढ़ जाता है कि मुर्गी का पेट चीरकर अंडा निकालना चाहते हैं। जजमान को मारकर उनकी सम्पत्ति छीनने में शर्म नहीं करते हैं। धेले के लिये जजमान से लड़ जाते हैं। धरम का भय दिखाकर पैसा ऐंठते हैं।

मन्दिरों के बाहर-भीतर कूड़ों का ढेर पड़ा रहता है। गंगा के आस-पास की गन्दगी देखते बनती है। सारा मल मुत्तर घाट की सीढ़ियों पर। दातौन के टुकड़े जगह-जगह फैले रहते हैं। कौन साफ करे ? हमने कभी किसी तीर्थ पुरोहित या पंडे को घाट की सफाई करते नहीं देखा। जो सही भक्त हैं वे ही बेचारे कभी कभार सफाई में लग जाते हैं। पुन्न उन्हें होगा कि इन धन्धेवाजों को जो मुफ्त का खा-खा कर सूअर सा लोटते रहते हैं। इनसे मालिक भी खुश नहीं है। तभी तो बार-बार अकाल आता है। रोग फैलते हैं।

अजीब हाल है। संन्यासी अपने मठों में मस्त हैं। पंडे जजमानों को लूटने में। भगवान् पत्थर की मूरत बना देखता है। कुछ कर नहीं सकता। माया सबको नचा रही है। तीरथ के पानी में सबको पकड़े बैठी है। यह धन्धा देख-देखकर हँसती है। किसी को कुछ समझ में नहीं आता है। क्या हो रहा है ? हम साँईं से कितने दूर चले गये हैं ? साँईं कितना नाराज हो रहा है ?

किसी का मन पवित्र नहीं है। बाहर धोते हैं। भीतर मैल जमी है। मन गन्दा है। कोई मन के तीर्थों में नहीं जाता। मन के तीर्थ की सफाई नहीं करता है। नदियों की सफाई की बात होती है। किन्तु मन की सफाई के बिना नदियाँ कैसे साफ होंगी ? मन ही तो मच्छन्दर गोरख है। काशी और कैलास है। एक दूसरे की बुराई में लगे हैं। इस नहाने धोने से क्या फायदा है ? क्या हो तेरे न्याहे धोए भीतर मैल अपारा। इसका यह मतलब नहीं कि सन्त कबीर बाहर से गन्दा रहते हैं। यह बात उन्होंने आत्म शुद्धि के लिये कही है। वे

किसी दिखावा को साधना के मार्ग में बाधक मानते हैं। गेरुआ पहनना या दाढ़ी बढ़ाना साधुता नहीं है। साधुता मन को मूड़ना है। विकार मन में बसता है।

सन्त मैमंता मन को मारना चाहते हैं। किन्तु मन बार-बार विकार में पड़ जाता है। स्वाद के साथ चला जाता है। इंद्रिय स्वाद संसार का सबसे बड़ा दुख है। इन्द्रियाँ विषयों का संग करती हैं। यह उनका स्वाभाविक संग है। इसी संग को कुसंग कहते हैं। मन कुसंग में पड़कर अपना काम भूलता है। राम को भूलता है। मन मैमंत हाथी है। जिधर जाता है धूल फेंकता जाता है। अपने ऊपर भी धूल फेंकता है। अपना गन्दा करता है। दूसरों को गन्दा बनाता है।

कबीर चले जा रहे थे। यह पलाशवन का रास्ता है। दोनों ओर पलाश। दूर-दूर तक फैले पलाश। होली के दिन हैं। बसन्त का मौसम है। पूरा पलाश बन फूला है लाल-लाल टेस है। टेसू है। पूरे वन में अंगारे बिछे हैं। धुआँ नहीं। कालिमा नहीं। ताव नहीं। गरमाने का मौसम आया है। ऋतु बदली है। दहकते पलाश ने शिशिर को बिदा कर दिया है। पूरा जंगल होरी की लपटों में दहक रहा है। बीच-बीच में कोयल गाती है। होली गा रही है। दिशाएँ शीतल अंगारों से भर गयी हैं। अंगारों की दरिया बिछी है। पूरा जंगल लाल साड़ी पहने है।

कबीर की नलिनी कुम्हला गयी है। लहरतारा के तालाब में कमल खिलते थे। पूरा तालाब कमल पुष्पों से भरा रहता। पहले दो-चार पाँच-दस खिलते हैं। लक्ष्मी के पैरों की छाप से दीखते हैं। बाद में पूरा तालाब कमलों से भर जाता है। पुरइन पात पर खिले कमल। हरी कालीनों पर लक्ष्मी के पैरों की छाप। जहाँ कालीन हैं वहाँ लक्ष्मी है। कालीन लक्ष्मी के पायँदाज हैं। लक्ष्मी कालीन से आती है। शिशिर सबको खा गया। कैसा बदसूरत लगता है तालाब। कहाँ गये पुरइन के गलीचे और कमलों की छाप। चाँदनी के बाद अँधेरी रात में सब विलीन हो गये। नलिनी कुम्हला गयी। पानी के प्रवाह में गल गयी।

अब टेसू की ऋतु है। सबका मौसम होता है। कमल का भी। पानी का भी। आग और उजाड़ का भी। कमल पानी में खिला था। टेसू सूखे में खिलते हैं। उजड़ में। सूखे और पत्थर पहाड़ पर खिलते हैं। संसार में कौन जनमता नहीं ? कौन जबान नहीं होता है। किन्तु जबानी केवल दो दिन रहती है। फिर बुढापा मौत। खलक चबीणां काल का, कुछ मुख मैं कुछ गोद। पलाश भी दहककर बुझ गये। पिछले साल भी टेसू ऐसे ही टेस था। पूरा वन लाल घांघरे में झमझमा रहा था। प्रतिवर्ष ऐसा ही होता है। किन्तु थोड़े दिनों में लाली खतम हो जाती है। रह जाते हैं पलाश के खंखर। झंखाड़। ऊबड़-खाबड़ बेतुके वन। जहाँ गिद्ध युद्ध होते हैं। सियारों की रागिनी और हुँड़ारों की भैरवी होती है। बगुले मौन की साधना करते हैं। कौए बेकार चिल्लाकर अपना छोटापन जाहिर करते हैं।

सन्त जी का मन विराग से भर गया। टेसू का खिला यौवन आँखों से दूर हो गया। मन पत्थरों पर उगे पलाश पेड़ की जड़ों पर चला गया। लगा जैसा सारे फूल बाहरी हैं। मूल में कुछ भी नहीं हैं। न पत्ते, न फूल। न हरियाली। सियार, गिलहरी, हुँड़ार, गिद्ध, कौए यही सब सत्य हैं। कहाँ चली जाती है कमल की लाली। टेसू का टहकार रंग। पागल बना देनेवाला दहकता जंगल। पेड़ों पर बैठनेवाले दोनों पक्षी उड़ गये। एक खाता था। दूसरा देखता था। किन्तु एक तीसरा था। जो सबको खा गया। सामने मरे पशुओं की हड्डियाँ इकट्ठी की जा रही थीं। पूरे गाँव के जानवर मरने के बाद यही फेंके जाते हैं। उनके चमड़े उधेड़कर उसी समय चले जाते हैं। माँस चील, कौए, गिद्ध, कुत्ते, सियार आदि खाते हैं। बच जाती हैं ठठरियाँ। ये सूखती रहतीं हैं। कुछ दिनों के बाद इनके भी ग्राहक आ जाते हैं। चुन-चुन कर ढेर करते हैं। फिर बाजार ले जाकर बेचते हैं। यह रोज होता है। रोज जानवर मरते हैं। उधेड़े जाते हैं। नोचे जाते हैं। हड्डियाँ सूखती हैं। बीनी और बेची जाती हैं। एक गाय उन्हीं हड्डियों की छाया में बैठी थी। सारे जानवर निकल गये थे। इस गाय का साथ बच्चों ने भी छोड़ दिया था। अहीर का छोकड़ा सबको हाँक ले गया।

बूढ़ी गाय किस काम की ? खिलाओ। पिलाओ। दाना भूसा दो। बदले में कुछ नहीं। हमारे सभी कामों के पीछे स्वार्थ है। अदला बदली की भावना है। जो दे नहीं सकता उसे पाने का भी हक नहीं है। लेन देन ही समाज है। यह गाय अब बिल्कुल बेकार हो गयी है। इसे रखने का मतलब है दूसरे जानवरों को भी नष्ट करना। व्यर्थ का खर्चा कौन ले ?

यह वही गाय थी जिसके आने पर इसे देखने के लिये सारा गाँव दौड़ रहा था। महतो के घर पर दर्शनार्थियों का मेला लग गया था। टीका लगाकर, फूल चढ़ाकर आरती उतारी गयी थी। गले में कौड़ियों की माला एवं नजर से बचाने के लिये काले डोरे की कंठी पहनायी गयी। खुरों को धोकर समूचे घर और खेतों में छिड़काव किया गया था। सींगों में तेल और सिंदूर लगाये जाते थे। सोने मढ़े गये थे। दोनों वक्त स्वयं मालिक अपने हाथों दाना भूसा देते। अंगोछी से छाड़ते पोंछते। एक आदमी महीन चरी काटने पर रहता। गाय हाथी जैसी झूमती चलती।

शरीर पर मक्खियाँ बैठतीं तो उन्हें उड़ाता। हर दूसरे-तीसरे नहलाता। पोंछता। गोबर साफ करता। गोठ में गोबर न रह जाय। इसका ध्यान रखता। एक भी चोता गोबर दिखा कि उठाकर फेंका। गोठ मंदिर के समान साफ रहती।

गृहस्व:मी अपने भोजन का प्रथम ग्रास गोग्रास के रूप में निकालता। स्वयं बार-बार गाय की सेवा करता। कहता गोसेवा संसार का सबसे बड़ा धर्म है। गाय धर्म है। पृथ्वी है। गाय की पूजा से इन्द्र, अग्नि, वरुण, कुवेर आदि सभी देवता एक साथ प्रसन्न होते हैं। यह तैंतीस कोटि देवों की प्रसन्नता का साधन है। इसके खुरों में देवों का निवास है। पूंछ वैतरणीं की सीढ़ी है। सींगें धर्मराज के दण्ड हैं।

हर पर्व के अवसर पर गाय गोठ से निकाल कर नहलायी-धुलायी जाती। विधिवत् पूजा होती। लोग झुक-झुककर पांव छूते। पूंछ छूकर माथे से लगाते।

भोजन, आराम और सेवा ने गाय को बिल्कुल स्थूल कर दिया था। शरीर के मांस लटक आये थे। थुल-थुल शरीर। उसपर भारी थनों से यह राजमहिषी के समान धीरे-धीरे चलती। गृहस्वामी इसे इतना प्यार करता था कि शायद ही कभी इसके शरीर पर कोई डंडा पड़ा हो। मक्खियाँ बैठने में संकोच करती थीं। इसके हुँकरने को लोग गंभीरतापूर्वक लेते। सब इसकी ओर देखने लगते। जैसे गाय कुछ चाहती है जिसकी पूर्ति होनी चाहिए। काली-काली प्यारी आँखें देखते बनती थीं। बछड़े को चाटते समय इसका आनन्द देखने लायक होता था। ऐसे प्रेम से चाटती जैसे देवता अमृत पी रहे हों। राक्षस शराब और मनुष्य दूध पी रहे हों।

गाय पूंछ के झटके से मक्खियाँ उड़ा रही थीं। कभी-कभी कान फटकारती। शरीर हिलाती। उसके रोएँ सिहर उठते। उसके शरीर के कई हिस्सों पर खरोंच थे। मक्खियाँ बार-बार परेशान करतीं। कौवे घावों पर चोंच मारते। बेचारी परेशान। पूंछ मारते-मारते थक जाती तो डायँ-डायँ करने लगती। उस पर भी आवाज नहीं निकलती।

संत गाय की दशा देख दुःखी हुए। कमजोर को मक्खी-मच्छड़ भी परेशान करते हैं। कौवों को तो घाव खोदने में पता नहीं क्यों विशेष खुशी होती है।

संत अभी कुछ सोचें कि नजर आगे गयी। एक स्त्री माथे पर सब्जी की गठरी लिए भागी आ रही थी। गोद में बच्चा था। वह एक हाथ से गठरी सम्हालती। दूसरे हाथ से बच्चे को। बच्चा बार-बार खिसक जाता। वह बार-बार सम्हालती। कभी गठरी और कभी बच्चे को। वस्त्र के नाम पर शरीर में अत्यन्त गन्दी फटी जर्जर लुगरी लटकी थी। वह जगह-जगह से इतना फटी थी कि उसे चिथड़ा कहना चाहिए। शरीर में स्फूर्ति का कोई लक्षण न था। फिर भी वह दौड़ने की कोशिश कर रही थी। सब्जी को जल्द से जल्द सट्टी में फेंकना था। शायद अपनी सब्जी थी या किसी की ढो रही थी? कौन पूछे? उसे कहाँ फुर्सत है कि वह इस तरह की जिज्ञासाओं का उत्तर दे। भाग रही थी। अकेले थोड़े थी। अनेक स्त्री-पुरुष दौड़

रहे थे। भाग रहे थे। सबको जल्दी थी। सट्टी उठ गयी तो आज का दिन खराब हो जायगा। रोज कमाना रोज खाना यही इनकी नियति है। यहाँ संग्रह के नाम पर कुछ नहीं है। यह मजबूरी का अपरिग्रह है। संत और संन्यासी का अपरिग्रह नहीं, गृहस्थ और गरीब का अपरिग्रह। ये जानते भी नहीं कि अपरिग्रह क्या बला है? इनका तो जन्म ही अपरिग्रह और अभाव में हुआ है। न कभी संग्रह जाना। न अपरिग्रह।

संत ने पहचाना। यह औरत बगल के गाँव की है। जानी पहचानी सूरत। बिल्कुल बदली हुई। कुछ दिनों पहले की जवानी को काल के चूहे ने कुतर कर चूस लिया था। शरीर का डील-डौल बिगड़ गया था। आकृति का नीलाभ भयानक अँधेरे में बदल गया था। जैसे इसने सूरज कभी देखा ही न हो। चुसे आम-सी बेडौल। घुनी लकड़ी-सी नीरस।

आँखों के खंजन, मीन, भ्रमर मर चुके थे। नील कमल दल सूख गए थे। चमड़ियों पर सूखते सरोवर की कीचड़-सी चिपकी मैल। महँकती और बिलगाती हुई। जहाँ के सारस, हंस, चक्रवाक कभी जा चुके थे। भौंरों ने गुनगुनाना छोड़ दिया था। कमल की पंखुड़ियाँ तो कब की सूख गयी थीं। अब कमल नाल भी सूखना चाहते थे।

अंग-अंग में गड्ढा बना था। झुर्रियोंवाली चमड़ियाँ लटकी थीं। नीरस, सूखी, बदसूरत चमड़ियाँ। कभी इन चमड़ियों के पीछे कुछ था जिससे ये भरी-भरी उभरी और पूरी लगती थी। इनमें लेनू की चिकनाहट और घृतकुमारी की पिच्छलता थी। विछलन से भरी हुई।

कौन चढ़े इस विछलन पर? पैर फिसल जाते। हाथ सरक जाते। हाँ, आँखे ठहर जातीं। ठहर क्या गड़ जातीं। एक-एक तीर्थ का मजा लेतीं। विछलनों पर क्रीड़ा करना चाहती। खेलते-खेलते स्वयं सो जातीं।

उसकी चाल देखने में नृत्य का आनन्द आता। बोली में पपीहे की पुकार। वंशी की तान और मानव की आवाज होती। मुँह खोलते ही बिजली चमकने

लगती है। बातों से फूलों के पंख छितरा जाते। काली आँखों से काले बादल प्रतिद्वन्द्विता करते।

सब कुछ वही है। वही शरीर। वही हाथ, पैर, नाक, कान, आँख, ओठ, चमड़ियाँ। लेकिन इनमें कुछ था या कोई था जो अब नहीं है। शायद वही चमकता था। वही बिछलन पैदा करता था। आकर्षण फेंकता था। बुलाता था। आँखें और काली हो गयी हैं किन्तु वह कालिमा दूसरे प्रकार की थी। काली काली में भी भेद था।

वह क्या था जो सबके रहते चला गया? चला तो क्या गया सारा आकर्षण लेकर चला गया। एक विकर्षण भर गया। अब कोई भी आँख यहाँ ठहरना नहीं चाहती। अब इन आँखों को आँखें नहीं देखना चाहती हैं। आज कौन बतायेगा कि इस आकर्षण के पीछे क्या था? उस स्त्री को भी नहीं मालूम। उस पुरुष को भी नहीं मालूम। जो देखता था। पकड़ता और पहचानता था।

शायद यह स्त्री भी गाय के समान एक दिन छोड़ दी जायगी। मक्खियाँ उड़ाने के लिए। अपने घावों पर पूंछ फटकारने के लिए। बिना दाना-पानी के पागुर करने के लिए।

सामने से आद्यानन्द गिरि ने रमरमी की। वे भिक्षार्थ निकले थे। संत ने उनकी रमरमी का जवाब दिया। गिरि भी युवक थे। कपड़ा कम से कम पहनते हैं लेकिन चौड़ी छाती। घुंघराले बाल। बलिष्ठ बाहुओं में अनाज का बोझा लिये घूमते। सबेरे से शाम तक माँगते हैं। रोज नहीं जाते। अनाज खतम होने के पहले ही घर से निकल जाते हैं। सारंगी अच्छी बजाते हैं। भरथरी और गोपीचन्द के गीत रसीले सुर में गाते हैं। गाने में वैराग्य और नश्वरता घोल कर लोगों को मुग्ध कर देते हैं। पेवंद पर पेबंद जोड़कर कंथा बनाया है। लोगों को इतना प्रभावित कर लेते हैं कि कोई भी भिक्षा देने से इनकार नहीं करता है। शरीर थक रहा है। पोपले मुख में गीतों के स्वर बिगड़ जाते हैं। चलना नहीं चाहते। किन्तु चलना पड़ता है। भीख माँगना ही जीविका का साधन है। भारत में भीख माँगना जाति-कर्म है। सबको भीख माँगने का हक नहीं है।

गिरि की आँखों में जिज्ञासा थी। वे सन्त से कुछ पूछना चाहते थे। किन्तु पूछ न सके। आगे चले गये।

सन्त की इच्छा हुई। रोककर दो बातें करूँ। दुख और नश्वरता केवल गीतों में नहीं जीवन में भी है। सभी दुख और नाश की अनुभूति करते हैं। इसलिये गिरि के गान उन्हें अच्छे लगते हैं। यथार्थ का खोखलापन ही इन गीतों का सत्य है। ये गीत यथार्थ से ऊपर एक भिन्न यथार्थ का अनुभूति कराना चाहते हैं। एक ऐसे सत्य से परिचय कराना चाहते हैं जो भीतर है। शून्य में है। किन्तु स्थूल में दीख नहीं रहा है। आसमान की तरह सबमें है। सब जगह है। किन्तु उसे देखने की शक्ति चाहिये। यह शक्ति साधना से मिलती है। हमारा जीवन अजीब बिडम्बनाओं से भरा है। हम स्वयं तो लोभ, मोह, तिसना और पाखंड में डूबे हैं। किन्तु गीत मोह, क्रोध, लोभ भंग का सुनना चाहते हैं। बड़े-बड़े रागी विराग का गाना सुनकर प्रसन्न होते हैं। निर्गुन निराकार के भजनों में डूब्र जाते हैं। बार-बार सुनने से भी उनकी इच्छा की तृप्ति नहीं होती है।

तो क्या ऐसा कर वे अपने को धोखा देते हैं ? अपने लोभ को छिपाने की कोशिश करते हैं ? क्या यह एक ढंग का छल है ? धोखा और प्रवचना है ?

किन्तु इसका एक दूसरा पच्छ भी है और वही सच है। दिखावटी और धोखा कभी न कभी पकड़ में आ जाता है। आदमी चाहे कितनी ही बेईमानी करे। वह उससे ऊबता है। उसके खोखलेपन से दुखी होता है। इसलिये वह यथार्थ का गीत न सुन कर आदर्श का गीत सुनना चाहता है। यथार्थ तो वह खुद ही है। इससे तो ऊबा है। आदर्श खोजता है।

हर आदमी के भीतर आदर्श या सच का एक दबा किन्तु खाली घर होता है। बाहर के आदर्श गीत इस घर को उभारते हैं। भरते हैं। ये गीत हमारे भीतर सोए देवता को जगाते हैं। उन्हें खाली घर के सिंहासन पर बैठाकर आनंदित होते हैं। देवता मोह, लोभ, क्रोध का गीत नहीं सुनना चाहते हैं। वह

विरागी है। रागी होता तो सोता ही काहे ? और रागी हुआ तो समझो वह देवता नहीं है। आखिर देवता और राकस में यही तो फरक है। राकस कामी क्रोधी होता है।

राकस होना सराप है। हर आदमी तब तक राकस है जब तक वह विषयों से घिरा है। इन्द्रियों का चाकर है। इन्द्रियों को बस में करते ही आदमी साँई के पास पहुँच जाता है। बस खोजने की जरूरत है। सबका साहब सबके पास है। किन्तु वह दूर दीखता है। अनजाना, अचीन्हा और बेगाना लगता है। इसलिये कि हम प्रवृत्तियों के बस में रहते हैं। साहब अत्यन्त सुच्छ आसन पर बैठता है। उसे गन्दगी जरा भी पसन्द नहीं। निर्गुन-निराकार के भजन मन को साफ करते हैं। साहब के आसन को सुअच्छ बनाते हैं। फिर तो ऐसी स्थिति आ जाती है कि चींटी के पग नूपुर बाजै सो भी साहब सुनता है। और किसी पुकार की जरूरत नहीं रहती।

सगुन-साकार के गीत बाहर-बाहर निकल जाते हैं। वे अच्छा लगते हैं। लुभाते हैं। किन्तु जगा नहीं पाते। नींद और गहरी हो जाती है। आदमी को जरूरत ऐसे गीतों और भजनों की है जो उसे जगा दे। उठा दे। खड़ा कर दे। वहाँ पहुँचा दे जहाँ सन्नाटा है। एकान्त है। जहाँ होकर भी कुछ न हो। सब अनजाना हो। जहाँ केवल साँईं है। है भी। नहीं भी है। घट के भीतर रहकर भी दीखता नहीं है। जहाँ मन भी नहीं पहुँचता है। अनाहद बोलता है। पंगुरा चलता है। सूरा देखता है। सुषमन की तंती बजती है। गगन में सबद गाजता है। बिना तन्त के सबद होता है।

यह सब गुरु परसाद से, सबद की चोट लगने से होता है। यह सबद जगाता है। हर आदमी यह सबद सुनना चाहता है। इससे जगने की अनुभूति होती है। मन के बन्ध टूटने लगते हैं। मन निरमल हो जाता है। जैसा बरसा के बाद आसमान। न घटा। न अँधेरा। चमकता सूरज सबको चमकाता है।

सन्त कुछ पूछ न सके। गिरि चले गये। सन्त का मन उदास हो गया। आदमी की दशा भी गाय जैसी है। काल बुढ़ापे की लाठी से सबको हाँक रहा

हैं । मिहनत करने वाले और माँगने वाले दोनों की एक ही दशा है । पूरा खलक काल का चबेना है । काल सबको खा रहा है । कुछ धरती पर हैं । कुछ उसकी गोद में हैं । यह अमराई कभी हरी-भरी थी । कोकिल कूजते । बौरें मँहकतीं । शीतल, मन्द हवा गन्ध को दूर-दूर तक फैलाती । लोग अमराई में दोपहर बिताते । भयानक लू से त्राण पाते । बहती नदी से भींगी हवा अमराई में आकर और शीतल बन जाती । सुखी हवा दूसरों को भी सुख देती ।

नदी सूख गयी । पहले पानी का बहाव रुका । फिर नदी रुकी । अब केवल रेत है । अब यहाँ शुक या पिकी नहीं आते । कितनी बदल गयी नदी ? पानी की जगह तपती रेत । जलते खेत । सूख गयी आम की डाल । हरियाली का नाम नहीं । हरियाली मित्र विदा हो गये । कोंपले लुट गयीं । पत्तों ने कितने रंग बदले । लाल, हरे, फिर पीले । फिर सूखे बदरंग । शाम से मटमैले । अब यात्री भी क्यों आयें ? छुच्छा को के पुच्छा ? मेढकों ने टर्राना बन्द कर दिया । मेढक भी सरसता पसन्द करते हैं । यही नदी है, जहाँ नवांगनाएँ किलोल करतीं । चहकतीं । स्नान करतीं । एक दूसरे के मुँह पर पानी उछालतीं । आँखें लाल हो जातीं । प्रेम से । मादकता से । पानी की छीटों से । भींगे कपड़े देह में और सट जाते । जैसे बिछुड़ते समय कोई और चिपक जाता है । रूपलोभी लोग किनारे पर सिमट आते । देखने लगते । पानी भरे अंगों का उभार । कैसे लोग हैं ? युवतियों को कपड़ा बदलते देख प्रसन्न होते हैं । यह देखने के लिये ही घाटों पर चक्कर लगाते है । वही नदी । वही तट । वही घाट हैं । किन्तु सब सूख गया । आज कौन मानेगा ? यह सूखी नदी कभी अपरूप थी । यौवन युक्त थी । तैल फैल थी । लहराती थी । इठलाती थी । मजबूत बाँधों को भी ढहा देती थी । लोग इसके उफान को देखना चाहते थे । वेग से भय खाते थे । आवर्त से घबराते थे । बचना मुश्किल है । राम कृपा से शायद एकाध बच जायँ ।

आज सब बदल गया । बूढ़ी राच्छसी के फटे मुँह से सूखे किनारे । भयानक हो गये हैं । लोगों ने रास्ता बदल दिया है । कहते हैं आम की बगिया के देवता चले गये । देवता गये । हंस गये । उनके जाने से यह सब हुआ । सूखी नदी को

देख डर लगता है। चरवाहे यात्री दिन को भी इधर आने में डरते हैं। कहते नदी के किनारे भूतों का डेरा है। सामने वाली इमली के पेड़ पर एक जिन रहता है। अचानक सन्त एक गड्ढे में गिरते-गिरते रुक गये। विचारों में उन्हें ख्याल ही नहीं रहा कि वे कहाँ आ गये हैं ? यह उसी युवतो के घर के आगे की तलैंया थी। यह तलैया भी अब सूख गयी थी।

सन्त ने लौटना चाहा। किन्तु मन ने कहा—नहीं। युवती और उसके बच्चों को देखता चलूं। पता नहीं उनकी क्या स्थिति हो ?

सन्त उसके टूटे घर में घुस गये ' फूस मिट्टी का घर। घर क्या खंडहर था। युवती सो रही थी। बच्चा माँ की बगल में सो रहा था। बच्ची माँ का स्तन चूसती आँखें मूँदे उसकी छाती पर पड़ी थी। अर्धनग्न युवती बिल्कुल सूख गयी थो। सूखे बाल। मैले कपड़ों में कई पेबन्द। पेबन्द के बावजूद कई जगह छेद थे।

युवती थकी थी। उसका मुँह खुला था। वह मुँह से साँस ले रही थी।

सन्त को आया देख एक बिल्ली कूद कर भागी। उसके कूदने से खाली वर्तनों की आवाज ने युवती को जगा दिया।

सामने सन्त को पाकर उसका चेहरा खिल गया। उसे हार्दिक प्रसन्नता हुई। उसने बच्ची को धीरे से जमीन पर लिटा दिया। उठाकर कपड़े सँभालने लगी। कपड़ा सँभाल कर उसने जैसे अपने को सँभाला। उसने सन्त के पैर छुए। आओ, आओ देवता। मुझे पूरा विश्वास था। तुम अवश्य आओगे। लोग झूठ कहते हैं। कबीर नारी निंदक है। तिरिया को गाली देता है। नारी को नरक कहता है।

सन्त असमंजस में थे। क्यों आए यहाँ ? लौट सके नहीं। अब क्या करें ? वे दुविधा में खड़े रहे। उन्हें कुछ सूझ नहीं रहा था। मन ने कहा 'साधो, माया तुम्हें फाँस रही है। इस ठगिनी से बचो। साधक को स्त्री से दूर रहना चाहिये। स्त्री के साथ साधना नहीं हो सकती।

स्त्री ने उनके दोनों हाथ पकड़ लिये। उसमें शंका, भय या लज्जा कुछ भी नहीं थी। वाणी में कोमल आग्रह, किन्तु हाथों में दृढ़ता थी। उसकी आँखें सन्त आँखों में थी। मुँह खुल गये—

दुलहिन गावहु मंगलचार
घर आये मेरे राजा राम भतार।

सन्त ने धीरे से कहा लुगाई, यह क्या बोलती है ? न तुम दुलहिन हो। न मैं राजा राम हूँ। राम इतनो आसानी से नहीं मिलते। गाना बन्द करो। मैं स्त्री का गाना नहीं सुनता। हाँ, तुमने यह क्या दशा बना रखी है ? क्या हो गया है तुम्हें ?

लुगाई मौन रही। किन्तु आँखों से टपकते आँसुओं ने सब कह दिया।

सन्त ने एक निगाह सोये बच्चों पर डाली। लुगाई बैठी रही। उसने अपना मुँह झुका लिया था। शायद अधिक रोना चाहती थी। कितु अपने को रोके थी।

सन्त झटके से उठ खड़े हुए। चलता हूँ। फिर आऊँगा। यह कहकर आगे बढ़े।

उनकी पीठ आवाजों की घद्द···घद्द···· की अनुभूति कर रही थी। ठीक कहती हूँ। तुम भतार भी हो। राम भी हो। मैं ईश्वर को नहीं जानती। गुरु गोविन्द से भी बड़ा है। पति गुरु भी है। भगवान भी है। राम से भी बड़ा है। मालिक है।

सन्त का मन पीड़ा से बेचैन हो गया। इनका भरण-पोषण कैसे हो ? मेरा बराबर यहाँ आना ठीक नहीं। माया में पड़ जाऊँगा। लोक क्या सोचेगा ?

वे कुछ दूर गये होंगे कि पीछे की आवाज ने रोका। मुड़े तो देखा एक योगिनी पीछे-पीछे चली आ रही है ? काली। काया की विशाल। धान के डंठल

से फैले उजले काले बाल। भस्म के स्थान पर सिंदूर पुता भाल। हाथ में मोटा त्रिशूल। पाँव में काला खड़ाऊँ। लाल अंगरखे में झूलते बड़े-बड़े स्तनों से स्पष्ट था कि यह नारी शरीर है। कोई शाक्त-साधिका है।

नारी मूर्ति ने अट्टहास किया। पलाश फूल सी आँखों में करुणा, व्यंग्य और दंभ तीनों का समन्वय था। इस समन्वय से कुछ भी स्पष्ट न था। वह चाहती क्या हैं ?

वह सन्त से सटकर खड़ी हो गयी। उसके मुँह और वस्त्रों से गन्ध आ रही थी। शराब की गन्ध। एक और गन्ध। नारी गन्ध ? नहीं। तेज, लोबान, धूप, जले माँस आदि की संयुक्त गन्ध। चीकट वस्त्रों की गन्ध। सन्त को उसका रोकना और पास सटना अच्छा नहीं लगा। वह थी कि सटी जा रही थी। इतना नजदीक कि उसकी साँसें स्पष्ट सुनाई पड़ रही थीं। उसकी गन्ध से सन्त बेचैन हो गये।

सन्त ने झुंझला कर कहा—

तुम घर जाहु हमारी बहिना
बिस लागै तुम्हारो नैना

योगिनी ने फिर जोर का अट्टहास किया। सत्य को झुठलाओ नहीं प्रभु। स्त्री ऐसी अपदार्थ नहीं कि तुम उसकी उपेक्षा कर दो। ईश्वर से मुक्त होना आसान है। किन्तु स्त्री से मुक्ति नहीं है। पुरुष पूर्ण है। स्त्री अपूर्ण है। पूर्ण में पूर्ण नहीं मिल सकता। किन्तु अपूर्ण में पूर्ण का प्रवेश तो सहज है। पूर्ण नहीं तो अंश ही सही।

तुम तो पुरुष हो। मुक्त। पुरुष सब कुछ करके भी स्वतन्त्र है। फँसती हैं लोई लुगाई। लेकिन मैं न खुद फँसूगी। न तुम्हें फँसाऊँगी। मैं यह चाहती नहीं। एक बार के ही दुख से कभी उबर नहीं पाऊँगी।

मैंने तुम्हें कई बार देखा है। तुम्हारी दृढ़ता भी जानती हूँ। यह भी सच है कि तुम्हारे मन में स्त्रियों के प्रति मोह नहीं है। मोह का मूल स्त्री है।

निर्गुण-निराकार मोह स्त्री मूर्ति में साकार हुआ है। किन्तु संत इसमें स्त्री का क्या दोष है ? मुझे ही देखो···।

योगिनी आगे बोलने में रुक गयी। कोई बात उसे मथ रही थी। वह कहना भी चाहती थी। संकोच भी कर रही थी।

सन्त सिर झुकाये उसकी बातें सुन रहे थे। अचानक रुकावट ने उनकी एकाग्रता भंग की। उन्होंने योगिनी की ओर देखा।

योगिनी का मुख अधिक श्याम हो गया था। आँखें सिंदूर की डिबिया-सी लाल। गहरी लाली। थोड़ा और बढ़े तो काली हो जाय।

संत को लगा जैसे लाल बादल बरसना चाहते हैं। वे कुछ बोलें उसके पहले ही योगिनी ने कहा—'संत, एक ही अनुरोध है। जिन्हें अपनाया है उन्हें छोड़ना मत। लोई की दुर्दशा के कई कारण हैं। इस समय उसे केवल तुम्हारी जरूरत है। पुरुष की नहीं। एक सन्त पुरुष की। पुरुष तो बहुत मिलते हैं। किन्तु सभी लुच्चे। छिछोरे। दगाबाज।

अच्छा मैं चली। फिर कभी।

योगिनी रुकी नहीं। तेजी से लौटकर अरहर के खेतों में विलीन हो गयी। सन्त मौन खड़े रहे।

कौन है यह योगिनी ? मुझे क्या कहना चाहती है ? क्या जिस स्त्री से मैं मिलता हूँ उसका नाम लोई है ?

उनका मन योगिनी से बात करने लिए व्याकुल हो उठा। किन्तु वह जा चुकी थी। बताया भी नहीं कि कहाँ जा रही है ? स्त्रियाँ आमतौर से पकड़ती हैं। अभी कुछ ही देर पहले एक स्त्री ने सन्त को पकड़ लिया था। कितु यह तो कोई दूसरी औरत है। छोड़ती है। भागती है। उलटे सन्त ही उससे बात करना चाहते हैं। इसी चिन्ता में सन्त घर पहुँचे। चिन्तित मन उदास हो गया। उदास मन विचारों से भर गया। विचार साधना में बाधक हैं। साधना विचारों

से फैले उजले काले बाल। भस्म के स्थान पर सिंदूर पुता भाल। हाथ में मोटा त्रिशूल। पाँव में काला खड़ाऊँ। लाल अंगरखे में झूलते बड़े-बड़े स्तनों से स्पष्ट था कि यह नारी शरीर है। कोई शाक्त-साधिका है।

नारी मूर्ति ने अट्टहास किया। पलाश फूल सी आँखों में करुणा, व्यंग्य और दंभ तीनों का समन्वय था। इस समन्वय से कुछ भी स्पष्ट न था। वह चाहती क्या हैं ?

वह सन्त से सटकर खड़ी हो गयी। उसके मुँह और वस्त्रों से गन्ध आ रही थी। शराब की गन्ध। एक और गन्ध। नारी गन्ध ? नहीं। तेज, लोबान, धूप, जले माँस आदि की संयुक्त गन्ध। चीकट वस्त्रों की गन्ध। सन्त को उसका रोकना और पास सटना अच्छा नहीं लगा। वह थी कि सटी जा रही थी। इतना नजदीक कि उसकी साँसें स्पष्ट सुनाई पड़ रही थीं। उसकी गन्ध से सन्त बेचैन हो गये।

सन्त ने झुंझला कर कहा—

तुम घर जाहु हमारी बहिना
बिस लागै तुम्हारो नैना

योगिनी ने फिर जोर का अट्टहास किया। सत्य को झुठलाओ नहीं प्रभु। स्त्री ऐसी अपदार्थ नहीं कि तुम उसकी उपेक्षा कर दो। ईश्वर से मुक्त होना आसान है। किन्तु स्त्री से मुक्ति नहीं है। पुरुष पूर्ण है। स्त्री अपूर्ण है। पूर्ण में पूर्ण नहीं मिल सकता। किन्तु अपूर्ण में पूर्ण का प्रवेश तो सहज है। पूर्ण नहीं तो अंश ही सही।

तुम तो पुरुष हो। मुक्त। पुरुष सब कुछ करके भी स्वतन्त्र है। फँसती है लोई लुगाई। लेकिन मैं न खुद फँसूगी। न तुम्हें फँसाऊँगी। मैं यह चाहती नहीं। एक बार के ही दुख से कभी उबर नहीं पाऊँगी।

मैंने तुम्हें कई बार देखा है। तुम्हारी दृढ़ता भी जानती हूँ। यह भी सच है कि तुम्हारे मन में स्त्रियों के प्रति मोह नहीं है। मोह का मूल स्त्री है।

निर्गुण-निराकार मोह स्त्री मूर्ति में साकार हुआ है। किन्तु संत इसमें स्त्री का क्या दोष है ? मुझे ही देखो…।

योगिनी आगे बोलने में रुक गयी। कोई बात उसे मथ रही थी। वह कहना भी चाहती थी। संकोच भी कर रही थी।

सन्त सिर झुकाये उसकी बातें सुन रहे थे। अचानक रुकावट ने उनकी एकाग्रता भंग की। उन्होंने योगिनी की ओर देखा।

योगिनी का मुख अधिक श्याम हो गया था। आँखें सिंदूर की डिबिया-सी लाल। गहरी लाली। थोड़ा और बढ़े तो काली हो जाय।

संत को लगा जैसे लाल बादल बरसना चाहते हैं। वे कुछ बोलें उसके पहले ही योगिनी ने कहा—'संत, एक ही अनुरोध है। जिन्हें अपनाया है उन्हें छोड़ना मत। लोई की दुर्दशा के कई कारण हैं। इस समय उसे केवल तुम्हारी जरूरत है। पुरुष की नहीं। एक सन्त पुरुष की। पुरुष तो बहुत मिलते हैं। किन्तु सभी लुच्चे। छिछोरे। दगाबाज।

अच्छा मैं चली। फिर कभी।

योगिनी रुकी नहीं। तेजी से लौटकर अरहर के खेतों में विलीन हो गयी। सन्त मौन खड़े रहे।

कौन है यह योगिनी ? मुझे क्या कहना चाहती है ? क्या जिस स्त्री से मैं मिलता हूँ उसका नाम लोई है ?

उनका मन योगिनी से बात करने लिए व्याकुल हो उठा। किन्तु वह जा चुकी थी। बताया भी नहीं कि कहाँ जा रही है ? स्त्रियाँ आमतौर से पकड़ती हैं। अभी कुछ ही देर पहले एक स्त्री ने सन्त को पकड़ लिया था। किंतु यह तो कोई दूसरी औरत है। छोड़ती है। भागती है। उलटे सन्त ही उससे बात करना चाहते हैं। इसी चिन्ता में सन्त घर पहुँचे। चिन्तित मन उदास हो गया। उदास मन विचारों से भर गया। विचार साधना में बाधक हैं। साधना विचारों

के ऊपर है। द्वैत और विचारों की कीचड़ नीचे बैठ जाती है। तभी साधना जल निर्मल होती है। विचारों के आलोड़न में साधना स्थिर नहीं हो पाती है। अद्वैत का अर्थ सभी विचारों के द्वैत का निरसन है। विचारों, भावनाओं, अनुभूतियों आदि से उपरत होना ही अद्वैत है।

घर पर सन्तों की जमात जुट रही थी। किन्तु सन्त गुमसुम बैठे रहे। सत्संग प्रारम्भ हो गया। उन्हें अनुपस्थित देख लोगों ने समझा सन्त की तबीयत ठीक नहीं है। वे कुछ श्रमित मालूम हो रहे थे। उनके माथे पर पसीने की बूंदें थीं। पता नहीं यह मौसम का प्रभाव था या और कोई बात थी?

दो-तीन साधुओं ने पास आकर निवेदन किया। सत्संग प्रारम्भ है। आपका इन्तजार है। आज बाहर के भी कुछ सत्संगी आए हैं।

सन्त अनमने उठे। रामधुन में शामिल हो गये। कुछ ही व्यक्तियों ने सन्त की उदासीनता को लक्ष्य किया।

आज लोई भी अपने बच्चों को लेकर एक कोने में बैठी थी। उसने भी रामधुन में भाग लिया।

यह पहला अवसर था जब कोई स्त्री सत्संग में आई हो। आश्चर्य सबको था। किन्तु कोई कुछ बोला नहीं। किसी ने कुछ पूछा नहीं। किन्तु सबकी आँखों में एक ही भाषा थी। क्या यह वही लुगाई या लोई है जिसके बारे में चर्चा है?

सत्संग के बाद लोग भण्डारे की ओर बढ़े। लोई भी पीछे थी। अपने दोनों बच्चों को पाँत में बैठाकर स्वयं परोसने की सेवा में जुट गयी। सन्त से कुछ बोली नहीं। सन्त ने भी कुछ नहीं कहा। उन्हें साफ लग रहा था कि यह औरत उनको छोड़नेवाली नहीं है। अब तो साधुओं के बीच भी आने-जाने लगी। लोग पता नहीं क्या सोचेंगे? क्या कहेंगे? हमारे विरोधियों को प्रचार का मौका मिल जायगा। सामान्य भगत भी यही समझेंगे कि मैंने इस स्त्री से विवाह कर लिया है। साधु मण्डली में नारी का यह प्रवेश अच्छा नहीं लग

रहा था। किन्तु वे उसे रोक भी नहीं पा रहे थे। कभी-कभी हमसे ऐसे काम हो जाते हैं जिन्हें हम करना नहीं चाहते हैं। जिन्हें हम रोकना चाहकर भी रोक नहीं पाते हैं।

साधुओं का दल चला गया। लोई भी चली गयी। सन्त अकेले समाधि प्राप्त करने की कोशिश करने लगे। हठयोग में उन्हें विश्वास न था। सहज समाधि की साधना थी। उन्होंने आँखें बन्द कीं। प्राणायाम प्रारम्भ किया। प्राण वायु द्वारा शरीर स्थित वायु-नाड़ियों और षट्चक्रों को उत्तेजित करने लगे। चक्रों की उत्तेजना ही नयी शक्ति का स्रोत है। तीन लाख पचास हजार नाड़ियों को कौन कहे? इस समय तो दस प्रमुख नाड़ियों में उत्तेजना का प्रसंग है। दस भी नहीं तो इंगला, पिंगला और सुखमना ही जागें। इनके साथ उन्होंने कुंडलिनी को उर्ध्वमुख करना चाहा।

किन्तु मन की एकाग्रता के अभाव में कुछ बन नहीं रहा था। आँखों में भयानक कालचक्र घूम रहा था। योगिनी मूर्ति बार-बार उपस्थित होती। साक्षात् भैरवी त्रिशूल लिए खड़ी थी। कुछ संकेत करना चाहती है। कहना चाहती है। कह नहीं पाती है। लोई भैरवी है। भैरवी लोई है। आँखों में दो-दो स्त्रियाँ हैं। एक भयानक विपत्ति में फँसी। एक तूफान बनी। तूफानों से घिरी। दोनों काममुक्त। वासना रहित। केवल आश्रय चाहती हैं। छाया चाहती हैं।

सन्त के मन में भय नहीं विस्मय है। वे किधर जा रहे हैं? साधना में यह कैसा भटकाव है? सद्गुरु ठीक कहते हैं—साधना के आरम्भ में अनेक विघ्न हैं। अनेक भटकाव हैं। साधक की यही परीक्षा की घड़ी है। माया अनेक रूप-रंगों में अपना जाल फेंकती है। जो फँस जाय। संसार एक दरिया है। अगम, अथाह दरिया। नाव पुरानी है। कैसे पार लगेगा? केवल रामनाम का भरोसा है। रामहिराम मिलावै। कहते हैं इन्द्र सन्तों की तपस्या से डरता है। देवताओं का राजा होकर भी डरा रहता है। कौन है यह इन्द्र? इन्द्रिय विकार-वाला। इन्द्रिय विकारियों का मुखिया। राजा और उस्ताद।

सन्त अपने करघे पर आकर बैठ गये। ढक···ढक···ढक। ढकर-ढकर··· ढक। करघा अचानक रुक गया। सूत से सूत उलझ गये। सुलझाने के सारे प्रयत्न बेकार हो रहे हैं। फिर उठते हैं। घूमना चाहते हैं।

योगिनी फिर उपस्थित हो गयी। वही रूप। वही मुद्रा। आँखें और लाल। आते ही उसने अपने भारी त्रिशूल को जोर से पटका। जैसे पाताल खोदना चाहती है। पथरीली जमीन पर उसका बहुत असर नहीं हुआ। उसने सामने के पेड़ पर मारा। पेड़ हिल गया। पक्षी चिल्लाने लगे। थोड़ी देर में पेड़ पक्षियों से खाली हो गया। सैकड़ों पक्षी आकाश में उड़ने लगे। उनकी आवाज से सारा आकाश भर गया। अम्बर कुंजा कुरलियां। योगिनी क्रोध में थी। उसने झोली से एक मुट्ठी राख निकालकर हवा में बिखेर दिया। तेज हवा में राख उड़ती चली गयी। उसके मुँह से निकला स्वाहा। सबका नाश हो। नाश, नाश, नाश। सर्वस्व स्वाहा। बिना नाश के शान्ति नहीं है।

पास बैठे कुत्ते डर के मारे भाग गये। दूर जाकर भूंकने लगे। वातावरण में कुत्तों के भूंकने की आवाज गूँजती रही। स्पष्ट था कि कुत्ते भयाक्रांत हैं। कुत्ते बार-बार योगिनी की ओर मुँहकर भूँक रहे थे। जैसे योगिनी को ललकार रहे हैं। योगिनी डरी नहीं। जिधर कुत्ते भूँक रहे थे उधर ही झपटी जा रही थी। और कुत्ते थे कि भागते। खड़े होते। भूँकते। झाँवँ···झाँवँ···झाँवँ। झँवर···झँवर···झाँव। शोर सुनकर और लोग भी जुट आये। तमाशा बन गया था। योगिनी दौड़ाती। कुत्ते दौड़ते। भागते। दौड़ते। दौड़ते। भागते। झाँवँ-झाँवँ करते। सन्त को लगा जैसे योगिनी भी भूँक रही है। भू···भू···भू···। भमक···भमक···झाँवँ। किन्तु उसकी आवाज स्पष्ट नहीं है। वह मात्र बुदबुदाती है। योगिनी इतनी दूर थी कि इसके बारे में निश्चय के साथ नहीं कहा जा सकता है।

सन्त को योगिनी का व्यवहार कुछ अटपटा लगा। कुत्तों का भूँकना कोई नया नहीं है। हर देश-काल में कुत्ते होते हैं। वे हर देश-काल में भूँकते हैं। डरते हैं। कोई इस पर ध्यान भी नहीं देता। दिया भी तो दो-एक डंडा लगा

कर शान्त हो जाता है। योगिनी की तरह न दौड़ता है। न भूंकता है। यह लक्षण तो अच्छा नहीं है।

योगिनी गाँव के सीवान के पास पहुँच कर ओझल हो गयी। कुत्तों का शोर बन्द हो गया था।

सन्त ने कदम बढ़ाया। अब वे गाँव के सीवान के पीपळ पेड़ के पास थे। सामने एक नदी बह रही थी। योगिनी यहीं बैठी थी। हाँफ रही थी। पसीने से लथपथ।

यहाँ एक विशाल भवन का खंडहर है। आधा भवन नदी में डूब गया है। आधा बाहर है। कहते हैं यह यहाँ के राजा का राजमहल है। कभी राजा ने रानी के कहने पर नदी की धारा पर यह महल बनवाया था। राजा रानी को जान से भी अधिक मानता था। हर समय गोद में लिये रहना चाहता था। रानी की हर इच्छा पूरी करता। रानी का क्या थी जैसे राजा की मालकिन हो। राजा उसका मुँह जोहता। सेवा में खड़ा रहता।

रानी को लहरों का बड़ा शौक था। वह सदा नदी की लहरों से खेला करती। तैरती मछलियों से मनोरंजन करती।

अपनी आँखों को मछलियों की आँखों से सुन्दर सुनकर प्रसन्न होती। मौसम के अनुसार वन की पत्तियों को देख अपने कपड़े बदलती। लहरों में ऐसे तैरती जैसे कोई बड़ी मछली उलट-पुलट रही हो। राजा उसकी इस कीड़ा से प्रसन्न होता। उसे गोद में उठाकर प्यार से चूमने लगता। घंटों उसके रेशमी बालों में उँगलियाँ डाले सहलाते रहता। उसकी हथेलियों को गुलाब और पाँवों को रक्त कमल कहता। आँखों में नील कमल का दरस पाता। ओठों में अमृत का स्वाद बताता।

स्थिति बदली। एक दिन पता नहीं क्या हुआ? किसी ने राजा से न जाने क्या कह दिया? राजा क्रोध में था। उसकी आँखों में डूबते सूरज की लालिमा और धधकती आग की ज्वाला थी। वह बेचैन तड़प रहा था। जैसे किसी ने घोड़े

को चाबुक मार दिया हो। हाथी पर अकुंश का प्रहार हुआ हो। शेर की पीठ को खुजला दिया हो। राजा छटपटा-छटपटा कर चक्कर काट रहा था। उसके चेहरे पर भारी तनाव था। सारा शरीर अकड़ता जा रहा था। दाँत ऐसे पीस रहा था जैसे बादलों की गड़गड़ाहट हो। जो सामने मिलता उसी पर बरस जाता। नौकर-चाकर डर से दुबक गये। कोई सामने आने की हिम्मत नहीं कर रहा था।

लोग ताज्जुब में थे। आखिर राजा को इतना गुस्सा क्यों और कैसे आ रहा है? राजा का गुस्सा तो लोगों ने देखा था। राजा का गुस्सा कोई नया नहीं था। अनेक बेकसूर भी राजा के गुस्से से फाँसी पर लटक गये थे। गुस्से में राजा किसी का नहीं सुनता था। लोग मौन साध लेते। दुबक जाते। गुस्से में केवल राजा का गुस्सा सुनो। गुस्सा देखो। राजा तो राजा है। उसका प्रेम भी राजा है। गुस्सा भी राजा है। प्रेम में देर हो सकती है। किन्तु गुस्सा तो साँप की लहर जैसा चढ़ता है। सूखे वनों में लगी आग सा बढ़ता है। पहाड़ी नदी सा उफनता है। किन्तु उसमें किसी प्रकार की बेचैनी नहीं होती थी। कोई व्यक्तिगत दर्द नहीं दीखता था। आज तो कोई व्यक्तिगत दर्द राजा को परेशान किये है। राजा क्रोध से कभी इतना मलिन नहीं हुआ था, जितना आज। आज तो सचमुच वह पागल दीख रहा था। वह अपने इस प्रिय भवन को ऐसे देख रहा था जैसे वह इसे जला देगा। नदी में डुबो देगा। उखाड़कर आकाश में फेंक देगा। उसने लात मार-मार कर बहुत से सामानों को तोड़-फोड़ दिये। उखाड़कर फेंक दिए।

उसने मन्त्रियों की सभा बुलाई। बिना यह पूछे जाँचे उसने मात्र तीन वाक्य कहे—वह तो भाग गया···रानी को फाँसी। अभी···अभी····और अभी।

सभी दरबारी अवाक् थे। क्या कह रहा है राजा? पागल तो नहीं हो गया है। कल तक यह जिसे कंधे पर लिये घूमता था। गोद में खिलाता था। तलवे सहलाता था। उसके प्रति यह क्रूरता? क्या राजा पर शैतान तो नहीं सवार हो गया है? पागल तो नहीं हो गया है? प्रेत बाधा तो नहीं है? क्योंकि

प्रेत शासकों के घर में घुसने की फिराक में रहते हैं। अच्छा शासक अत्यन्त सतर्कता से प्रेतों से बचता है। मन्त्रियों की बुद्धि काम नहीं कर रही थी। राजकाज बड़ा टेढ़ा काम है। बात न मानो तो बुरा। मानकर जल्दी में कुछ कर दिया और राजा को बाद में अपनी गलती का अहसास हुआ तो क्या होगा? राजा कहेगा मैं तो बेहोश था ही तुम्हारी भी बुद्धि क्यों मारी गयी? गलती मन्त्री करता है। राजा कोई गलती नहीं कर सकता। करे भी तो उसकी जाँच कहाँ होगी? फरियाद कौन सुनेगा? मुख्य जिम्मेदारी तो आदेश को चरितार्थ करने वाले की है।

देर और दुविधा देख राजा गुर्राया। मेरी आज्ञा का तुरन्त पालन हो। एक लव की देर भी ठीक नहीं। मुझे दूसरों को दण्ड न देना पड़े।

रानी को फाँसी हो गयी रानी को फाँसी देकर राजा ने इस भवन को छोड़ दिया। वह कहीं दूर जाकर रहने लगा। उसका मन राजकाज से उचट गया था। उसने सम्पत्ति मंत्रियों में बाँट दी। इस भवन को कोई लेने को तैयार न था। कहते हैं इस घर में कोई औरत रात को रोती घूमती है। रात-रात भर चक्कर लगाती है। किसी को सोने नहीं देती है। जहाँ आँख झपकी कि वह रोने लगती है। रो-रो कर जगा देती है। लोग उठकर बैठ जाते हैं। जिस मंत्री ने राजा के हुक्म का पालन किया था। उसके जवान बेटे को हैजा हो गया। असमय में मर गया। तब से कोई भी रात को इस घर में रहने का साहस नहीं करता है।

राजा की भी मृत्यु हो गयी। निःसंतान राजा कुछ बताये बिना अचानक विदा हो गया। इस भवन का आधा नदी ने लील लिया। आधे में चूहे, छुछुन्दर, गिलहरी, गौरैया, उल्लू, गादुर आदि ने घर बना लिया है। नाना प्रकार की झाड़ियाँ, पेड़, पौधे उग आये हैं। साँपों, सियारों आदि का घर हो गया है।

एक रात को कुछ चोर यहाँ छिपे थे। दो को साँप ने काट लिया। दोनों वहीं ढेर हो गये। तब से चोर भी यहाँ छिपने का नाम नहीं लेते। नहीं तो

ऐसे मकानों में चोरों, डाकुओं का निवास हो जाता है। जो कोई नदी की ओर आता है इस भवन को दूर से ही देखकर नमस्कार करता है। कहते हैं कि दिन में भी भूत घूमते हैं। रानी का भूत अब भी रोता है। पीपल के पेड़ से आगे बढ़े कि रानी का भूत रोने लगता है। उसका रोना जिसके कानों में पड़ जाय अवश्य बीमार पड़ जाता है। चरवाहे अपने ढोरों को उधर जाने से रोकते हैं। एक बार एक दुधारू गाय उधर चली गयी। लौटकर आयी तो बीमार हो गयी। उसके थनों से दूध की जगह खून उतरने लगा। बड़े पूजा-पाठ के बाद गाय ठीक हुई। किन्तु उसका बछड़ा न बच सका। गाय के थन का एक हिस्सा बिलकुल सूख गया। लाख कोशिश हुई किन्तु उससे दूध नहीं उतरा। अन्त में गायवाले को गाय बेचनी पड़ी। मौलवी शम्सुद्दीन साहेब हिन्दुओं के भूत का बहुत मजाक उड़ाते थे। वे केवल मुसलमानों के भूत से डरते थे। वे कहते थे हिन्दुओं का भूत हिन्दुओं की तरह ही कायर होता है।

लोगों ने ललकार दिया। मौलवी साहब उस मकान में घुस गये। किन्तु निकले तो पसीने से तर। हालत बेहाल। बेचारे कई दिनों तक खाट पकड़े रहे। तब से मौलवी साहब ने हिन्दुओं के भूत की निन्दा करना छोड़ दिया। हिन्दुओं के भूत का नाम सुनते ही लज्जा से गड़ जाते हैं। कहते हैं—खुदा का शुक्र गुजार हूँ। वरना जान तो चली ही गयी थी। दोजख की सैर कर लौटा हूँ। ओफ, कितनी भयानक सूरत थी। लगा कोई कह रहा है म्याँ, बड़ा मजाक उड़ाते थे। अब देखो हमारी करामात। जैसे कोई काला हाथी मुझे दबोचे चला जा रहा है। मेरी गर्दन दबा रहा है। मैं जैसे-जैसे भागना चाहता हूँ उसका खूनी पंजा कसता चला जा रहा है। किसी तरह छूटा। उसने मुझे क्यों छोड़ दिया, पता नहीं। शायद इसीलिए कि मैं लोगों को उसकी करतूतें बता सकूं। उफ, अभी भी याद आती है तो रोयें खड़े हो जाते हैं। मान गया भाई। भूत भूत है। चाहे किसी कौम या जाति का हो। सभी भूतों की एक ही जाति होती है। भूत कोई भेद नहीं करते। चाहे जो हो सबको मारते हैं।

योगिनी सन्त को नहीं देख रही थी। वे बिलकुल उसके पास चले गये। नजदीक जाने पर उसके पैरों की आहट से उसकी तंद्रा टूटी। योगिनी जगी।

लगता था बहुत थक गयी है। सन्त को पास आया देखकर सजग होकर बोली—आओ प्रभु। आओ। तुमसे बातें करने ही तो आई थी। किन्तु कुत्तों से बच पाऊँ तब न। उसने एक गहरी निःश्वास ली।

कमबख्त कुत्तों ने घेर लिया। यही तो होता है। जहाँ जाती हूँ कुत्ते घेर लेते हैं। जीवन भर कुत्तों से ही तो घिरी रही। उनका झाँवँ झाँवँ सुनती रही। उन्होंने चाट-चाट कर मुझे बर्बाद कर दिया।

योगिनी के चेहरे पर विकृति थी। आँखें धँस गयी थीं। जैसे पीपल के खोडर से बिल्ली झाँक रही हो।

सन्त का ध्यान अचानक पीपल के इतिहास की ओर चला गया। यह वही पीपल है जिसके पास कभी सभा जुटती। प्रति सप्ताह बाजार लगता। चहल पहल हो जाती। अब बाजार के न लगने से यहाँ कोई नहीं आता। विशाल पीपल वृक्ष। सीवान में अकेला गर्मी, सर्दी, बरसात सहता है। थक गया है। पूरा तना खोखला हो गया है। किसी दिन खोडर में आग लग सकती है। अक्सर बदमाश चरवाहे लड़के खोड़रों में आग लगाने का काम किया करते हैं। वे मजा लेते हैं और पेड़ की जान चली जाती है। एक दिन आयेगा जब सीवान की यह छाया भी चली जायेगी। सीवान सूना हो जायगा। कौन आयेगा इस सूखे सीवान के पास ? यह पीपल भी तो भुतहा कहा जाता है।

सन्त ने योगिनी के प्रति सहानुभूति के शब्दों में पूछा—तुम परेशान जान पड़ती हो ? थक गयी हो ? पसीने से भीगी हो। क्यों दौड़ती हो इतना ? नारी होकर भी तुममें बड़ा बल है। किन्तु लगता है तुम अपने बल को बेकार कर रही हो।

योगिनी ने अत्यन्त शान्त स्वर में कहा—'परेशान'! कैसी बातें करते हो ? मेरे भीतर तूफान है। मैं उके समेटने में पागल हूँ। किन्तु अब···। सुनो सन्त, मेरी एक कथा है। सुन लो। तुम जिस लोई से मिलते हो यह मेरी छोटी बहन है। हम दो बहने थीं। पिता बचपन में ही मर गये थे। माँ ने हमें पाला-पोसा।

दोनों बहनों के युवा होते-होते माँ भी चली गईं। अब हम दोनों बहनें बच गयीं।

माँ के मरते ही हमारा जीवन नरक हो गया। जगह-जमीन पट्टीदारों ने दबा लिया। लोग हमारी जवानी को ऐसे देखते जैसे सियार खेत के भट्टों को देखता है। बिल्ली मछली को देखती है। सूअर गन्ने को देखता है।

दोनों बहनें हर समय खतरे में रहतीं। शंकित रहतीं। हमारा संसार सूख गया। मेरे दूर के एक चाचा थे। उनकी सहायता से मेरी छोटी कहन का विवाह हो गया। रह गयी मैं अकेली। मैंने विवाह न करने का तय किया। कोई मुझसे विवाह को तैयार भी न था। एक वाममार्गी ने शरण दी। यहाँ हमने अपने को सुरक्षित समझा। किन्तु यह हमारा भ्रम मात्र था। अतीत वाममार्गी थे ही। उन्हें सब कुछ चाहिए। बुराइयों को ही वे सिद्धि मानते थे। साधना मानते थे। मेरा संस्कार इन सबके विपरीत था। मेरी माँ लहसुन-प्याज तक नहीं छूती थी। अतीत के यहाँ माँस, मछली, मदिरा जैसी चीजें नित्य आतीं। पहले मुझे बहुत बुरा लगा। किन्तु करती भी क्या? दूसरी शरण भी तो न थी। स्त्रियाँ परिस्थितियों के अनुसार अपने को ढालने में अत्यन्त सरल होती हैं। उन्हें प्रायः ही दो घरों, दो परिवारों की विभिन्नताओं में जीवन ढालना पड़ता है। नैहर में युवावस्था तक एक स्थिति रहती है। युवा होते ही दूसरे गाँव, दूसरे घर और दूसरों लोगों के बीच जीवन चलाना होता है। पिता परिवार को छोड़कर पति के परिवार की जीवन शैली, रहन-सहन और मानसिकता अपनानी पड़ती है। इसमें स्त्री जरा भी चूकी कि गयी। इसलिये विधाता ने स्त्री मन को उसके शरीर से भी लचीला बनाया है। मैं अब अतीत परिवार में अतीत के अनुसार थी।

एक दिन अतीत ने मुझे बड़े प्यार से बुलाया। मैं बड़ी प्रसन्न थी। यों तो अतीत का स्नेह बराबर मिलता था। स्नेह न होता तो मैं यहाँ आती ही क्यों और कैसे? किन्तु आज उनकी आँखों में विशेष राग था। उन्होंने मुझे

अपने पीछे चलने का संकेत किया। मैं उनके पीछे-पीछे चली। गली-गली और गली। अनेक गलियाँ पार कर गंगा के ठीक किनारे एक गली में पहुँची। यह बन्द गली थी। इसके आगे का रास्ता बन्द था।

अतीत ने एक पुराने मकान के आगे जाकर किवाड़ खटखटाया। भीतर से रस्सी खींची गयी। किवाड़ खुला। हम लोग अन्दर प्रविष्ट हुए। बाहर से अत्यन्त छोटा दीखने वाला यह घर भीतर से बड़ा था। सामने एक तुलसी चौरा था। एक अत्यन्त छोटा कुँआ था। कुएँ पर बाल्टी, रस्सी एवं तामे का लोटा रखा था।

बगल के कमरे में चामुंडा की काली मूर्ति थी। खड़ी मूर्ति अत्यन्त भावपूर्ण थी। चामुंडा की आँखों में करुणा थी। किन्तु सिन्दूर के हल्के लेप से अस्पष्ट हो रही थी। मूर्ति के पैरों के निम्न भाग में एक दीपक जल रहा था। गले में जपा कुसुम की माला लटक रही थी। कुछ पुष्प पैरों पर रखे थे। सामने एक धूपदानी में ठंडी होती आग से धूप के धुएँ की रेखा बन रही थी।

एक स्त्री ने आँगन में आकर मुझे ध्यान से देखा। देखकर बुदबुदायी—पापी चामुंडा को भ्रष्ट कर रहा है। नाश हो। इसकी काया को कोढ़ पूजेगी। शुरू हो गया है। नीच पापी ने साधना के नाम पर····। बुदबुदाती स्त्री चुप हो गयी।

मैं खड़ी थी। अतीत ने मुझे संकेत किया 'आगे चलो। यह पागल है। बकती है। बकने दो। उपासना में बाधा डालना चाहती है। नीच ··।'

मैं समझ नहीं रही थी। क्या बात है ? कैसी कोढ़ ? कैसी नीचता ? कैसी साधना ? साधना में कैसी नीचता ?

पूरा मकान सन्नाटे से भरा था। नीचे केवल एक स्त्री। बाकी पूरा भवन सूना। मेरा मन आशंकाओं से विकृत हो उठा। किन्तु करती भी क्या ?

मैं उसके पीछे-पीछे कमरे में चली गयी। उसने मुझे कुएँ पर स्नान करने का आदेश दिया। स्वयं भी स्नान किया। शरीर में इत्र मालिश की। मुझे भी इत्र लगाया। माथे पर लाल चन्दन लगाया। चामुंडा की पूजा की।

कमरे के बाद एक कमरा और था। वहाँ एक बड़ी चटाई बिछी थी। पास में बोतल और कुछ पुरवे पड़े थे। उसने मुझे चटाई पर बैठने का आदेश देकर दोनों कमरों को बन्द कर लिया।

स्वयं शराब पीने लगा। बीच-बीच में महाप्रसाद (माँस, मछली) खाते जाता। उसने मुझे भी खाने को कहा। किन्तु मैंने इनकार किया। उसने कहा इनकार नहीं करते। यह देवी का प्रसाद है। किन्तु मेरी हिम्मत नहीं हुई। उसके आग्रह पर शराब पीनी पड़ी। आग्रह क्या करीब-करीब जबर्दस्ती थी। मैं डरी भी। पता नहीं क्या हो ? मैंने सुन रखा था कि औघड़ लोग देवी के सामने मनुष्य बलि भी देते हैं। मेरा रोम-रोम काँप रहा था। क्या आज यह जीवन समाप्त हो जायेगा ? मन में प्रसन्नता भी होती। चलो नरक से पिंड छूटेगा। आखिर मेरे जीवन में ऐसा क्या था कि मैं जीवित रहूँ ? हाँ, अपनी छोटी बहन की याद बार-बार आती थी। केवल वही एक थी। उसके दो बच्चे मेरे मोह के आधार। मैं उन्हें देखने को व्याकुल हो उठी। आज सोचती हूँ मोह का बन्धन कितना कठोर होता है। मृत्यु के क्षण भी मेरे मन को महामोह ने घेर लिया था। मैं मोह से भरी थी। यह मोह न होता तो मेरी हृदय गति रुक गयी होती।

कुछ ही क्षणों में अतीत की आँखें लाल हो गयीं। उन्होंने मुझे अपनी ओर खींचते हुए कहा 'साधिके घबराना नहीं। आज तुम्हें भगवती के आसन पर स्थापित करूँगा।'

अब मैं पूर्णतः समझ गयी थी कि भगवती के आसन पर स्थापित होने का क्या अर्थ है ?

मैं प्रतिरोध न कर सकी। करना व्यर्थ होता। अतीत हथियार युक्त थे। उन्होंने मुझे उस सुन्दर चटाई पर लेटने का आदेश दिया। मैं संकोच में खड़ी थी। उन्होंने कहा—

गुरुदेव का आदेश है नाद-विन्दु की साधना करूँ। भगविन्दु स्तम्भन करूँ। उन्होंने मुझे चटाई पर लिटा दिया था।

बोले—घबड़ाओ नहीं। प्रथम बार थोड़ी घबड़ाहट होती है। अब सब ठीक हो जायेगा। तुम मेरी साधिका हो। आराधिका और महामुद्रा हो। बिना मुद्रा के साधना पूरी नहीं होती है। तुम अत्यन्त शुभ लक्षण सम्पन्न तारा हो। इस साधना से भगवती प्रसन्न होंगी। तुम स्वयं को समर्पित करो। भगवती की आराधना में विघ्न मत बनो। इससे सृष्टि स्फुरण का कार्य प्रशस्त होगा।

मैं फिर भी खड़ी रही। कुछ भी समझ नही रही थी। क्या हो रहा है? कैसी साधना? कैसी पूजा और कैसी आराधना? मैं तो किसी पूजा और आराधना के लिये तैयार नहीं हूँ। हाँ, अपने गाँव में बकरे का बलिदान होते देखा था। पहले बकरे की पूजा होती। धूप, दीप, नैवेद्य, अर्घ समर्पित किये जाते। बकरा प्रसन्नचित्त दूब और अक्षत चबाता। फल खाता। किन्तु तुरत ही उसे खम्भे से बाँधकर गर्दन उतार ली जाती थी। इस प्रकार प्रत्येक मंगल और शनिचर को असंख्य बकरों की बलि होती। पूरा देवी मंडप का बाहरी भाग खून से भर जाता। मक्खियाँ भिनभिनातीं। बकरे का गरम-गरम रक्त देवी के चरणों पर चढ़ता। भक्त टीका लगाते। अंजुलियों में भर-भर कर पीते। थोड़ी देर में बकरा बोटी-बोटी में बदल जाता। उत्सव होता। मांस का मांस और प्रसाद का प्रसाद लोग अत्यन्त प्रसन्नता से खाते। बात प्रसाद से प्रारम्भ होती और मांस पर आकर टिकती। अन्त आते-आते मांस का स्वाद और उसकी चर्चा रह जाती।

अतीत मेरा संकोच तोड़ नहीं पा रहे थे। उन्होंने पूरी ताकत लगाकर मुझे उठा लिया। उठाकर चटाई पर गिरा दिया। अब तेजी से मेरे वस्त्र उतारने लगे। पूरा निर्वस्त्र कर दिया। मैं क्या करूँ? कुछ समझ में नहीं आ रहा था। मैं तो अतीत को अपना हितू, अभिभावक और रक्षक मानती थी। उन्होंने मेरे सारे वस्त्र दूर फेंक दिये। बोले—ये वस्त्र नहीं हैं। ये माया के पर्दे हैं। माया वस्त्रों में प्रविष्ट होकर अपना कार्य दिखाती है। इन्हें रखकर कोई साधना नहीं हो सकती। सत्य को किसी भी पर्दे से मत ढँको। सत्य स्वयं में नग्न है। सुन्दर है। छिन्न मस्ता कामाख्या खुले अंगों की उपासिका हैं।

खोलने में ही सृष्टि का नाद समाया है। जो खोल नहीं सकता, रहस्यभेदन नहीं कर सकता. उस पर देवी की अकृपा बरसती है।

मैं सब सुनती रही। किन्तु शरीर काँप रहा था। पसीने से भीज रही थी। पूरा शरीर पानी बनकर बहा जा रहा था।

अतीत ने पुनः कहा—'मैं रति नहीं चाहता। मेरा मन वासनामुक्त है। मैं केवल अपने वासनामुक्त मन की परीक्षा देना चाहता हूँ। स्वयं वागला रात में उपस्थित थीं। बोली अभी तुम शुद्ध नहीं हो। तुम्हारा मन दोलायमान है। वासना के झूले में झूल रहे हो।

मैंने प्रार्थना की। नहीं माता। मैं परीक्षण हेतु तैयार हूँ। वह देखो। वे आ गयी हैं। खड़ी हैं। अट्टहास कर रही हैं। बहुत हो गया। बहुत सहा। अब मैं देवी का अट्टहास नहीं कर सकता। कैसी क्रूर और उपेक्षा भरी हँसी है। सारा विश्व इस अट्टहास में लय हो रहा है। खोल दो देवी अपने सारे बन्धन खोल दो। तुम्हीं तो भूमा हो। सम्पूर्ण भूमा में तुम्हारा ही तो प्रसार-प्रचार है। तुम्हीं भूमा के आनन्द की भूमिका हो।'

उन्होंने मेरे माथे पर टीका लगाया। कोई मंत्र पढ़ा। लाल चंदन छिड़का। लाल पुष्प, जपा कुसुम की माला पहनायी।

वे अपनी जननेन्द्रिय को मेरी जननेन्द्रिय पर रखकर बैठ गये। कोई क्रिया नहीं। कोई हलचल नहीं। मौन। बिलकुल मौन। हाँ, लगा कि वे भीतर ही भीतर कोई मंत्र दुहरा रहे हैं।

मेरी हालत खराब हो रही थी। मुझसे पानी की धारा बहने लगी। मन विकारों से भर गया। लगा जैसे शरीर की पर्तें खुल रही हैं। नसें ढीली हो रही हैं। मैं उछलकर अतीत को देह से चिपका लूं। और रमण के अन्तहीन सागर में डूब जाऊँ। नसों में कुछ दौड़ रहा था।

मैं अतीत की ओर आगे बढ़ी। लगा जैसे मैं झूले में पेंग भर रही हूँ। फिर क्या हुआ पता नहीं। हम और अतीत दोनों झूले में थे। दोनों एक दूसरे में समा जाना चाहते थे।

यह सिलसिला काफी देर तक चला। वे बार-बार कुछ सोचते। कुछ बोलते। कठिन है। बहुत कठिन है।

अरे मैया। हँसती है। हँस, हँस, खूब हँस ले। तूने मेरा योग देखा। नहीं, नहीं। तुझसे मेरा योग देखा नहीं गया। अब मैं तुम्हें दूसरा रास्ता दिखाऊँगा। भोग से योग। हाँ, हाँ, हँसो मत। संभोग से समाधि। प्रवृत्तियाँ परेशान करती हैं। उन्हें छोड़ा नहीं जा सकता। उन्हें साधन बनाना होगा। साधना यज्ञ में समाधि देनी होगी।

वे बड़बड़ाये। इसमें मेरा क्या दोष है छिन्नमस्ते ! यह साधिका ही नहीं ठहर सकी। मैंने कभी इस पर ध्यान नहीं दिया था। साधिका शव नहीं है। जीवित है। पता नहीं उसमें कोई निश्चय है या नहीं। घृत तो तभी ठंडा होगा जब आग भी ठंडी हो। उधर तो आग जल रही थी। मेरी आग भी··· । आग से आग भड़कती है ! आग का साथ पाकर पत्थर भी अंगार बन जाता है।

मुझे अतीत की बातों में झूठा दंभ, छल और वंचना लग रही थी। वह अपनी वासना के लिए बहाने बना रहा है। जैसे मांसभक्षी देवी का प्रसाद खाते हैं। क्या ठिकाना कोई साधना हो ? अगर यह कोई साधना थी तो क्या उससे गिरने का दोष मेरा है ? हे प्रभु, तुम्हारा यह कितना बड़ा अन्याय है ? जिस बात के बारे में मुझे कोई जानकारी नहीं, उसकी विफलता का दोष मेरे ऊपर लगाया जा रहा है। एक निरीह अबला। जिसे न साधना का पता है। न साध्य का। किन्तु मैं कुछ भी बोलने की स्थिति में न थी। कुछ-कुछ होश खो रही थी। एक अजीब दुनिया में भटक रही थी। कह नहीं सकती वहाँ आनन्द, भय, विश्रांति आदि न जाने क्या-क्या थी ? शायद सब एक साथ थी। फिर भी शिथिल थी। हाँ, सचमुच मैं कुछ क्षणों के लिए मूर्छित हो गयी थी। मुझे

देर से होश आया था। इस बीच क्या हुआ पता नहीं। होश आने पर मेरा सिर अतीत की गोद में था। वे मेरे मुँह पर पानी का छींटा दे रहे थे।

मेरा कंठ सूख रहा था। मैंने पानी माँगा। उन्होंने कहा नहीं, ऐसे में पानी नहीं। भगवती का प्रसाद।

यह कहकर उन्होंने थोड़ी-सी शराब मेरे मुँह में डाल दी। बार-बार झुक कर मेरे ओठों को चाटते रहे। कभी मेरी आँखों को छूते। कभी वहाँ रखी पूजा सामग्रियों को देखते।

यह क्रम बार-बार चला। अब मैं उसके अभ्यस्त हो गयी थी। अतीत बार-बार कहता—मैं तुम्हारी देह को सोना बनाना चाहता हूँ। तुम स्वर्ण मुद्रा बन जाओगी। योग की शक्ति तो देखो। पूरी सृष्टि योग पर टिकी है। योगी उड़ सकता है। पानी और पर्वतों को लाँघ सकता है। पत्थर को आदमी और आदमी को पत्थर बना सकता है। किन्तु एक दिन अतीत अचानक गायब हो गये। अब आश्रम में रहने की एक समस्या हो गयी। इधर मेरे पूरे शरीर में भयानक खुजली प्रारम्भ हुआ। छोटी-छोटी फुंसियाँ निकल आयीं। खुजली के मारे मैं रात-रात भर जगी रहती। मैंने एक वैद्य से अपनी स्थिति बतायी। वैद्यजी अतीत को भी जानते थे। उन्होंने मेरा चेहरा देखते ही कहा—'मुश्किल है। वह औघड़ तुम्हें भी अपना रोग दे गया।' बड़ा पापी है। योग के नाम पर बीमारियों का संग्रह करता है। खुद भी बीमार है। दूसरों को भी बीमार बनाता है।

मैं रोग का नाम सुनकर घबरायी। वैद्यजो ने कहा—घबराओ नहीं। औघड़ अब कुछ ही दिनों का मेहमान है। इसीलिए मैंने उसे सलाह दी। वह कनखल चला गया। मैं तुम्हारा इलाज करूँगा। प्रभु चाहेगा तो ठीक हो जाओगी। ऐसे याद रखना, यौन रोग संसार का सबसे भयानक रोग है। वह समझता था तंत्र, योग और रसायन के मेल से वह अपने को बचा लेगा। किन्तु उसका दुष्कर्म इतना अधिक है कि कोई मेल उसे बचा नहीं सकता। उसने पापाचार के लिए ही औघड़ रूप बनाया था। वह पापी है। पापकर्मा है। तंत्र और रसायन

के मेल से अपने को अमर समझने वाले लोग एक प्रकार के नास्तिक हैं। अमरता तो केवल अशरण शरण प्रभु ही देने में समर्थ है।

वैद्य की दवा ने मुझे फायदा पहुँचाया। किन्तु मैं आज भी पूर्ण स्वस्थ नहीं हूँ। रोग दबा मात्र है। अभी भी अंगों में जलन होती है। बेचैन उछलने लगती हूँ।...आज सोचती हूँ वह साधु नहीं था। दाढ़ी बढ़ाये बकरा था। रंगा सियार था। बाहर माला फेरता। कपड़ा रंगाकर लोगों को ठगता था। किन्तु हृदय में डंडूल वहता। अतीत का भेष बनाकर उसने बडा अपराध किया। शासन में ऐसे लोगों के विरुद्ध दंड का विधान होना चाहिये।

संत, तुम स्त्री को माया कहते हो। किन्तु याद रखना स्त्री माया है तो पुरुष पिशाच है। स्त्री भरमाती है। पुरुष लूटता है। बर्बाद कर देता है। पुरुष स्त्री के बन्धन से छूट सकता है। किन्तु स्त्री की मुक्ति नहीं है। उसे पुरुष के वलात्कार को भी ढोना पड़ता है। विधाता की सृष्टि में स्त्री के हिस्से में मुक्ति नहीं बन्धन है। आत्महत्या, हत्या, जलना, जलाया जाना केवल स्त्री के हिस्से में पड़े हैं। शायद ही कोई कुँआ, तालाब और नदी हो जिसमें स्त्री लाश न उतरायी हो। कोई घर नहीं जिसमें स्त्री का धुआँ नहीं हुआ हो। सिसकना, तड़पना और भयभीत रहना तो उसके लिये सामान्य बात है। ताने, गाली और मारपीट उसके सुहाग माने जाते हैं।

तुम्हें भ्रम न हो। मैं शाक्त नहीं हूँ। तुम्हारी तरह ही मुझे शाक्तों से घृणा है। वे जीव हिंसा में विश्वास करते हैं। आचरणहीन होते हैं। यह त्रिशूल मेरा कवच है। क्रूरता और अपमान से रक्षा का साधन। एक शाक्त ने ही अपनी शक्ति से मेरी शक्ति नष्ट कर दी। स्त्री की सबसे बड़ी शक्ति है शील। सदाचार। उस नीच पुरुष ने मेरा वही शील नष्ट कर दिया। मुझे इसका भी दुख न होता। यदि मैं जानती कि वह मेरा है। केवल मेरे साथ है। मेरा हाथ पकड़कर और किसी को कलंकित नहीं करेगा। मुझे अपना बनायेगा और अपने को मेरा बनाकर रखेगा। आखिर मनुष्य जीवन होता किसलिए है? मैं कभी विरागिन नहीं थी। मेरे मन में कभी विराग आया भी नहीं। किन्तु वह

धूर्त, आवारा और लंपट था। मेरी जैसी जानें कितनी अबलाओं का जीवन नष्ट किया। कितनों को साधना का लोभ दिखाता रहा। शायद खुद भी धोखे में रहा और दूसरों को भी धोखा देता रखा।

यह कहकर योगिनी ने पुनः जोर से त्रिशूल को धरती पर पटका। उसकी आँखों में खून उतर आया था। क्रोध और दुख ने उसके पूरे शरीर को घेर लिया था।

मेरा जीवन व्यर्थ हो गया। मैं न स्त्री बन सकी। न संन्यासिनी ही हुई। केवल जलती हूँ। सुलगती हूँ। साधना, तपस्या, योग का ढोंग करती हूँ। मुझे किसी से कुछ मतलब नहीं। मुझे मतलब है केवल पुरुष से बदला लेने की। देखो ले पाती हूँ या नहीं? दुख तो यह है कि अतीत कामी और व्यभिचारी का धन्धा स्त्रियों से फैलता है। बगुला फँसाने वाला पहले किसी तरह से एक बगुले को फाँसता है। फिर उसके माध्यम से अन्य बगुलों को फँसाने का कार्य करता है। यही हमारे साथ होता है। उस अतीत के पास मुझे एक स्त्री ले गयी थी। बाद में पता लगा कि वह मुझ जैसी ही अभागी थी। वह अतीत से धन पाकर उसके लिये स्त्री फँसाने का धन्धा करती थी।

स्त्री थी तो अधेड़। किन्तु उसकी भंगिमा युवतियों जैसी थी। उसकी वाणी में आश्चर्यजनक मिठास थी। अपनी मीठी बोली से वह युवतियों को प्रभावित कर लेती थी। दुखिया और अभागिनों की टोह में रहती। जहाँ कोई दीखती कि झपट्टा मारकर पहुँच जाती। सहायता करती। सहायता की बड़ी-बड़ी ढींगें ठेलती। अज्ञानी भावुक मन उसके प्रभाव में आ जाते। अतीत आश्रम की दुर्दशा का जरा भी आभास पहले होता तो मैं मर जाती। यहाँ नहीं आती। मृत्यु नरक से अच्छी है। नरक में एक बार फँस जाने के बाद निकलना भी मुश्किल। वह मर न गया होता तो शायद मैं आज तक उसी नरक में बिलबिलाती रहती।

मैंने कितने नरक भोगे। यह कहते-कहते योगिनी के चेहरे पर भयानक विकृति स्फारित हो गयी। उसका प्रकाशित मुखड़ा बुझ गया। जैसे किसी ने कालिख पोत दी है। जलती आग राख हो गयी हो।

उसने बात आगे बढ़ायी। 'किन्तु मैं उस स्त्री के समान नीच नहीं थी। अतीत मुझे बर्बाद कर चुका था। मैं कहीं की नहीं रही। अब उसने मुझे माध्यम बनाने की कोशिश की। मैंने साफ इनकार कर दिया। मेरे मन में उसके प्रति घृणा थी। मैं उसकी कमजोरियाँ भी जान गयी थी। पुरुष चाहे कितना ही बलवान क्यों न हो स्त्री के सामने वह एक दुर्बल प्राणी है। स्खलित होने वाला पशु है। मैंने उसे पशु जैसी डाँट पिलायी। वह गुर्राया अवश्य किन्तु कुछ कर न सका। शायद उसे अपनी प्रतिष्ठा का भय था। प्रतिष्ठा के विरुद्ध आचरण ही स्वेच्छाचार है। अनाचार और व्यभिचार है। किन्तु हमारे मौन रहने पर भी वह प्रतिष्ठित न रह सका। उसे भागना पड़ा।

पापी मरा। किन्तु मुझे जैसी कितनी ही औरतों का नाश कर मरा। उसकी याद आते ही मन विकृतियों से भर जाता है। हजार-हजार बिच्छू एक साथ डंक मारने लगते हैं। मैं पागल हो जाती हूँ। यह भी पता नहीं रहता कि किससे क्या बोल रही हूँ? क्या व्यवहार कर रही हूँ। योगिनी का वेश न बनाऊँ तो लोग मुझे पत्थरों से पीट-पीट कर मार डालें। थूकें। हथकड़ी और बेड़ी लगाकर अँधेरे कमरे में डाल दें।

सन्त, मैं अब जाना चाहती हूँ। जाऊँगी। एक पापी के कारण मैं कहीं की नहीं रही। तुम से एक निवेदन है। क्या मेरी बात मान सकोगे? एक बार मेरी आँखों में देखो। मेरे माथे पर हाथ रख दो। मैं तुम्हारी मूर्ति लिये। आशीर्वाद और भाग लिये चली जाऊँगी। सन्तुष्ट होकर जाऊँगी। मेरा काम हो गया।''' मैंने लोई को तुम्हारे हाथ में सौंप दिया है।

सन्त कुछ क्षण तक मौन रहे। सन्त को मौन देख योगिनी व्याकुल हो गयी। सन्त यह भी एक उद्धार है। स्त्री को बन्धन से मुक्त करो।

सन्त का हाथ काँपा। उनके मुँह से निकला खुद बँधकर? क्या तुम छुछन्द मुक्ता को बाँधना चाहती हो?

योगिनी ने कोई जवाब नहीं दिया। केवल सन्त को देखती रही। दृढ़ता पूर्वक देखती रही। उसका चेहरा चमक रहा था। जैसे सूरज डूबने के पूर्व लाल हो जाता है।

उसने केवल इतना ही कहा—सोचो मत सन्त। यह मेरा आग्रह है। एक ने मेरी देह अपवित्र की थी। तुम उसे पवित्र करो। यह भी एक समाज सेवा है। प्रभु के पतितों का उद्धार। प्रभु सेवा का नया विधान।

मैं जाऊँगी। जाने के बाद भी जाति स्मृति के रूप में तुम्हारी यह कृपा, तुम्हारा यह स्नेह और तुम्हारा यह आशीर्वाद मेरे पास हो। यही चाहती हूँ।

सन्त ने धीरे-धीरे नजर उठायी। चारों आँखें समुद्र में डूबी थीं। उन्होंने अपना दाँया हाथ योगिनी के माथे पर रखा।

योगिनी का सिर जल रहा था। जैसे किसी ने आग जलायी हो। वर्षों से किसी पत्थर को गरमाया हो। सन्त हाथ की स्रुवा और आँखों के घृत से हवन कर रहे हैं। ओंकार आदि है...।

योगिनी की आँखें बरसने लगीं। झुककर सन्त के पैर छुए।

योगिनी भागी। गई।

सन्त के मुँह से निकला—जा रमजनियाँ, जा। उन्होंने आँखे झुका ली।

रमजनियाँ चली गयी। किन्तु सन्त को बेचैन कर गई। संसार में अनेक दुख हैं। राजा दुखी है। प्रजा दुखी है। तपसी और गृहस्थ सब दुखी हैं। स्त्री से पुरुष दुखी है। पुरुष से स्त्री दुखी। स्त्री स्त्री से दुखी है। पुरुष पुरुष को दुख दे रहा है।

सारा जीवन खोखला हो गया है। खंखर हो गया है। फूला तो पलाश। गिरा तो लाश। कल फूले पलाशों का जंगल था। पूरा वन लाल-लाल वस्त्रों से ढंका। जैसे किसी राजा के स्वागत में बिछा पग.पोछन। किसी नयी व्याहता की लाल साड़ी। लाल चादर में ढँकी प्रकृति। आज सब उजड़ गया। लाली सूख

गयी। पेड़-पौधे सब खंखर हो गये। वह कौन सा और कैसा लाल है जो लाल फैलाता है। फिर समेट लेता है। अन्त में रह जाता है केवल ऊजड़।

सन्त साहेब इस ऊजड़ से लड़ेंगे। नश्वर का अनश्वर से युद्ध होगा। सूखते झरते पलाशों के खंखर वन में प्रेम जल की वर्षा करेंगे। भव समुद्र में डूबते को पार करेंगे। घट के भीतर के सत्पुरुष को पहचानेंगे। जिलाने वाले की खोज करेंगे। मृत्यु को अमृत से जीतेंगे—

मैं न मरौं मरिहै संसारा, मुझको मिला जवावनिहारा।

उन्हें गुरु ने रास्ता दिखाया है। वे गुरु हैं सबको रास्ता दिखायेंगे।

दोनू राह न...

कबीर के विरोधी सक्रिय हो गये। हिन्दू भी विरोधी थे। मुसलमान भी। हिन्दू को शिकायत थी कि सन्त देवी-देवता को नहीं मानता है। अवतारों की निन्दा करता है। मूर्तियों को पत्थर कहता है। पाहन के देवता से चक्की को महत्वपूर्ण समझता है। ऋषि प्रमाण का मूल वेद की जगह आत्मसत्य को मानता है। ब्राह्मण की उच्चता के स्थान पर केवल गुरु की श्रेष्ठता में विश्वास करता है। वर्णव्यवस्था को न मानकर गुरु किसी भी जाति का हो सकता है। जाति और जन्म से कोई बड़ा नहीं होता। बड़प्पन का आधार भक्ति है। प्रभु की प्राप्ति है।

मुसलमान कबीर को इस्लाम विरोधी मानते हैं। कुरान, बांग, जिबह, खतना, मसीत आदि सबका विरोधी है। नमाज न पढ़कर भक्ति करता है। अपने को पैगम्बर समझता है। खुदा को अपने भीतर ही देखता है। न हज जाता है। न बिहिश्त चाहता है। दोजख से डरता नहीं। कयामत के फैसले की हँसी उड़ाता है। कहता है कयामत तो रोज है। दीन-ईमान के रास्ते सबके एक हैं। राम-रहीम एक हैं।

हिन्दू दो दलों में बँटे थे। बहुत से हिन्दू कबीर को शास्त्र-विरोधी मानते थे। उनकी राय में हिन्दू-शास्त्र आचार पर जोर देता है। कबीर आचारवाले हैं। वेद को न मानने मात्र से कोई हिन्दू विरोधी नही हो जाता है। विचारों की विभिन्नता ही हिन्दू धर्म की खूबी है। भिन्न-भिन्न श्रुतियाँ हैं। स्मृतियाँ हैं। कोई मुनि ऐसा नहीं जिसकी मति भिन्न न हो।

किन्तु हिन्दुओं में एक कट्टर वर्ग था। यह वर्ग कबीर को मुसलमान मानता था। उसे सुधार की कोई भी बात पसन्द नहीं थी। यह वर्ग इस्लाम के आक्रमण से बहुत डरा था। डरा व्यक्ति अपनी छाया के प्रति भी शंकित रहता

है। हिन्दूधर्म की जरा-सी आलोचना उसे भयभीत कर देती थी। वह सुधार को शक्ति नहीं कमजोरी माने बैठा था। जबकि सुधार स्वास्थ्य है। शक्ति और पुरुषार्थ है। बलवान और जीवित समाज नित्य अपने में सुधार करता है। हर क्षण अपने को सँवारता है। बढ़े केशों-नखों को काट फेंकता है। आलोचना रचना को दिशा देती है। स्वस्थ समाज को आलोचना का स्वागत करना चाहिए। निंदक को नजदीक रखे।

हिन्दुओं का कट्टरवर्ग मुसलमानों को भड़काता। वे कबीर के खिलाफ कार्रवाई करें। काजी के यहाँ फरियाद करें।

उस दिन एक आवारा के हाथों लोई को बचाकर कबीर ने कुछ भी गलती नहीं की थी। किन्तु इसकी कहानी गढ़ी गयी। वह औरत मुसलमान होना चाहती थी। मुसलमान बनने के लिए ही वह अपने घर से चली थी। वह अपने दोनों बच्चों को भी मुसलमान बना देती। कबीर ने उसे जबर्दस्ती छीन लिया।

कबीर धर्म परिवर्त्तन के खिलाफ है। अतिवर्णाश्रमियों को वह संगठित कर रहा है। अतिवर्णाश्रमी ही धर्मपरिवर्त्तन के आधार हैं। जोगी भी मुसलमान हो रहे हैं। कबीर योगियों में जागृति पैदा कर रहा है। तुम न हिन्दू हो न मुसलमान या तुम मात्र योगी हो। हिन्दू-मुसलमान दोनों का रास्ता ठीक नहीं है। योगी अलग है।

सभी कबीर की बातों में आ गये हैं। कंठी ले रहे हैं। राम राम जपते हैं। मांस, मछली आदि सब छोड़ दिया है। यही तो हिन्दू धर्म है। राम नाम जपने वाला क्या कभी मुसलमान हो सकता है?

वह औरत अब कबीर के साथ रहती है।

कबीर से कोई कुछ कहता तो वे फटकार देते। उनकी डाँट खाकर सरपट भागता।

बात काजी तक पहुँची। पहुँची क्या पहुँचायी गयी।

काजी की मुख्य दिलचस्पी धर्मपरिवर्त्तन में थी। काजी स्वयं अनुभव करते थे। काफिरों की पिछड़ी और गरीब जातियाँ संगठित हो रही हैं। कबीर की बानी उस संगठन को हवा दे रही है। वे वर्णव्यवस्था के खिलाफ लड़ना चाहते हैं। धर्म बदलकर नहीं। जहाँ हैं वहीं रहकर। उन्हें कबीर ने बताया है धर्म मत बदलो। जहाँ हो वहीं लड़ो। इसीलिए वह इस्लाम की निन्दा करता है।

काजी और मुल्लाओं का समर्थन काशी के दूसरे वर्णाश्रमी ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय आदि भी कर रहे थे। सभी कबीर को दंडित करने के पक्ष में थे। किन्तु कठिनाई भी थी। कबीर अकेले नहीं थे। रामानन्द के वैरागी पूरे देश में फैले थे। अतिवर्णाश्रमी भी कम न थे। हिन्दू डरते थे। कहीं सभी मुसलमान न हो जायँ। अभी तो केवल निन्दा हो रही है। तब मूल पर हमला होगा। हिन्दू धर्म को उखाड़कर फेंक देंगे। सब नाश की अपेक्षा आधा छोड़ना ठीक है।

काजी और मुल्ला उपद्रव से डरते थे। उन्हें मूल रहस्य का पता लग गया। अंत में अधिकतर हिन्दू कबीर के साथ रहेंगे।

राजा वीर सिंह बघेल पर कबीर का प्रभाव था। वे उनके शिष्य हो गये थे। सैकड़ों भक्त हर समय सन्त को घेरे रहते। सत्संग चलता। लोगों को शान्ति मिलती। राजा इससे प्रसन्न होते। बादशाह को अमन की खबर जाती। हर राज्य अपनी प्रजा में शान्ति और सुरक्षा चाहता है। यह काम बिना किसी फौजी ताकत के हो। यह अच्छी बात है।

शान्ति प्रिय नागरिकों को सन्त कबीर की बातें अच्छी लगतीं। वे किसी का अपमान नहीं करते थे। अक्सर तो अपने में ही खोए रहते।

किन्तु कुछ लोग तरह-तरह से सन्त को परेशान करना चाहते थे।

एक दिन काजी ने लोई को पकड़ मँगाया। शायद वह कुछ मदद करे। उसे लोभ दिया। धमकाया। वह काजी को दरखास्त दे। नालिस करे। सन्त पर अभियोग लगाये। किन्तु लोई ने साफ इनकार कर दिया। उलटा आरोप

लगाया। काजी के लोग उसे परेशान करते हैं। सन्त ने उसे बचाया है। सन्त से उसका आत्मिक सम्बन्ध है। सन्त आदमी नहीं, देवता है। पूरी भीड़ में वह एक देवता है।

काजी के लोगों की बहुत बेइज्जती हुई। बात फैल गयी। क़ाजी मन मसोस कर रह गया।

हाँ, लोई चाहती है कि सन्त उसे अपनी स्त्री बना ले। वह सन्त को चाहती है। किन्तु सन्त गृहस्थी बसाने के लिये तैयार नहीं हैं। उनमें स्त्री और सन्तान की वासना नहीं है। वे कोई भी काम वासना से नहीं, धर्म के लिये करते हैं।

बात फैलते देर न लगी। चारों ओर सन्त की प्रशंसा होने लगी। विरोधियों ने कहा 'यह कबीर की चाल है। उसने औरत को कब्जे में कर लिया है।' सन्त ने मौन रहना ही अच्छा समझा। वे अपनी साधना में और भी तल्लीन हो गये। हाँ, उन्होंने इतना जरूर किया कि दोनों धर्मों की आलोचना और प्रखर कर दी। इससे दोनों धर्मों के लोग तिलमिलाते थे। हिन्दुओं में बहुत से लोगों को कबीर की बातें अच्छी लगती थीं। इसलिये वे ही उनके अधिकतर शिष्य हुए। उन्हें कबीर की बानियों में अपने पूर्व पुरुषों के निर्वचन मुक्त सीधे-सादे किन्तु तलस्पर्शी तात्विकवचन मिलते। उनके संस्कारों की शुद्धि होती। वे अपने भीतर सुधार के पक्षपाती थे।

मुसलमानों में शेखतकी नामी फकीर थे। कहते हैं वे बादशाह के गुरु भी थे। उन्होंने कबीर के प्रभाव को रोकने की प्रतिज्ञा की। हिन्दू अपनी आलोचना सुनने के आदी थे। किन्तु मुसलमानों के लिये यह नयी बात थी। इस्लाम में आलोचना के लिये स्थान नहीं है।

मुसलमान शासक थे। शासक धर्म की आलोचना में शासन की आलोचना शामिल थी। सूफी शाहेवक्त को तसलीम करते। सलाम करते। कबीर किसी शाहेवक्त को मानने के लिये तैयार नहीं थे। उन्होंने कभी किसी राजा महाराजा

को नमस्कार नहीं किया। किसी शाह को सलाम नहीं किया। वे स्वयं शाह थे। उनका महाराज उनके मन में था।

रामानन्द का भक्तिमार्ग राजा का विरोधी नहीं था। किन्तु वह अपने को उसकी प्रजा नहीं मानता था। राजा तो केवल राम हैं। भक्त केवल राम की प्रजा है। सबको राम से जुड़ना चाहिए। कबीर के राम राजा भी हैं। कर्त्ता और भर्त्ता भी हैं।

शेख तकी ने चाहा कि वह कबीर को समझाकर अपना चेला बना लें। चेला नहीं तो मित्र ही सही। इससे इस्लाम को फैलाया जा सकेगा। बादशाह को प्रसन्नता होगी। हमारा रुतबा बढ़ जायेगा। एक बादशाहत में दूसरी बादशाहत नहीं चल सकती। किन्तु कबीर पर उसकी बातों का कोई असर नहीं पड़ा। उसने वाद-विवाद को रोक दिया। अधिक बहस कबीर के पक्ष में जा रही थी। समझाने-बुझाने से कबीर और कठोर हो रहे थे। तकी उनके तर्कों से तिलमिला जाता। लोक में उसकी अप्रतिष्ठा होने लगी।

शेख तकी कबीर के पीछे पड़ गया। पराजय मनुष्य में क्रोध पैदा करती है। क्रोध की पूर्ति न होने पर ईर्ष्या होती है। क्रोध दुख है। ईर्ष्या और बड़ा दुख है। क्रोध तड़पाता है। धधकाता है। धायँ-धायँ लहराता है। उसकी आग को सभी देखते हैं। नदी की बाढ़ सी क्रोधाग्नि उत्तेजित रहती है। जो आस-पास मिला उसे नष्ट कर देता है। उसमें उनचास पवन का वेग और वज्र की मारक कठोरता होती है। इसीलिये वह कुछ काल में थम जाता है। किन्तु ईर्ष्या भीतर ही भीतर धुंधुआती है। सूखी नदी सी जरा सा रेत हटाते ही दीखती है। दोनों विचार विरोधी हैं। विचार को पैदा ही नहीं होने देते। केवल बदला लेने का विचार पैदा होता है। मनुष्य की सारी प्रतिभा बदला लेने में लग जाती है। दूसरों को दुख पहुँचाने में लग जाती है।

शेख तकी कबीर को दुख पहुँचाने की चिंता में लग गया। उसने काजी एवं मुल्लाओं को साथ लिया। बादशाह सलामत को खबर जनाई। कबीर

इस्लाम विरोधी है। यह प्रजा में उपद्रव फैलाना चाहता है। हिन्दू भी इससे नाराज हैं। अच्छा मौका है। अभी दमन हो जाना चाहिए। आगे कठिनाई होगी।

धर्मपरिवर्त्तन रुका कि राज्य-परिवर्तन हुआ। धर्मरहित राज्य शीघ्र नष्ट होता है। शाहेवक्त संसार में खुदा का बन्दा है। प्रतिनिधि है। इसे न मानना खुदा को न मानना है। खुदा के दुश्मनों को खल्क से बाहर करो। खुदा ने खल्क में इंसान को नेयामत इसलिए बरती है कि वह उसकी बंदगी करे। रोजा और नेमाज अदा करे। जो ऐसा नहीं करता वह रहमत का हकदार नहीं है।

शाहंशाह ने कबीर को बुलवाया। सन्त ने जाने से इनकार कर दिया। किन्तु लोगों ने समझाया। आपका कुछ नहीं बिगड़ेगा। साधु का क्या? वह आजाद है। कहीं भी आ-जा सकता है। बादशाह आपका क्या करेगा? जान ही तो ले सकता है। ले लो। इस नश्वर शरीर को जाना ही है। सवाल आपके शिष्यों, भक्तों, प्रशंसकों और अनुयायियों का है। बादशाही जुल्म बढ़ जायगा।

लोगों का समूह कत्लेआम शुरू हो जायगा। धर्मपरिवर्त्तन रुकने से मुल्लों में योंही बड़ा रोष है। मुल्ले शाह का कान भरेंगे। तकी पता नहीं बादशाह को क्या-क्या समझाएगा?

हिन्दू साधक अतिवर्णाश्रमी अन्त्यजों की बहू-बेटियों को साधना के नाम पर उठा ले जाते थे। भगा लेते थे। मुसलमान कारिंदों की नजर भी अतिवर्णाश्रमी स्त्रियों पर ही रहती है। आपको दोनों से लोहा लेना पड़ा। इसलिए दोनों ही वैष्णवों से नाराज हैं।

आप जैसे सन्तों की कृपा से अन्त्यज समाज में सम्मान पा रहे हैं। रामजी का दरवाजा सबके लिए खुला है। सब अपने को राम कहते हैं। अमुक राम। फलाँ राम। सबको राम का सहारा है। अनेक द्विज अपने को दास कहने लगे

हैं और दास कहलानेवाले अन्त्यज राम हो गये हैं। बादशाह इस आन्दोलन में बाधा डाले इससे क्या फायदा होगा ?

सन्त कबीर को यह बात समझ में आ गयी। आखिरकार संसार की एक व्यवस्था है। सबको इस व्यवस्था में रहना है। सन्तों का मुख्य कार्य संसार बदलना है। व्यवस्था बदलना उसका कार्य नहीं है। संसार की व्यवस्था में दखल सांसारिक के प्रति उसकी अतिरिक्त कृपा है। मात्र देह धर्म है। इसलिए शाह के यहाँ जाने में कोई हर्ज नहीं है।

सन्त बादशाह के दरबार में हाजिर हुए। भयानक सर्दी में भी वे नंगे वदन थे। केवल कमर में एक लंगोटी लगा रखी थी। सामान्यतः सन्त लुंगी लगाते। चादर ओढ़ते। टोपी पहनते। खड़ाऊँ या जूते का प्रयोग करते। किन्तु बादशाह के सामने उन्होंने कुछ नहीं पहना। केवल एक लंगोटी। जैसे नंगा होकर बादशाही शान-सजावट को चिढ़ा रहे हों।

पहरेदारों ने दरवाजे पर रोक दिया। बादशाह को खबर गयी। दरबार में ऐसा कभी नहीं हुआ था। दरबारों का एक कायदा होता है। यहाँ हर चीज कायदे की तहत होती है। दरबार में कोई नंगा नहीं जा सकता। यहाँ अधिकतम पोशाक पहनने की प्रथा है। दरबार में जाने की तैयारियाँ होती हैं। लोग पोशाक सिलवाते हैं। उसके लिए राजकी दर्जी की खुशामद करते हैं। ऐसा न करनेवाले दूसरों से माँगते हैं। यद्यपि माँगने की नौबत नहीं आती है। क्योंकि माँगनेवाले का दरबार में प्रवेश कहाँ हो सकता है ? वहाँ तो प्रायः सम्पन्न ही जाते हैं।

यह सन्त है कि नंगे। नग्नता साधु धर्म हो सकती है। राजधर्म नहीं। ठाठ-बाट ही तो राज्य है। चमक दमक, तड़क भड़क नहीं तो राज्य कैसा ? राज्यसत्ता बिजली-सी चमकती है। बज्र-सी तड़कती है। बादल-सी गरजती है। कभी-कभी बरसती है। कहाँ, कब, किस पर, क्यों बरसेगी कुछ पता नहीं। प्रेम की वर्षा करेगी या क्रोध की यह भी तय नहीं।

बादशाह भड़का। यह क्या बदतमीजी है ? दरबार का कायदा नहीं विगड़ सकता। यह हिन्दू दरबार नहीं है। हिन्दू दरबार में ब्राह्मण कम से कम कपड़ों में इज्जत पाता है। जैन दरबारों में समन नंगा भी जा सकता है। किन्तु इस्लामिक दरबार में यह नहीं हो सकता है।

बादशाह ने इसे अपना अपमान समझा। किन्तु और कोई रास्ता भी नहीं था। सन्त कबीर की जिद्द प्रसिद्ध थी। शाह डरा। कहीं हमारे सामने ही लँगोटी भी खोल फेंके तो क्या करेंगे ? हिन्दू दरवेशों का कोई भरोसा नहीं। ये कुछ भी कर सकते हैं। इस पर यह बनारस का फकीर है। जहाँ का खुदा भी नंगा रहता है। अन्त में नंगे साधु की विजय हुई। राज्य सत्ता ने हार मानी।

सन्त बादशाह के सामने हाजिर किये गये। उन्होंने बादशाह को सलाम नहीं किया। आँखें मूंदे रहे। जैसे देखना नहीं चाहते हों। यह स्थिति कुछ क्षणों तक चली। सारे दरबारी सकते में थे। ऐसा व्यक्ति कभी दरबार में नहीं आया था। क्या करें ? पता नहीं बादशाह किस पर नाराज हो ? अजीब स्थिति थी। एक तरफ अखंड निर्भयता। दूसरी और भय का साम्राज्य। दरबारियों के प्राण सूख रहे थे। धड़कनें बढ़ गयी थीं। रक्तचाप तेज हो गया था। सिर में चक्कर आने लगा था।

वजीरे आजम ने मुँह खोला—'जहाँपनाह मुजरिम हाजिर है।' अपने को मुजरिम कहते सुन सन्त ने आँखें खोल दीं। कुछ बोले नहीं। शान्त रहे। किन्तु तेज निगाहों से शाह को देखने लगे। शाह घबड़ा गया। उसने नजरें नीची कर लीं। लगा जैसे बेहोश होकर गिर जायगा।

सन्त देखते जा रहे थे। मौन···मौन····मौन····। पूरा दरबार गरज रहा था। मौन गर्जन। छटपटाहट। मौन छटपटाहट। सन्त की आँखों से सर्पाकार बिजली निकल रही थी। देखना मुश्किल था। बादशाह ने सिर घुमाया। बगल में शेख तकी बैठा था। शेख तकी ने मौन भंग किया। यह क्या है कबीर ? तुम्हें दरबार का एक भी कायदा नहीं मालूम। नंगे बदन आये। बादशाह को

सलाम भी नहीं किया। तुम्हें खौफ होना चाहिए। तुम शाहंशाह की रियाया हो। वे तुम्हारा परवरिश करते हैं। हम सभी शाहंशाह के बन्दे हैं। दुनिया में शाह सबके ऊपर है। शाह के ऊपर कोई नहीं। सभी उसके नीचे हैं। तुम्हारी गुस्ताखी के लिए तुम्हें अवश्य सजा मिलेगी। गुस्ताखों के लिए इस दरबार में जगह नहीं है। गुस्ताखों की जगह सींकचों या फाँसी के तख्ते पर होती है। तुम परवरदिगार के गुनहगार हो। मालिक तुम्हारे गुनाहों को कभी माफ नहीं करेगा। वह सब देख रहा है। उसकी नजरें इतनी बड़ी हैं कोई भी उससे बचकर निकल नहीं सकता है। अपनी वेफिक्र खता के लिए शाह से माफी माँगो। बादशाह सलामत बड़ा मेहरबान है। वह तुम्हें माफ करेगा।

सन्त ने कहा—मेरा परवरिश बादशाह करता है। और बादशाह का परवरिश कौन करता है ? बता सकते हो ? शायद नहीं। तो सुनो। मुझसे सुनो। हम दोनों उसी मालिक के बन्दे हैं। वही खालिक समूचे खलक का शाह है। बाकी उसके गुलाम है।···मैं गुलाम को सलाम नहीं करता। उस बादशाह के सामने इस बादशाह की क्या हैसियत है ? यह उसका एक अदना भिखारी है। नंगा आया था। नंगा जायगा। अधिक कपड़ा पहनकर उसका गुनाह करता है। क्या हमारा बादशाह कभी कपड़ा पहनता है ? तुमने कभी उस नंगे को देखा है ?

अब बादशाह गुर्राया। बढ़-बढ़ कर बातें मत करो फकीर। तुमको फकीर जानकर छोड़ रखा था। हम लोग दरवेशों, फकीरों और खुदा के बन्दों पर हाथ नहीं लगाते हैं। किन्तु तुम जालिम जान पड़ते हो।

सन्त ने बादशाह का कोई जवाब नहीं दिया। केवल धीरे से कहा—माया में फँसा आदमी के लिये यही ठीक है।

जिसकी गर्दन यम की मुट्ठी में हो वह अपने को बादशाह कहता है। अरे मूरख, तेरे सिर पर जम खड़ा है। पता नहीं कहाँ मारेगा ? कै घर कै परदेस ?

बादशाह का चेहरा लाल हो गया। क्या बोलता है ? इसे बाँधकर दरिया में डाल दो।

शाह का हुक्म सुनते ही सिपाहियों ने सन्त को पकड़ लिया। बाँधकर नदी में फेंक दिया। थोड़ी देर बाद देखा गया। सन्त नदी किनारे एक पेड़ के नीचे समाधि में बैठे हैं। हल्ला हो गया। महात्मा जीवित हैं। लोग डर रहे थे। इधर बादशाह का हुक्म। उधर साधु का अपमान। अनर्थ होना चाहता है। साधु अवज्ञा अनर्थ कर सकती है। आग लगेगी। ओले गिरेंगे। अकाल पड़ सकता। महामारी फैल सकती है। हिन्दू मुसलमान सब में डर समा गया। तरह-तरह की कहानियाँ फैल गयीं। लोदी ने सन्त की झोपड़ी में आग लगवा दी। झोपड़ी जलने लगी। धुआँ उठा। लपटों ने वृत्त बनाया। छोटे बड़े सभी सामान जल गये। कठोर जला। कोमल जला। लाल, पीला, नीला जला। ऊँचा नीचा, पैदल सवार सब जला। केवल बच गये सन्त। कबीर का बाल बाँका नहीं हुआ। वे आग से भी बच निकले। जाको राखै साइयाँ मारि न सकै कोइ। सन्त को मारना असम्भव है। ईश्वर खुद इसकी रक्षा करते हैं। ध्रुव, प्रह्लाद, राजा अम्बरीष आदि को उसने बचाया है। किन्तु शेख तकी समझे तब न। वह तो धर्मान्ध पागल है। सन्त की छाया से जलता है।

शेख तकी परेशान था। यह सब क्या हो रहा है ? निश्चय ही लोग कबीर से मिले हैं। तभी यह मर नहीं रहा है। उसने बादशाह से शिकायत की। ऐ शाहंशाह, तुम्हारे लोग कबीर से मिले हैं। तभी यह आदमी पानी में डूब नहीं सका। आग में जल नहीं सका। कहीं ऐसा सुना है ? आदमी पानी में न डूबे। आग में न जले। यह बात तो खुदा में ही हो सकती है। संसार में केवल अल्लाह ही आग, पानी, हवा आदि से ऊपर है। सातवें आसमान में रहता है।

बादशाह ने हुक्म दिया। कबीर को मतवाले हाथी के नीचे दबा दो। कुचल दो। महावत बुलाया गया। बादशाह का हुक्म सुन घबराया। वह सारी घटनाएँ सुन चुका था। उसने अपनी आँखों देखा था। सन्त जले नहीं,

डूबे नहीं। पानी की लहरों ने उन्हें बाहर फेंक दिया। आग से वे और चमकने लगे।

सन्त में क्रोध नहीं था। उनके चेहरे पर बुराई की विकृति नहीं थी। यह बहुत डरावनी बात थी। क्रोध से क्रोध पैदा होता है। किन्तु सताया जाने वाला शांत रहे। विकार विहीन रहे। ऐसे में अन्यायी परेशान होता है। डरता है। मृत्यु को अपना हथियार समझने वालों को इससे बड़ी कठिनाई होती है। संसार का अन्तिम हथियार बेकार हो गया। मृत्यु से ज्यादा भयानक है मृत्यु का डर। जिसे भय नहीं उसका मृत्यु भी क्या करेगी ? मृत्यु मारने की अपेक्षा डराती अधिक है।

शेख तकी घबराया था। बादशाह भी घबराया था। महावत की क्या बिसात ? एक तरफ बादशाह का हुक्म। दूसरी ओर फकीर को मारने का पाप। परेशान हो उठा। सिर में चक्कर आने लगा। मन में आया नौकरी छोड़ दे। कह दे, जहाँपनाह यह काम मुझसे नहीं होगा। मेरा हाथी अपराधी को मारने के लिये है। बेगुनाह को जानवर भी नहीं मारना चाहता। हाथी तो बड़ा समझदार जानवर है। वह सूंघकर सब पता लगा लेता है। कहीं उलटे न भागे। अनर्थ हो जायगा।

भय और आशंका से महावत का चेहरा विकृत हो गया। वह काँपने लगा। किन्तु सामने लोदी जल्लाद सा बैठा था। महावत की नौकरी खानदानी है। नौकरी उसका पुश्तैनी पेशा था। इसे वह नहीं छोड़ सकता है। नौकरी तभी छूटेगी जब कि देश छोड़े या शरीर। दूसरे देश में भी तो जीविका चाहिए। वहाँ भी जीविका का आधार यही होगा। फिर देश छोड़ना आसान नहीं। पकड़ गये तो फाँसी। नौकरी वहाँ छोड़ी जाती है जहाँ पेशे का चुनाव होता है। यहाँ उसने पेशा चुना नहीं है। उसी में पैदा हुआ है। यहाँ नौकरी का आधार वफादारी अधिक है योग्यता कम।

उसने बादशाह को सलाम किया और अपने कार्य के लिये चल पड़ा।

कबीर बाँधे गये। उन्होंने कोई प्रतिरोध नहीं किया। उनका शरीर एक दम कमल सा कोमल हो गया था।

हाथी बुलाया गया। कबीर उसके सामने डाल दिये गये। महावत ने शूल मारा। शूल लगते ही हाथी चिग्घाड़ा। चिल्लाया। जोर से छटपटाया। उसने रस्सी में बँधे सन्त को रस्सी समेत उठा लिया। आगे बढ़ा। भीड़ में भय समा गया। देखें क्या करता है? हाथी शेख तक़ी की ओर बढ़ने लगा। तकी भी घबराया। वह चिल्लाया महावत, रोको। हाथी को रोको। यह अपना काम नहीं कर रहा है। लगता है इस पर तुम्हारा वश नहीं है।

महावत ने हाथी को कोई आवाज लगाई। किन्तु हाथी ने उसका एक नहीं सुना। वह भीड़ की ओर बढ़ता जा रहा था। भीड़ हटती जा रही थी। जैसे बड़ी नाव तरंगों के बीच बढ़ती है। पानी को चीरती चलती है।

तक़ी और बादशाह घबराये। किन्तु हाथी रुक नहीं रहा था। उसने सन्त को बड़े जोर से तकी पर रख दिया। रख क्या फेंक दिया। तकी घबराकर मंचिका से लुढ़क गया। उसे मूर्छा आ गयी।

महावत ने दूसरा शूल मारा। हाथी चिल्लाकर लौट पड़ा। उसके घूमते ही भीड़ कुचलने लगी। भारी भगदड़ मच गयी।

थोड़ी देर में लोगों ने देखा वहाँ कोई नहीं है। केवल संत हैं। पद्मासन में बैठे। निर्भय। निर्विकार।

यह शेख तकी का अन्तिम प्रयास था। पिछले दो प्रयासों में वे साक्षी नहीं थे। उन्हें सन्त की महत्ता का स्पष्ट ज्ञान हुआ। तकी डरे भी कहीं बादशाह मुझे छोड़ न दे। कबीर को गुरु बना ले।

शेख तकी का मन विकारों का घर था। विकारी मन तेज दौड़ता है। वह सोचने लगा। अगर बादशाह ने कबीर को गुरु बना लिया तो क्या होगा? उसे क्या करना चाहिए?

शेख ने एकांत चाहा। सन्त से मिलकर माफी माँगे। प्रार्थना करे। बादशाह उसकी रोजी रोटी है। उसे रोजी रोटी से वंचित न करें। उसे अपनी करनी का अफसोस है। किन्तु उसे अवसर नहीं मिला। सन्त ने उसे माफीनामे का अवसर न देकर भी माफ कर दिया। इसलिये कि सन्त का काम लड़ना नहीं, सहना है। लड़ाई तो वह अपने विकारों से करता है। माया, ममता और अहंता से करता है। सन्त की शान्ति ने लोगों को और भी प्रभावित किया। लोग सन्त कबीर की जय बोलने लगे। उनका प्रचार और बढ़ गया। चारों तरफ के लोग उनकी शरण में आने लगे।

बादशाह को खबर गयी। सन्त को मत सताइये। यह मनुष्य के मारे नहीं मरेगा। लोकाँ मरै सन्त जन जीवै। सन्त को मारने की कोशिश संसार में कहर लायेगा। सन्त के आस-पास लोगों की भीड़ बढ़ने लगी।

बादशाह के कर्मचारी रोकना चाहते थे। किन्तु कोई रुकने को तैयार न था।

हिन्दू कबीर को अवतार मान रहे थे। म्लेच्छों का नाश करने के लिये स्वयं प्रभु ने अवतार लिया है। देखते नहीं। हर रोज कितनी गायें कटतीं हैं। म्लेच्छ मानते नहीं। गौ माता ने भगवान से प्रार्थना की है। म्लेच्छों से धरती का उद्धार करो प्रभु।

म्लेच्छ भी मारे जायेंगे। शाक्तों का भी नाश होगा। दोनों हिंसा करते हैं। पांडे भी कसाई है। उसे केवल छुआछूत की चिंता है। छुआछूत को ही अपना धर्म समझता हैं। शूद्रों, जुलाहों, जोगियों, कोरियों आदि का अपमान करता है। हाथ से काम करने वालों को नीच समझता है। सन्त रामजी के भक्त हैं। सबको राम मन्त्र देते हैं।

बादशाह सिकन्दर लोदी और उसका गुरु शेख तकी सन्त से डरने लगा है। तकी तो भाग गया। अब धर्मपरिवर्त्तन का नाम नहीं लेगा। धर्मपरिवर्त्तन से साहब को चिढ़ है।

सन्त को मारने की कोशिश हुई। सन्त बच गए।

इस बात ने हिन्दू जनता में नया आत्म विश्वास पैदा किया। हजारों लाखों लोगों ने सन्त को घेर लिया। राम मन्त्र लेने वालों की भीड़ लग गयी। कितना सरल रास्ता है। न किताब की झंझट। न पंडे-पुरोहित की खुशामद। घर बैठे राम-राम जपो। थोड़ा ध्यान। सत्संग। बाकी समय अपना धन्धा। कोई धन्धा बुरा नहीं है। बुरा है छुआछूत। किसी को नीच-ऊँच समझना। संसार एक चादर है। इसे जतन से ओढ़ना है। काम, क्रोध, लोभ, मोह से यह मैली न हो जाय। मैले को भगवान नहीं मिलते। सात्विक प्रभु को स्वच्छता पसंद है। घर बाहर सबको स्वच्छ रखो प्रभु मिलेंगे।

भीड़ अत्यन्त उत्साह में थी। इसी भीड़ में हिन्दू भी थे। मुसलमान भी थे। यह भीड़ आक्रामक थी। वर्षों की कुंठा टूटी थी। लोग मन्दिरों पर कब्जा करना चाहते थे। मस्जिदें अधिकार में लेना चाहते थे। किन्तु सन्त ने अनुमति नहीं दी। हमें मन्दिर मस्जिद से कोई मतलब नहीं। राम को अपने भीतर देखो। मन्दिर मस्जिद के झगड़े में मत पड़ो। भक्त युद्ध नहीं प्रेम करता है। प्रेम से भगवान मिलते हैं। प्रेम ही पुरुषार्थ है। नारद, शुकदेव आदि ने यही कहा है। मन्दिर तोड़ना पाप है। मस्जिद तोड़ना भी पाप है। बिना तोड़े दोनों से अलग प्रभु की खोज करनी चाहिए। मन ही मन्दिर है। मस्जिद है। इसी में साहब को खोजो।

भीड़ सन्त की जय जयकार कर रही थी।

पंडे-पुरोहित, काजी, मौलवी, मुल्ला सब दुबके थे। सब में हिंसा का भय व्याप्त था। वैष्णव वैरागी भयानक होते हैं। किन्तु सन्त कबीर ने उसमें भी संशोधन किया। क्रोध को अक्रोध से जीतो। निर्वैर, निहकामता साधु धर्म है। भगवान सब में है। इसलिए सबसे प्रेम करना चाहिए। किसी को मारना, सताना, हिंसा करना साहब को मारना, सताना और हिंसा करना है। जीव हिंसा करने वाला दोजख जाता है।

तकी की हार की खबर सारे देश में फैल गयी। दूर-दूर के सन्त महात्मा कबीर का दर्शन करने आने लगे। अब लोग उन्हें कबीर साहब कहने लगे। साहब के बिना तकी पराजित नहीं हो सकता था। तकी के विरोधी ताली पीट रहे थे। तकी का कहीं पता नहीं। पता नहीं है भी या कहीं चला गया? खुदकशी भी कर सकता है। किन्तु इतना हयादार नहीं है। अवतारियों ने घोषणा की। भगवान का अवतार हो गया है। लोगों ने देखा दिव्य ज्योति उतर कर कबीर में समा रही है। कबीर साहब नित्य ही प्रभु से बात करते हैं। संसार के बहुत से कार्य उनकी इच्छा से ही होते हैं। स्वयं भगवान उनसे मिलने आते हैं। उनसे सलाह लेते हैं। जो कहते हैं वही करते हैं। जिस दिन कबीर नहीं मिलते प्रभु बेचैन रहते हैं।

जीवों में मनुष्य शायद सबसे स्वार्थी जीव है। जब से उसने महात्मा कबीर की महत्ता के बारे में सुना है उसका लोभ-मोह जग गया है। कबीर साहब की आध्यात्मिकता से उसे कुछ लेना-देना नहीं। वह मात्र उनके चमत्कारों से प्रभावित है। उनकी पूजा करता है इसलिये नहीं कि इससे उसकी आत्मिक उन्नति हो। बल्कि इसलिये कि इसी संसार में उसे कुछ मिल जाय। उसके लोभ मोह की पूर्ति हो।

किसी को धन चाहिए। किसी को पुत्र, किसी को सुन्दर स्त्री। किसी का जानवर खो गया है। कोई बीमार है, आँखों से दीखता नहीं है। कानों ने जबाब दे दिया है। दुश्मनों से घिरा है। मिर्गी आती है। लकवे का रोगी है। बहू वंध्या है। बेटा भाग गया है। व्यापार में घाटा लगा है। ऐसी जाने कितनी आवश्यकताएँ हैं। कबीर सबकी पूर्ति करें। कभी-कभी परस्पद विरोधी लोग आते हैं। मरने वाला भी। मारनेवाला भी। एक बदला लेना चाहता है। दूसरा बचना चाहता है। ऐसे में कोई क्या करेगा? घोर से घोर अपराधी पाप पापी का प्रायश्चित्त नहीं करना चाहते। चाहते हैं साहब की कृपा हो जाय छूट जायें।

कबीर साहब ऐसे लोगों से परेशान हैं। ऐसे लोग सत्संग में भी जमा होते हैं। बड़ी भक्ति दिखाते हैं। सत्संग करते हैं। चावल, दाल, कपड़ा, मिठाई,

फल आदि लेकर आते हैं। साहब प्रसन्न होंगे। आशीर्वाद देंगे। मनोकामना पूरी करेंगे।

लोग लम्बा नमस्कार करते। दंडवत में भक्ति दिखाते। किन्तु आँखों में लालच और वाणी में माँग होती।

सन्त क्या करें ? इस बढ़ती भीड़ को क्या जवाब दें ? किसी भी सन्त का काम प्रभु के शासन में विघ्न बनना नहीं है। संसार अपनी चाल से चलता है। भगवान स्वयं विषमता वाला है। दुख-सुख दोनों उसी के बनाये हैं। दोनों का आधार जीव हैं। दोनों जीव में ही अपना खेल दिखाते हैं। स्वयं भु क्रीडाशील है। सुख-दुख के गुल्ली और डंडे से खेलता है। कभी फेंकता है। कभी खींचता है। कभी स्थिर नहीं रहता। देखने में जो स्थिर हैं वह सब वैसा ही है जैसे गाड़ी के यात्री। बैठे हैं, सोऐ हैं, खड़े हैं। फिर भी चल रहे हैं। अपने-अपने स्थान हैं। जहाँ पहुँचना है। लौटकर वहीं पहुँचना है जहाँ से चले थे। वह सर्वशक्तिमान सबको चला रहा है। दोलित किये हैं। झूले सा जाता है। आता है। वही फैलाता है। समेटता है। कोई भी साधु, सन्त, ऋषि इसे बदल नहीं सकता।

सन्त महात्मा का काम सृष्टि बदलना नहीं, इस यात्रा को संतुष्ट, सुखी और आनन्दित करना है। सुख-दुख दोनों में प्रसन्न रहने, स्थिरचित्त रहने की कला सिखलाना है। उस परमपिता की रचना का रहस्य समझाना है। उसके पास रहने का साधन बताना है। चित्त के विकारों को निकालकर संसार यात्रा को सुन्दर और मंगलमय बनाना है।

धीरे-धीरे स्वार्थी भीड़ कम होने लगी। सन्त ने उन्हें निराश किया। यहाँ भोग के लिए नहीं योग के लिए आओ। घर बसाने नहीं, उन्हें उजाड़ने आओ। संसारिक घर चार दिनों का है। असली घर दूर है। संसार घर में लुकाठी लगा दो। जो यह घर जला सकता है वही हमारे साथ आ सकता है। यह वासना, काम, क्रोध, लोभ, मोह का घर हैं। साँई का घर प्रेम का है। प्रेमघर खालाके

घर से अलग है। प्रेमघर में प्रवेश के लिये सिर उतारना होता है। जो अपना शीश उतार कर भूमि पर रख सकता है वही प्रेम घर में पहुँच सकता है।

सन्त की बानी में इतनी स्पष्टता और साधना का सरल स्पर्श था कि धीरे-धीरे उनके पास सभी लोग जुटने लगे। उनका पन्थ बढ़ने लगा।

आज योगिनी पुनः आयी। वह बिल्कुल बदली थी। शान्त। सौम्य। त्रिशूल छोड़ दिया था। एक सामान्य दंड लिये थी। आँखों में स्वाभाविक रंग आ गया था। उसने सन्त को बताया। अब वह स्वस्थ है। इधर वहुत दिनों तक हरद्वार में थी। मिट्टी लगाना। गंगा स्नान करना। यही दो कार्य थे। हरद्वार में गंगा स्नान करने वालों ने तुम्हारी विजय की चर्चा की। वे सब प्रसन्न थे। जैसे राणा साँगा ने बाबर को जीत लिया हो। मुझे भी प्रसन्नता हुई। चिन्ता भी हुई। तुम लोई को छोड़ न दो। ख्याति आदमी को पागल बना देती है। चरम उपलब्धि के क्षणों में ही पतन का भय रहता है। ऊँचे चढ़े को गिरने की शंका रहती है। यश के शिखर पर पहुँचकर लोग पुराने साथियों को भूल जाते हैं। अल्प काल के लिये आया अधिकार सुख भी मोह पैदा करता है। वुलबुले को दुनिया सत्य लगने लगती है।

लोई भी प्रसन्न है। लोग यही समझते हैं कि वह तुम्हारी पत्नी है। हम दोनों को यह भ्रम सुख देता है। इससे तुम्हारी साधना पर कोई असर पड़ने वाला नहीं है। शरीर से मैं अब पूर्ण स्वस्थ हूँ। किन्तु मन बेचैन रहता है। मेरा जीवन बेकार है। गृहस्थ न बन सकी। संन्यासी का हाल बता चुकी हूँ। संन्यासी गृहस्थों से भी अधिक कामी हैं। लोभी हैं। वे देह व्यापार चाहते हैं। किन्तु छिपकर। अच्छा से अच्छा भोजन वस्त्र चाहते हैं किन्तु आश्रम में रहकर। भगवान प्रसाद कहकर। इस संन्यास से क्या फायदा?

मैं अब इस जीवन का अन्त कर देना चाहती हूँ। मुझे यह जीवन निरथक लगता है। निरर्थक जीवन को समाप्त कर देना भी साधु धर्म है। सच्चे साधुओं ने यही किया है। अच्छा, मैं चली। प्रभु तुम्हें यशस्वी बनाएँ। मैं शीघ्र ही भवसागर को पार करूँगी।

अन्तिम बार तुमसे मिल लेना चाहती थी। साव पूरी हो गयी। जोगिनी की आँखें भर आयीं। वह तेजो से मुड़कर चली गई। तीन दिन बाद लोगों ने सुना। एक अधेड़ संन्यासिनी की लाश गंगा में उतरा रही थी। उड़ती खबर सन्त के पास भी पहुँची। वे गम्भीर हो गये। उस दिन रामधुन में उनका स्वर काँप रहा था। आँखों में नमी थी।

सन्त कबीर अपने करघे पर अभी बैठे थे। सूत सुलझा रहे थे। तब तक एक स्त्री दौड़ी आई। बचाओ बाबा, बचाओ। तुम्हीं कुछ कर सकते हो। मेरा बेटा घर छोड़कर भागा जा रहा है। अकेला लड़का है। अभी पिछले साल ही उसका विवाह किया है। रात में बाप से कुछ कहासुनी हो गयी। कहता है मैं 'साधू' हो जाऊँगा।

भला इसमें घर छोड़ने की क्या जरूरत है? मैंने कहा महात्मा कबीर जी तो घर में ही तपस्या करते हैं। तुम कौन 'साधू' होगे? क्या तुम उनसे बड़ा 'साधू' बनोगे?

इस पर उसने एक और बुरी बात कही। वह हमको धमकाते हुए बोला 'हम कासी करवत लेंगे। बिना शरीर सुखाए मुकुति नहीं मिलती है।' और भी बहुत सा अंडबंड बकता है।

काशी करवत सुनकर मेरा रोयाँ काँप रहा है। संन्यासी तो कभी लौट भी सकता है। किन्तु काशी करवत''''। हे भगवान्, शरीर को चिरवाना कौन सा धरम है? शरीर चिरवाना ही था तो विवाह क्यों किया? आखिर आप भी तो घर गृहस्थी वाले हैं।

'घर गृहस्थी' सुनकर सन्त जी चौंके। किन्तु मौन रहे। केवल सुनते रहे। उन्हें समझते देर नहीं लगी। यह स्त्री क्या कह रही है? किस बात का संकेत कर रही है?

स्त्री रोने लगी। महाराज। बड़ा उपकार होगा। मेरा तो घर ही उजड़ जायेगा। बड़ा जिद्दी है। वह किसी की बात नहीं मानता है। बहू से तो जैसे

उसे चिढ़ है। सोने सी वहू। लक्ष्मी वहू। लोग ऐसी बहू के लिये तरसते हैं। कहते हैं कोई गोसाईं है जिसने इसको कोई मन्त्र दिया है। नमक पढ़कर खिला दिया। वह गोसाईं के वश में है। गोसाइयों का तो यह धन्धा ही है। दूसरों के लड़कों को फुसला लेते हैं। गीत गवाते हैं। भीख मँगवाते हैं। स्त्री रोए जा रही थी। सन्त शान्त थे। उन्होंने मुँह उठाया—अभी वह कहाँ है?

स्त्री ने उत्तर दिया—उसी गोसाईं का इन्तजार कर रहा है। शायद वह आये।

नहीं, नहीं। वह आएगा नहीं। किसी को भेजेगा।

संत ने स्त्री को वापस जाने को कहा। एक शिष्य को भेजा। उसके बेटे की टोह ले। क्या करता है? कहाँ जाता है? हो सके तो उसे हमारे पास ले आए।

शिष्य को शीघ्र ही सफलता मिली। युवक संत के सामने उपस्थित हुआ। पहले तो उसने कुछ उद्धत व्यवहार किया। किन्तु शीघ्र ही शान्त हो गया। संत के मौन ने उसे प्रभावित किया। उसे यह भी नहीं बताया कि उसकी माँ आई थी। उससे सहानुभूति दिखायी। उसकी समस्याओं की जानकारी ली। दो-एक आध्यात्मिक चर्चा की। दूसरे दिन पुनः मिलने को कहा। युवक में क्रोध था। परिवार से निराशा। संसार की नश्वरता का गलत अर्थ। घोर निराशा में वह प्राण देना चाहता था।

युवक शान्त होकर चला गया।

दूसरे दिन पुनः आया। संत ने उससे पूछा—क्या तुम जोगी होना चाहते हो? युवक नें हामी भरी। मैं मृत्यु को जीतना चाहता हूँ।

संत मुस्काये। ठीक कहते हो। मृत्यु को अवश्य जीतना चाहिए। किन्तु मृत्यु मृत्यु से नहीं, मृत्यु जीवन से जीती जाती है। जोगी नहीं मरता। यह जोग घर में भी हो सकता है। कासी करवत पागलपन के सिवा कुछ नहीं है। शरीर को कष्ट देने से मुक्ति नहीं मिलती है। मुक्ति ईश्वर सेवा में है। गन्दा मन जंगल में भी बँधा है। स्वच्छ मन घर में भी मुक्त है।

मन को मूड़ो। बाल मूड़ने से कुछ नहीं होगा। मन ही विकारों का खजाना है।

युवक पर संत की बातों का असर हुआ। वह उनका शिष्य बन गया। उसका पूरा परिवार कबीरपंथी हो गया।

कबीरपंथ के आरम्भ की यह पहली घटना थी।

बौद्ध, जैनी, योगी, वैदिक, वेदांती, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, मुसलमान सभी आते। संत की बातें सुनते। संत सभी धर्मों की कमजोरियाँ बताते। उनकी कथनी और करनी का अन्तर कहते।

संत की वाणी में फक्कड़ योगी की फटकार होती। रहस्य होता। आत्म चैतन्य का सहज अन्दाज होता। सधुक्कड़ी भाषा अटपटी तो होती। किन्तु साधना से सरस होती। सब मन का आपा खोल देती। लोग उस मनोभूमि में पहुँचते जहाँ सबका जाना कठिन है। संन्त कुछ बातें उलटवाँसियों में कहते। उलटवाँसियाँ समझने में देर लगतीं। किन्तु समझने पर मन पर सीधा असर करतीं। हिरदा को बेधतीं।

गाँव की स्त्रियाँ संत के पास आतीं। बाबा कोई गंडा, कोई ताबीज, कोई भभूत दे दो। पानी, भभूत, नमक पढ़ दो। कुछ करो। बीमार गाय ठीक हो जाय। बच्चे को नजर लग गयी है। जरा झाड़-फूंक दो। गाँव में भूतों ने उपद्रव मचा रखा है। कभी आग लग जाती है। कभी असमय की आँधी आती है। बीमारियों की तो पूछो मत। कभी हैजा, कभी माता (चेचक), कभी जड़ैया (मलेरिया)। गाँवों में हवा समा गयी है। कुछ न कुछ उपद्रव होते रहते हैं। रात-रात भर कुत्ते भूंकते हैं। सियार रोते हैं। रोशनी दौड़ती है। रात में अचानक आकाश लाल हो जाता है। लाल, लाल, लाल।

अजीब हाल है। लोग शरीर को पाप का मूल समझते हैं। अरे भाई, यही धर्म का मूल भी है। असल तो है तुम करना क्या चाहते हो? बँधना चाहते हो या मुक्त होना? मुक्ति चाहते हो शरीर को भी मुक्त कर दो।

उसकी जरूरतें बहुत थोड़ी हैं। वह बहुत थोड़ा लेकर संतोष से रह सकता है। उसे कोई इच्छा नहीं होती। इच्छा मन को होती है। मन शरीर के पाँच कुसंगियों को भड़काता है। खुद बिगड़ता है। उन्हें भी बिगाड़ता है। इस मन को मारो। मन शरीर में है। इसे शरीर में ही घेरो। मनरूपी मतवाले हाथी को भक्ति का अंकुश दे दे कर ठीक रखो—

मैमंता मन मारि रे, घट ही माँही घेरि।
जब ही चाले पीठि दे, अंकुस दे दे फेरि॥

लेकिन लोग हैं कि मन को मारते नहीं। केवल शरीर सुखाते हैं। कोई खड़ा है, खड़सेरी बाबा बना है। कोई पेड़ से लटका, लटका बाबा कहलाता। कोई जटा बढ़ाकर जटिल बाबा कहलाता है। कोई नंगा घूमता है, नागा है। किसी ने जीभ में काठ लगा रखा है, काठ जिम्भा कहलाता है। कोई आरे से चिरवाता है। कोई अजगर सा पड़ा रहता है। अजगरी बाबा कहाता है। कोई जाड़ा, गर्मी, बरसात हर मौसम में नंगा में रहता है। कोई खाली सतुआ पीकर सतुआ बाबा नाम रखे है। कोई केवल कच्चा खाकर कच्चा बाबा है। कोई जीव हिंसा के डर से जमीन बुहारते चलता है। कोई लोटा बाबा है। कोई करपाती है। कोई कमली, कोई पयहारी, कोई फलहारी। जाने कितने प्रकार के साधु हैं।

भला इन सब से क्या होनेवाला है। इन साधनाओं से माया तो भागेगी नहीं। हाँ, ढोंग बढ़ रहा है। तटों को सुखाने से नदीं नहीं सूखती है। वह अपनी गति में चलती रहती है। सूखी नदी को देखो। ऊपर से सूखी। रसहीन। किन्तु बालू हटाया कि पानी निकल आता है। ऐसी ही स्थिति है मन की। मन के जाने कितने पर्त है। अनेक कोठे हैं। कोठे पर कोठे। वे कोठे भीतर ही भीतर अपना काम करते हैं। मन की तिसना और बढ़ती जाती है। इसलिये मन को ही पकड़ो। मारने की कोशिश करो। संसार में मन ही बन्धन मोच्छ का कारण है। विकार शरीर में नहीं मन में बसता है। लेकिन लोग हैं कि शरीर को सुखाते हैं। मन को कोई नहीं सुखाता।

संन्यास का सम्बन्ध ज्ञान से होना चाहिए। सहज विराग से होना चाहिए। युवक के संन्यास में कहीं न कहीं क्रोध, लोभ, मोह आदि वासना की विफलता है। वासना पूरी नहीं हुई। संन्यास ले लिया। घर से निकल गए। स्थिरता आते ही मन भागने लगता है। वासना घेरती है। तिसना और बढ़ जाती है। ऐसे साधुओं से ही साधु समाज पतित होता है। गिरता है। इससे तो गिरही भले हैं।

लगता है जैसे आसमान टूटेगा। अंगार बरसेगा। आग का पहाड़ गिरेगा। ऐसा कुछ होता नहीं। किन्तु गाँव में दहशत फैल जाती है। लोगों का सोना मुश्किल हो जाता है। सारा गाँव दुबका रहता है। कौन बोले ? कौन निकले ? किसकी जान भारी है ? किसुना कहार का जवान बेटा बड़ा बदमाश था। कहा हम निकलेंगे। निकल गया। कहना पड़ेगा उसके साहस को। माँ ने रोका। बाप ने रोका। मेहरारू ने अँकबार लिया। घंटों लिपटी रही। छोड़ा ही नहीं। रोती रही। मनाती रही। मत जाओ। तुम्हारे पैर पड़ती हूँ। वह रुका नहीं। उस अँधेरे में समूचा गाँव घूमने लगा। कहीं कुछ नहीं पाया। किन्तु थोड़ी देर में बच्चू को भागना पड़ा। जान लेके भागे। कहते हैं भूत ने उसके गाल पर तमाचा मारा। हदस गया। घर आते-आते गिर गया। फिर उठते न बना। बेवा मेहरारू घर में रो रही है। किसुना ओर उसकी औरत रोते-रोते अन्धे हो गये।

सन्त केवल राम नाम का उपदेश करते हैं। भूत, प्रेत, जिन आदि माया के भय हैं। राम भगत के पास ये कभी नहीं आते। माया भक्तों की चेरी है। केवल राम ही हमारा उद्धार करेंगे। राम की शरण में आओ। राम नाम सुनते ही भूतों के सात पुरखे भागते हैं। इसलिये भूत वहीं रहते हैं जहाँ राम नाम नहीं है। राम नाम के सामने भय और भूत दोनों नहीं टिक सकते हैं।

सन्त की बातों का प्रभाव पड़ रहा है। इसलिये नहीं कि सन्त बड़े तार्किक हैं। श्रुति, स्मृति और शास्त्र की बात करते हैं। आगम, निगम, पुराण बताते हैं। तर्क और शास्त्र जनता को चुप करा देते हैं। किन्तु सन्तोष नहीं दे सकते हैं।

सन्त की वाणी और व्यक्तित्व में जादू है। वही जादू प्रभावित करता है। जादू क्या है ? यह तो ठीक-ठीक जादूगर भी नहीं बता सकता है। किन्तु उनकी वाणी बिना किसी अलंकार, रस और छन्द के सीधे हिया वेधती है।

लगता है सन्त ने कोई और दुनिया देख ली है। तीर्थ यात्रा या विदेश से लौटे व्यक्ति के यात्रा विवरणों, अनुभवों, वहाँ की हलचलों आदि को सुनने के लिए लोग दौड़ते हैं। गोष्ठियाँ और सभा आयोजित करते हैं। परदेश गमन की इच्छा होती है। हम जानना चाहते हैं। कैसे गये ? क्या किया ? क्या पाया ? हमें भी रास्ता बताइए। सन्त ऐसे ही परदेश का अनुभव बताते हैं। वे किताब लेखी नहीं, आँखिन देखी कहते हैं। सचमुच लगता है सन्त कुछ वह कहते हैं जो किताबों में नहीं है। पुराण, कुरान और शास्त्र ने नहीं है। जिसे शब्दों में नहीं बाँधा जा सकता है। जो पदार्थ नहीं है, वह पद में नहीं आ सकता है। शब्दों द्वारा नहीं कहा जा सकता। किन्तु जो नहीं कहा जा सकता है वही महत्वपूर्ण है। अनकहा का प्रभाव कहा से अधिक है।

सन्त का प्रभाव बढ़ने लगा। किन्तु सूर्य का प्रकाश बहुतों को अच्छा नहीं लगता है। ऐसे लोग सन्त के विरुद्ध प्रचार करते रहे। संगठन बनाने लगे। लोग मुसलमानों को समझाते कि कबीर काफिर है। हिन्दू है। हिन्दुओं में तो अधिकांश लोग सन्त को मुसलमान मानते हैं।

शेख तकी और बादशाह की हार के बाद मुसलमानों ने सन्त की उपेक्षा कर दी। कुछ-कुछ खुदा की कहर से डरते भी थे।

शाक्तों और शैवों का दल सन्त को फूटी आँखों नहीं देखना चाहता था। उसने एक दिन संगठित हमला कर दिया। काशी में नव दुर्गा के दर्शन का विधान है। सप्तमी की रात्रि में कुछ लोग विन्ध्यवासिनी का दर्शन कर लौटे थे। एक औघड़ कबीर साहब की लोक मान्यता से बहुत नाराज रहता था। उसने इन सबों को संगठित किया। बिना बुलाए एक भीड़ मिल गयी।

सन्त कबीर अपनी कुटिया में ध्यानस्थ थे। अष्टमी का प्रातःकाल। एक शिष्य हाँफता आया। उसने सद्गुरु के चरणों में प्रणाम किया। साहब जी

आप अघोर सोमेश्वर को जानते हैं। बड़ा दुष्ट है। आपके विरुद्ध प्रचार किया करता है। योगिनी की मृत्यु का कलंक भी आप पर ही लगाता है। आज वह लोगों को लेकर आ रहा है। क्या करेगा पता नहीं ?

सन्त मौन रहे। तब तक हल्ला होने लगा। काली माई की जय। भवानी माई की जय। ढोंगियों का नाश हो।

आते ही लोगों ने झोपड़े उजाड़ना प्रारम्भ किया। सन्त एक पत्थर के चबूतरे पर बैठ थे। उन्होंने जोर की आवाज लगायी। सोमेश्वर क्या करते हो ? क्या इस पद्धति से तुम्हारा आणवमल निकल सकता है ? मुक्त हो सकते हो ? जीव हिंसा, भक्ष्याभक्ष्य, अगम्यागमन का पाप तो था ही। अब परपीडन का पाप भी ले रहे हैं। मैं तो तुम्हें क्षमा कर दूंगा। किन्तु सद्गुरु किसी को क्षमा नहीं करता। इन उत्पातों को रोक दो। इससे प्रभु नाराज होंगे। तुम माया में फँसे हो। काली, दुर्गा, भवानी सब माया हैं। माया में फँसा व्यक्ति सदसद् का विवेक नहीं रख पाता है।

सोमेश्वर जोर से चिल्लाया—'ढोंगी है। ढोंगी। उसकी बात मत सुनना' किन्तु वह सन्त के सामने न आ सका। उसे सन्त से नजर मिलाने का साहस नहीं हुआ।

सोमेश्वर का दल उपद्रव करता रहा। आश्रम के शिष्य भाग कर गाँवों में चले गये। गाँव वाले दौड़ आये। वे सन्त को बड़ा प्यार करते थे। गाँव वालों को आता देख सोमेश्वर का दल सिर पर पैर रख कर भागा।

निर्भय, निर्विकार सन्त अपनी जगह पर बैठे रहे। ऐसे बवंडर प्रायः ही आते। आकर निकल जाते।

सन्त पर इन उपद्रवों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वे सभी धर्मों, संप्रदायों और संगठनों के बाह्याचार की आलोचना करते हैं। बिना किसी आडम्बर के प्रभु से जुड़ने का मार्ग बताते हैं। बाहर की अपेक्षा भीतर की शुद्धि पर जोर देते हैं।

एक दिन सन्त अपने शिष्यों के साथ घूम रहे थे। एक स्थान पर भीड़ लगी थी। लोग उनकी ओर देखने लगे। कुछ लोगों ने मुँह घुमा लिया। कुछ ने आदर से सलाम किया। पता लगा कि पीर की मजार पर दिए जलाये जा रहे हैं। चादरें चढ़ाई जा रही हैं। लोग अगरबत्तियाँ बाल रहे हैं। औरतें मन्नते मान रही हैं। किसी को बेटा चाहिए। किसी को बहू। कोई अपने शौहर को खुश करना चाहती है। कोई भयानक रोग की दवा चाहती है। मेला लगा था। कहीं पकौड़ियाँ बन रही हैं। कहीं जलेबियाँ उतर रही हैं। कोई सिरनी बाँट रहा है। बच्चे, बूढ़े, जवान, स्त्रियों से ठसाठस भरी जगह जन समुद्र बन गयी है।

सन्त ने अपने एक शिष्य को भेजा। देखो, ये कौन लोग हैं? क्या करते हैं?

शिष्य ज्ञाता था। उसे सद्गुरु के इस व्यवहार पर आश्चर्य हुआ। दुखी भी हुआ। प्रत्यक्ष है कि यहाँ सभी लोग मुसलमान हैं। स्त्री, बच्चे, बूढ़े, युवा सब मुसलमान। मजार की पूजा हो रही है। हर साल मेला लगता है। ऐसे तो रोज ही लोग यहाँ आते हैं। ताबीज, गंडा आदि लेते हैं। शायद कोई मुसलमान बालक हो जिसने तावीज़ नहीं बाँधा हो। हिन्दू भी आते हैं। पीर बाबा बड़े प्रभावशाली हैं। यहाँ हिन्दू मुसलमान में कोई भेद नहीं है। पीर सबको समान समझते हैं।

शिष्य ने दो-तीन शब्दों में सद्गुरु से निवेदन कर दिया। सन्त ने फिर आदेश दिया। जाकर पूछो कि हिन्दू पूजा और मुसलमान सिजदे में क्या अन्तर है? क्या यह मूर्ति पूजा नहीं है? हिन्दू भगवान का पत्थर पूजता है। मुसलमान मुर्दे का पत्थर पूजता है। है पत्थर पूजना ही। दोनों बाहर के पत्थर को पूजते हैं। नाशवान, जड़ को पूजते हैं। लोभ से पूजते हैं। लाभ के लिये पूजते हैं।

सन्त की बातें सुनकर भीड़ में सरसराहट फैली। औरतों ने कान मूंद लिये। या अल्लाह क्या बोलता है? किन्तु पुरुषों में कुछ लोग गुस्से में आ गए। सन्त आगे जा रहे थे। उनकी बात फैल गयी। उन्हें किसी से युद्ध नहीं

करना है । वे किसी भी झगड़े से बचते हैं । विचार की लड़ाई चले । देह की नहीं । देह युद्ध में विचार युद्ध मर जाता है । बिना विचार को मारे देह युद्ध नहीं हो सकता ।

भीड़ में किसी ने कहा—कबीरा पगला गया है । पागल की बात कोई मत सुनना । यह दोजख जायेगा । इस पर अल्लाह का कहर पड़ेगा ।

एक दिन सन्त के पास दो व्यक्ति आये । ऐसे व्यक्ति रोज ही आते हैं । किन्तु आज दोनों एक ही राह से एक ही समय आये । एक ने आकर साष्टांग दंडवत किया । दूसरा अत्यन्त झुककर हाथ को बार-बार माथे से लगाकर सलाम कर रहा था । स्पष्ट था कि एक हिन्दू है और दूसरा मुसलमान । हिन्दू के माथे पर भस्म और लाल चन्दन का टीका लगा था । लम्बी चुटिया बँधी थी । उसने राम-राम लिखी चादर ओढ़ रखी थी । पाँव में कोई पादत्राण न था । नंगे पैर आया था । कँधे में मोटा सफेद जनेऊ झूल रहा था । हाथ का कमंडल दूर रखकर सन्त के सामने आकर बैठ गया । लगता था गंगा स्नान कर विश्वनाथ का दर्शन करता आया है । धोती गन्दी किन्तु कहीं से फटी नहीं थी । लोगों की दृष्टि उधर ही गयी । जाना पहचान लग रहा था । फिर भी कोई कुछ बोला नहीं । सन्त ने उसे देख भर लिया ।

सन्त की आँखें स्थिर एकटक देख रही थीं । क्या देख रही थीं, पता नहीं । ऐसा अक्सर होता । लोग सन्त से बातें करना चाहते । कुछ सुनने को उदग्र रहते । और सन्त कहीं और रहते । देखकर भी नहीं देखते । कौन आया ? कौन गया ? क्या हो रहा है ? कुछ भी पता नहीं । वे वहाँ रहकर भी नहीं रहते । देखते । एकटक देखते । शायद संसार में प्रभु की लीला देखते । प्रभु के प्राणियों को देखते । किन्तु लोगों को अपूर्व शान्ति मिलती । बिना कुछ कहे बोले सन्त सबको कुछ देते थे । कुछ प्रत्यक्ष नहीं । कुछ ठोस नहीं । जिसे तौला, बाँधा, नापा या परखा नहीं जा सकता । किन्तु कुछ होता था । जो मन को सन्तुष्ट करता । हिया में शान्ति भरता । इसलिये तो लोग आते थे । वरना कौन कहाँ जाता है ?

मुसलमान साफ सुथरा लुंगी, कुर्त्ता और टोपी पहने था। विचित्र ढंग की टोपी। लोग उसे तुर्की टोपी कहते। उसने टोपी उतार कर साहब को सलाम किया था। एक किनारे बैठ गया। यह शहर के धनियों में एक था। दोनों की एक ही भूख है। साहब की दया चाहते हैं। उनकी रहमत हो जाय। हिन्दू ने उन्हें दयानिधान कहा। मुसलमान ने रहमते आलम समझा। ऐ रहमते आलम, इस बदनसीब पर मेहरबाँ हो। मैं तुम्हारा बन्दानबाज हूँ।

दोनों को धन चाहिए। नगर के अच्छे खाते पीते रईस होकर भी उन्हें सन्तोष न था। वे उन गरीबों की ओर देखने को तैयार न थे जिनके पास कुछ भी न था। किन्तु सब होकर भी ये सन्तुष्ट नहीं थे। वे बोले कुछ नहीं। किन्तु साहब इनकी अदा से, तर्ज से समझ गये। ऐसे लोग रोज आते। वे यहाँ भी अपने को विशिष्ट समझते। साहब से घनिष्ठ हो जाना चाहते। सबको हटाते बढ़ाते साहब के पास पहुँच जाते।

साहब ने कहा देख रहे हो। धन किसी को सन्तोष नहीं दे रहा है। कितना भी बटोरो सुख नहीं है। यह ओले का बटोर है। इकट्ठा करते-करते गल जाता है। बह जाता है। फिर खाली पानी रह जाता है। पानी सूख जाता है। क्या फायदा इस बटोर से ?

धन का आना दुख। जाना महादुख। कितनी मिहनत से बटोरा। अब उसके रखने की समस्या। जमा को बचाना मुश्किल। सैकड़ों दुश्मन हैं। धन सबके मन में विकार पैदा करता है। लूटने, डाका डालने, चुराने, मारने आदि की इच्छा करता है। कोई भी इस धन को ले नहीं जाता। जितनी बड़ी गठरी होगी बोझ उतना ही भारी होगा। बैल की तरह लादते-ढोते मर जाओगे। संसार में धन ही दुख का कारण है। धनहीन का कुछ देर तक अपमान अवश्य होता है। किन्तु वह अपमानों, आक्षेपों, व्यंग्यों और तानों की उपेक्षा कर सकता है। सुनकर अनसुना, देखकर अनदेखा कर सकता है। किन्तु धन की गठरी ढोने वाला यह नहीं समझता कि वह कर क्या रहा है ? इस गठरी ने उसे ही मार दिया है। तो बताओ, जब तुम्हीं नहीं तो तुम्हारा यह धन किस काम

का ? तुम्हें वह कौन सा सुख देगा ? केवल वह तुम्हें प्रभु से अलग करता है, किये है, करता रहेगा।

साहब की बातें सुनकर सभी ने शान्ति का अनुभव किया। हिन्दू हो या मुसलमान कहने को धर्म जुदा-जुदा है। किन्तु लालसा सबकी एक ही है। सब बटोरने के पीछे पागल हैं। बटोरने में, इकट्ठा करने में दोनों का धर्म एक हो जाता है। दोनों को धन से दूर रहने की सीख मिली है। कोई किसी को सताये नहीं। हड़पे नहीं। जिनके पास नहीं है उनकी मदद करे। किन्तु कौन सुनता है ? सबको जल्दी पड़ी है।

सभी साधु, महात्मा के पास स्वार्थ से जाते हैं। तब न कोई हिन्दू है, न मुसलमान। अरे भाई कौन सा धर्म है जो तुम्हें लूटने कहता है। लेकिन तुम तो किसी का सुनना ही नहीं चाहते। तुम्हारा भाई भूखा है। किन्तु तुम्हें अपच हो रहा। वह भूख से मरता है। तुम खा-खाकर बीमार हो। इस पर भी चाहते हो कि कोई साधु महात्मा तुम्हें और धन दे दे। मोटे को और मोटा करे। नतीजा क्या होगा ? तुम्हारी मुटाई दूसरों को दुबला रही है। इतना ही लो जितने से तुम जीवित रह सको। बेकार खाने से लाभ नहीं नुकसान होता है। जीभ को खुश करने से कोई फायदा नहीं है। जीभ की लालच में पड़कर तुम अपना भी नुकसान करते हो। दूसरों को भी दुख देते हो।

सन्त की बातों में सार था। वे तत्व की बातें कह रहे थे। किन्तु धन के लोभियों पर इसका कोई असर नहीं हुआ। वे निराश लौट गये। हिन्दू और मुसलमान ऐसे सन्त फकीर की खोज कर रहे थे जो उन्हें और धन दे। उनके अहंकार को बढ़ाए। सोना, चाँदी, हीरे, मोती से लाद दे। किन्तु सन्त कबीर तो ठीक इसके उल्टे थे। वे कहते भगवान की रहम गरीबों को मिलती है। जिसे वह अपनाता है उसका सब कुछ छीन लेता है। सर्वहारा और अकिंचन बना देता है। सन्त की ये बातें धनियों के गले नहीं उतरती थीं।

❁

गाँव गाँव की...

संत का यश बढ़ रहा था। भीड़ बढ़ रही थी। उधर गुरु का आदेश था। देशाटन। बहुत विलम्ब हो गया। जाना ही होगा। कोई पुकार रहा है। कोई कह रहा है। भीतर एक आवाज है। अपने अनुभूत सत्य को दूसरों को भी दो। जगत् को देखो। साधुओं की संगति करो। नाना प्रकार की साधनाएँ हैं। वैसे ही साधु हैं। साधु लेता है। सूप सा ग्रहण करता है। थोथा उड़ाता है। सार-सार को गहता है। संत इसी थोथा और सार के चक्कर में हैं।

उन्होंने यात्रा आरंभ की। कुछ ही चले होंगे। एक लाश आ रही थी। बाजा बज रहा था। लोग नाच रहे थे। गुलाल उड़ा रहे थे। अर्थी फूल-मालाओं से लदी थी। रंगविरंगे रेशमी वस्त्रों में लिपटी। ढकी। जैसे-जैसे अर्थी आगे बढ़ती लोग शामिल होते। भीड़ बढ़ती जाती।

लोगों ने बताया अवधूत रामगिरि की अचानक मृत्यु हो गयी। लगता है हृदयगति एकाएक रुक गई। साधना में कोई गड़बड़ी हो गयी। बड़े भारी साधक थे। सदाचारी। आचार निष्ठ।

लोग बड़े दुखी थे। दूर-दूर के शिष्य आ गए थे। अधिकांश का पूरा विश्वास था कि अवधूत की मृत्यु अस्वाभाविक है। अभी उनके मरने की उम्र न थी। किन्तु कोई उपाय न था। वैद्यों ने उनकी मृत्यु की घोषणा कर दी थी।

संत कबीर सब देख रहे थे। सब सुन रहे थे। अचानक उन्हें एक युक्ति सूझी। उन्होंने अपने एक शिष्य से कहा अर्थी रोको। मैं माला चढ़ाऊँगा। फूटे खपड़े का दर्शन करूँगा। हो सकता है योगी अभी गया न हो।

शिष्यों के कहने पर अर्थी धरती पर रखी गयी। लोगों ने देखा संत कबीर स्वयं उपस्थित हैं। भीड़ ने कोलाहल किया—'रामगिरि महाराज की जय' की आवाज आकाश फाड़ने लगी।

संत ने मुर्दे के माथे पर हाथ रखा। वे उत्साहित होकर बोले सारे बंधन खोल दो। अवधूत को अर्थी से हटाकर स्वच्छ स्थान में ले चलो। ये अभी मरे नहीं हैं। वैद्यों ने गलत समझा। ये अपनी योग क्रिया में हठयोग के कारण मरे लगते हैं। सारी नाड़ियाँ एक जगह समाहित हैं। संचालन रुका है। वायु की गति भी रोक दी गई। इसी से रक्त संचार भी बन्द हो गया। जड़ता आ गयी है। हठयोग में ऐसा हो जाता है। हठयोग तलवार की धारा पर दौड़ने जैसा है। कोई बिरला ही चल सकता है।

योगी ने आज सम्पूर्ण शक्ति त्रिकुटी में लगा दी। प्राणवायु को त्रिकुटी में समाहित कर दिया। वायु को चढ़ा तो दिया किन्तु उतार न सका। उतारता तो जी जाता। फिर से सामान्य बन जाता। स्वस्थ होकर घूमता-फिरता। हँसता-गाता। बातें करता। यहीं सद्‌गुरु की जरूरत होती है। सद्‌गुरु के अभाव में ही गिरि बंद गली में अटक गए। पहाड़ पर चढ़ तो गए। उतरने की राह भूल गए।

योग मुख्यतः शरीर साधना है। इन्द्रियों को वश में करने की प्रक्रिया है। चित्त की चंचलता को रोकने का तरीका है। इस तरीके में अनेक कठिनाइयाँ हैं। एक तो यह भीतरी प्रक्रिया है। जिस यंत्र को हम आँखों से देख नहीं सकते उसे चलाना है। यह वैसा ही है जैसे भीड़ भरी सड़क पर कोई सूरदास गाड़ी चलाए। गुरु कृपा से ही इसमें सफलता मिलती है। वरना रोगी होना, पागल होना और अन्त में मर जाना सामान्य बात है। त्रिकालदर्शी सद्‌गुरु सब जानते हैं। सब देखते हैं। कृपापूर्वक राह बताते हैं।

बड़ी साधना के बड़े खतरे हैं। तेज सवारी का झटका भी तेज होता है। इसीलिये बालक, वृद्ध और स्त्री शरीर को योग का विधान नहीं है।

मुर्दे के सारे बन्धन खोले गए। संत ने उसके मस्तक की किसी नस को खींचा। नाक पर हाथ रखा। कान तक मुँह ले गये। ललाट का स्पर्श किया। प्राणवायु को ब्रह्मांड से उतारा। कुंडलिनी क्रिया को ठीक किया।

योगी उठ बैठा। बोला क्या है? कैसी भीड़ है? सामने संत को पाकर प्रणाम किया। किन्तु जब उसे पूरी घटना का ज्ञान हुआ तो संत की शरण आया।

संत ने कहा—हठयोग छोड़ दो। योग नहीं प्रभु की शरणागति पर विश्वास करो। प्रभु ही प्राणियों का रक्षक है। योग में कर्म अहंकार है। भक्ति में समर्पण है। दास भाव है। सेवक-स्वामी भाव है। सेवक बनकर स्वामी की कृपा प्राप्त करो। वही तुम्हारी चिन्ता करेगा। जैसे पिंजड़े के पक्षी की चिंता मालिक करता है। प्रभु महायोगेश्वर है। सारे योग उसी से निकलते हैं। उसके सामने योग की बात मत करो। योग भी उसे समर्पित कर दो। उसे किसी साधन से पाने की कोशिश बेकार है। साधन भी नहीं। हम तुम भी नहीं। शून्य में पहुँचो। खाली हाथ। खाली मन। जहाँ सब कुछ खाली हुआ कि प्रभु आ विराजेगा। किन्तु साधन का एक कण रहते भी वह दूर रहेगा। साधन से प्रभु को पाने की कोशिश में अहंकार बढ़ता है। मालिक दूर होता चला जाता है।

अवधूत संत कबीर का शिष्य हो गया। उसने हठ योग छोड़ दिया। निष्काम एवं अहेतुकी भक्ति के लिए अपने को प्रभु के प्रति समर्पित कर दिया। समर्पण ही सेवा का मूल है।

कबीर पंथ में इस महात्मा का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। इन्होंने संत की गादी स्थापित की। हिंदू मुसलमान सभी संप्रदाय के लोगों में साहब की भक्ति का प्रचार किया।

संत आगे बढ़े। योगी उनके साथ जाना चाहते थे। संत ने आदेश दिया। यहीं ठहरो। प्राणियों के बीच बैठी माया को दूर करो। माया ही दुखों का कारण है। माया दुख है। दुख माया है। माया दुख को गुरु ग्यान से दर करो। गुरु ग्यान से माया भागती है। दुख भागता है।

मुर्दे को जिलाने की बात तेजी से फैल गयी। अनेक नगर सेठ, राजे-महराजे आदि ने आकर सन्त को घेर लिया। सबकी एक ही चिंता थी। धन

कैसे बढ़े ? किन्तु किसी ने सन्त से यह व्यक्त नहीं किया। ऐसा दिखाया जैसे वे सन्त के त्याग से प्रभावित हैं। सब सन्त बनना चाहते हैं। एकाएक संतई की हवा वह गयी है। धन निरर्थक है। सम्पत्ति का मोह व्यर्थ है। संसार मिथ्या है।

लोगों ने अपनी सारी सम्पत्ति मानो सन्त के चरणों पर चढ़ा दी। महात्मा जी कहीं मत जाओ। हमारा सौभाग्य है कि आप यहाँ हैं। जो कुछ की इच्छा हो हाजिर है। बड़े-बड़े मठ बनवा देता हूँ। शिष्यों सहित यहीं आराम करें। चावल, दाल घी, आटा, चीनी आदि किसी चीज की कमी नहीं होगी। ऊँटों बैलों, बैल गाड़ियों पर सामान लद-लद कर आने लगे। जिसे देखिए वही कुछ न कुछ लिये आ रहा था। भंडारा होगा। सन्तों, साधुओं को भोजन करा कर पुण्य होगा।

किन्तु सन्त ने कुछ भी लेने से इनकार कर दिया। मुझे कुछ नहीं चाहिए। मैं किसी का कुछ नहीं लेता। ये भोग के सामान हैं। सन्त इन सामानों में नहीं फँसता। मैंने जाने का निश्चय कर लिया है। जाऊँगा। यह कहकर सन्त आगे बढ़ गये। सेठों, साहूकारों, राजा, नवाबों का दल देखता रह गया। कैसा आदमी है ? धन की उपेक्षा करता है। लक्ष्मी को लात मारता है। भगवान बुद्ध भी सन्त थे। श्रेष्ठियों ने उनके लिये बड़े-बड़े संघाराम बनवाये। दान दिये। भिक्षु उनके धन से आराम की जिन्दगी जीते थे। गृहस्थी से अधिक सुख था। किन्तु यह कोई दूसरे प्रकार का संन्यासी है। स्त्री नहीं। धन नहीं। सेविका और भिक्षुणियों को अपने यहाँ स्थान नहीं देता है। सबको माया मानता है। सम्पन्न समुदाय निराश लौट आया। अपने-अपने घरों को चला गया।

सन्त की यात्रा पैदल थी। बहुत थोड़े से साधुओं को अपने साथ लिया।

बीच-बीच में लोग मिलते। स्वागत करते। रहने-ठहरने की प्रार्थना करते। सन्त यथायोग्य परितोष देते आगे बढ़ रहे थे।

उन्होंने जोनपुर नगर में प्रवेश किया। सम्पन्न नगर। गोमती द्वारा नित्य पखारी जाने वाली नगरी। पत्थरों की दीवारों पर चूने पुते थे। फूल बगीचों

में भौरों का गुंजार हो रहा था। नगर के कुछ भागों को चौड़ी खाई से घेर रखा था। जगह-जगह तालाब, पोखरा, बाँध, पुल आदि बने थे। चौड़े रास्ते, चौराहों पर कमलपत्र प्रमाण मत्त कुंजर कामिनियाँ घूम रही थीं। वे हर आंगतुक को बड़े ध्यान से देखतीं। दूकानों पर बड़ी संख्या में कपूर, कुंकुम, गन्ध, चामर, काजल और कपड़े बिक रहे थे। अधिकतर खरीदने वाले मुसलमान हैं। सुपारी की विशेष प्रकार से बनी कतरनें खैनी आदि लिये चले जा रहे हैं।

सारा शहर घोड़े, हाथियों से भरा है। रास्ता चलना मुश्किल। नगर में उपनगर भी है। तिमुहानी, चौमुहानी पर दुकानें सजी हैं।

हाट में आठों धातु के वर्त्तन बन रहे हैं। वर्त्तनों के बनाने वाले कँसेरे काँसे पर चोट कर रहे हैं। उनके क्रेंकार की आवाज़ें हो रही हैं। लोगों के पैरों की धूल से आकाश भर रहा है। सराफा, सोने का बाजार, पानदरीबा, मिठाई, मछली के बाजारों में भारी भीड़ इकट्ठी है। जन समुद्र उमड़ा है। मानो समुद्र गरज रहा हो। संसार की सभी चीजें बिक रही हैं।

भीड़ बढ़ती जा रही है। सिर से सिर टकराता है। तिलक छूट एक दूसरे के माथे में लग जाता है। वेश्याओं के चलने से यतियों को परेशानी होती है। नाना देश के व्यापारी सामान खरीद बेच रहे हैं। बनियों की स्त्रियाँ दुकानों पर बैठी ग्राहकों को बुलाती हैं। बातें करती हैं। लोग दृष्टि कौतूहल का लाभ लेते हैं। वाभन, कायथ, राजपूतों की भीड़ है।

राजपथ के पास वेश्याओं के घर हैं। इनके भवन स्वयं विश्वकर्मा द्वारा निर्मित हैं। बालों को सुगन्धित करने के लिये चंदनादि का धुआँ करती हैं। ये धुएँ आकाश तक फैले हैं। सभी दिशाएँ सुगन्ध से भर गयी हैं। स्त्रियाँ बालों को उभार-उभार कर बाँधती हैं। सभी युवती और सुन्दरी हैं। जूड़ों में सुगन्धित फूल बाँधती हैं। काले बालों में सफेद फूल अंधेरी रात में चन्द्रमा के प्रकाश को भी झूठा कर रहे हैं। कुछ लोग उनके आँचल की हवा को तरस रहे हैं।

बादशाह की सवारी देख सभी लोग शान्त हो जाते हैं। रास्ते के एक ओर खड़े हो जाते हैं।

कारिंदे भाँग खाते हैं। बात-बात पर लोगों से नाराज होते हैं। गालियाँ बकते हैं। नगर में जगह-जगह कब्र और मकबरे हैं।

सन्त ने स्पष्ट देखा। यहाँ लक्ष्मी का निवास है। सदाचार का स्थान धन को है। सभी प्रकार के ऐशों को है। किसी को प्रभु की चिंता नहीं है। ईश्वर क्या होता है ? यह कोई न तो जानता है। न जानने की चिन्ता है। ईश्वर का स्थान धन में नहीं है। ऐश्वर्य में नहीं है। वह तो दीनों के बीच रहता है। दीनों के वतन में रहता है। किन्तु यहाँ गरीब की कोई पूछ नहीं है। गरीब इस भीड़ में आने का साहस भी नहीं करते हैं।

सन्त बीच-बीच में सन्तों से मिल रहे थे। सत्संग ही उनकी तीर्थ पूजा और उपासना है। सन्त का मन ऊबा। वे सीधे पंजाब पहुँचे।

पंजाब में वे नानक देव जी से मिले। नानक देव जी ने इनका बड़ा आदर किया। सन्तप्रधान जैसा सम्मान किया। सन्त भी नानक देव जी से मिलकर प्रसन्न हुए। दोनों ने एक दूसरे को प्रभावित किया।

संत नानक पंजाब में निर्गुण मार्ग का प्रचार कर रहे। भोग के प्रति वैराग्य जगा रहे थे। भोग और ऐय्याशी ने लोगों को कायर और काहिल बना दिया था। उधर आततायियों के हमले हो रहे थे। नानक की मुख्य समस्या देश, समाज और संस्कृति की रक्षा थी। यह काम वैराग्य जगा कर ही हो सकता है। भोगों का बलिदान किये बिना देश रक्षा नहीं हो सकती है। कोई बड़ा काम नहीं हो सकता है।

संत कबीर ने देखा। संत नानक के कारण पूरे पंजाब में नयी चेतना फैल रही है। त्याग की शूरता पसर रही है। आपस के द्वन्द्व मिट रहे हैं, काम, क्रोध मिट रहे हैं। संत नानकदेव का आन्दोलन पूरे भारत के संत

आन्दोलन से सम्बद्ध था। इसीलिये बनारस के संत को अपने बीच पाकर उन्हें हार्दिक प्रसन्नता हुई। उन्होंने संत की बानियाँ सिक्खों से संग्रह करवाई। पंजाब की धरती में गुरुनानक ने निर्गुण भक्ति की जमीन तैयार कर दी थी। सन्त कबीर की बानियों का वहाँ गहरा प्रभाव पड़ा। बहुत से लोग उनके सिक्ख हो गये। पुनः एक बार बनारस और पंजाब का सम्बन्ध गहरा हो गया।

सद्‌गुरु कबीर की पंजाब यात्रा के स्मरणार्थ लोग बार-बार बनारस आते हैं। यहाँ की प्रेरणा लेते हैं। कबीर और नानक के प्रेम मार्ग और मिल्लत से सुख और सांत्वना पाते हैं। सत सिरी अकाल कह कर मानव मात्र के प्रति प्रेम व्यक्त करते हैं। पंजाब की यात्रा पूरी कर संत कश्मीर गये। उनके कश्मीर आगमन की खबर उनके पहुँचने के पूर्व आ चुकी थी। पूरी घाटी हलचल से भर गयी। लोग तैयारी में जुट गये। काशी के संत आ रहे हैं।

सन्त कश्मीर की सुषमा से प्रभावित हुए। मन बेचैन हो उठा। इतनी सुन्दरता। सूखती सुन्दरता है। पानी में जनमती है। पानी में बढ़ती है। पानी के बीच सूखती है। नलिनी कहाँ से सूखती है? क्यों और कैसे सूखती है? सब तो था ही। फिर क्यों सूखी? इतनी सम्पदा में भी शान्ति नहीं। कैसी भूख है जो जला रही है। भीतर-भीतर खोखला कर रही है। इसे किसका प्रेम सता रहा है? किस हेत से चंचल है? किसी परदेशी का नेह सता रहा है। कलियाँ पुकार रही हैं। कल हमारी बारी है। तरिवर डोल रहे हैं। पंखेरू भाग रहे हैं।

एक रमणी आ रही है। लाल, लाल, लाल। सेव सी लाल। सेव सी गठी। शरीर पर सूत भी नहीं है। श्याम आँखों में अनन्त अनुराग है। काले घुंघराले बालों ने सुन्दरता बिखेर दी है। कंधे और मुख पर फैले बाल डँसते हैं। कौन बचेगा? बर्फ की धरती और जम गई है। हवा जम गई है। पानी पत्थर बन गया है। आकाश थम गया है। फूलों की पंखुड़ियों को पाला मार गया है। केसर की मँहक रुक गयी है। हंस दुबक गये हैं। तैरना भूल गये हैं। इस ठंडक में नंगी स्त्री। कौन सी साधना है? कैसा तप है? बनजारे भाग

रहे हैं। कौन है यह नंगी औरत ? कहाँ जा रही है ? योगिनी पुनः आ गयी क्या ? इस बार नये रूप में आई है। यही तो उसका असली रूप है। वह मेरे सामने नंगी नहीं हो सकती। किन्तु उसकी इच्छा तो ' । कितना रोका होगा उसने अपने को ? जो कहना चाहती थी कह न सकी। अनुभूत सत्य को कहना बड़ा कठिन होता है। नहीं। ऐसा नहीं हो सकता। अब योगिनी कहाँ से आएगी ? वह तो मर चुकी है। उसने दूसरा जन्म लिया क्या ? काशी के बाद कश्मीर में ?

योगिनी के स्मरण ने सन्त को चंचल कर दिया। स्त्री जीवन कितना कठिन है। नीचे तपती है। ऊपर आग बरसती है। फागुन में पीली होती है। सावन में सूखती है। फिर भी विश्वास का अभाव है। कोई उस पर विश्वास नहीं करना चाहता। केवल भोगना चाहते हैं। भोगकर फेंक दो। जूठी प्याली सी उलट दो। लुढका दो।

कश्मीर की कवयित्री। सन्त से मिलने आयी है। क्या है यह तरीका मिलने का ? एक जुलाहे से ? जुलाहा बुनता है। अपने लिये बुनता है। सबके लिये बुनता है। झीना, गाढ़ा और मलमल बुनता है। किन्तु कवयित्री तो नंगी है। नग्नता की साधना कर रही है। उसे न झीना चाहिए। न गाढ़ा। न मलमल।

प्रकृति को ढको। शून्य भीतर है। बाहर का संसार नंगा नहीं रह सकता। नग्नों ने साधना की। क्या मिला ? बाहर नंगा। भीतर मरा। काम, क्रोध, मोह लपेटे।

नग्नता भी एक अहंकार है। त्याग का अहंकार। सब कुछ छोड़ने का दंभ। कौन छोड़ता है ? वही न जिसके पास कुछ है ? क्या है तुम्हारे पास जो तुम छोड़ेगा ? यह मैं ओर मेरा का विश्वास ही सबको पकड़े है। इसे छोड़ दो।

संन्यासिनी तुम भी मैं, मेरा की गिरफ्त में हो। आखिर तुम्हें छोड़ना ही था तो योनिद्वार को बालों से क्यों ढँक रखा है ? इसे भी छोड़ो। सब समर्पित कर दो। यह मन भी प्रभु का है। तन भी प्रभु का है। मन-तन दोनों

को प्रभु में रत करो। पंचतत की बाराती बनाओ । ऐ यौवनवती तुम अपना यह यौवन रामदेव को समर्पित करो।

कवयित्री घबड़ायी नहीं। वह इन प्रश्नों के लिये तैयार थी। उसने कहा— समर्पण की खोज में ही तो आयी हूँ। समर्पण के लिए गुरु चाहिए। गोविन्द चाहिए। बिना गुरु के न ज्ञान है। न गोविन्द।

कुछ भी ढँका नहीं है। किसके लिये ढँकूगी ? ढँकने का उद्देश्य किसी को देना है। मैं तो दे चुकी हूँ। ठीक कहते हो। यह मन तन दूसरे का है। सद्गुरु का है। जो ढँका है यह तुम्हारी आँखों को कष्ट से बचाने के लिये है। तुम्हारा चित्त विकृत न हो। मैंने कुछ भी ढँका नहीं है। ढँकने वाली चमड़ियों को उतार न सकी। बालों को हटा न सकी। तुम्हारे ये प्रश्न डराते हैं। तुम्हें भी डर है। डर को भाषा के छद्म से भरते हो।

जाती हूँ। समझ गयी। तुम स्त्री दीक्षा के अधिकारी नहीं हो। बस यही जानने आयी थी। बैकुंठ वासी का भक्त अभी पूर्ण विकुंठ नहीं हो पाया है। स्त्री के प्रति तुम्हारी कुंठा गयी नहीं। सहज साधना व्यर्थ है यदि मनुष्य स्त्री के प्रति सहज न हो सके। वह स्त्री को पालता है या मारता है। किन्तु सहज नहीं बन पाता है।

यह कहकर कववित्री आगे बढ़ गयी। उसके पीछे थी भीड़। सन्त ने कोई प्रतिक्रिया नहीं की। वे शान्त रहे। उन्हें इस प्रकार के समाजबहिः साधना में विश्वास नहीं था। समर्पण के लिये वस्त्र त्यागना आवश्यक नहीं है। समर्पण एक मनस् व्यापार है। अधिक वस्त्र भी आडम्बर है। वस्त्रहीनता का दूसरा आडम्बर है। सन्त को आडम्बर से विराग है। शरीर का आवरण नहीं। मन का आवरण हटाओ। मन मैला है। मैले मन से पिउ नहीं मिलता।

राजस्थान में नाथों ने उपद्रव शुरू कर दिया। नाथ तरह-तरह के करतब दिखाते थे। कोई कपड़े में आग लाकर दिखाता। कोई पानी की धार पर चलता। कोई हवा में तैरता। कोई अपने अंगों को काटकर अलग करता। फिर जोड़ देता।

सन्त की सभा में एक अजगर पहुँच गया। लोग भागने लगे। कुछ लोगों को उसने पकड़ लिया। निगलने लगा। लोग चिल्लाने लगे। रोना-पीटना मच गया।

सन्त समझ गये कि नाथों की माया है। उन्हें दया आयी। इतनी साधना। इतना परिश्रम। किन्तु माया नहीं छूटी। क्यों साधना? कैसी साधना? खुद भी माया के चक्कर में। दूसरे को भी माया दिखाना। बेचारे नाथों को पता नहीं। चमत्कार भक्ति नहीं है। ईश्वर चमत्कार से नहीं मिलता है। वह तो बालक है। बालक। निछल बालक।

किन्तु नाथ कब मानने वाले थे? आँधी आयी। आग बरसी। पानी गिरा।

बाढ़ आ गयी। सब डूबने लगा। भूकम्प के झटके आने लगे। घरों की दीवालें हिलने लगीं। वनस्पतियाँ काँपने लगीं। पक्षी चहचहाने लगे। कुत्ते, सियार आदि रोने लगे। घरों में बिल्लियाँ कूदने लगीं। चूहे गिर-गिर कर मरने लगे।

सन्त से उपद्रव देखा न गया। उन्होंने राममन्त्र से सबको शान्त किया। कुछ ही क्षणों में सारे उपद्रव पूर्व रूप में बदल गये। लोगों ने राहत की साँस ली।

सन्त ने नाथों को बुलाया। नाथ अनेक रूप बनाकर घूम रहे थे। किसी का सिर घोड़े का था। कोई नीचे से गदहा था। कोई कुत्ते सा भूंक रहा था।

कई नाथ सामने आये। सन्त ने कहा तुम्हारा आज भी सद्गुरु में विश्वास नहीं है। इसी चमत्कार के चक्कर में गुरु मच्छन्दर फँसे थे।

नाथों को यह कथा नहीं मालूम थी। उन्होंने कहा—क्या कहते हैं?

कहाँ फँसे थे मच्छन्दर नाथ?

सन्त समझ गये। मच्छंदर नाथ की कथा इनसे छिपायी गयी है। इसके खुलने से इनका कल्याण होगा। साम्प्रदायिक लोग अपनी कमजोरियाँ छिपाते हैं। भेद न खुले। लोग समझेंगे 'नाथों के आदि गुरु कैसे थे?'

उन्होंने कहा—सुनो। कुँआरी के भाई, सुनो। माया की एक कहानी सुनाता हूँ। मच्छन्दर नाथ जी सिद्ध पुरुष थे। उन्हें अपनी सिद्धई का घमंड भी था। लोग उनके दर्शनों के लिये लालायित रहते। जहाँ जाते भीड़ लग जाती। वे इस भीड़ में अपना चमत्कार दिखाते। लोगों के सरल मन पर अपनी सिद्धि की धाक जमाते। माया करते। करामातें दिखाते घूमते।

एक युवती समझ गयी। यह बाहरी साधु है। भीतर से शुद्ध नहीं है। उसने जाल फेंका। युवती का रूपजाल मच्छन्दर के जाल से बड़ा प्रमाणित हुआ। मच्छंदर नाथ उसके रूपजाल में फँस गये। उसने इन्हें बाँध कर कुएँ में डाल दिया। बेचारे वर्षों कुएँ में पड़े रहे। युवती के कुएँ में गिरे रहे।

गोरखनाथ को अपने गुरु के बन्धन की खबर लगी। वे कुएँ के किनारे पहुँचे। उस युवती से मिले। उसने वह कुआँ बता दिया। यह भी बताया कि अब उसने मच्छंदर नाथ को छोड़ दिया है। चाहो तो ले जाओ। अब उसका मन सुअच्छ रहेगा। बन्धन ने उसके सारे विकार नष्ट कर दिये।

गोरखनाथ ने अपने गुरु की दुर्दशा देखी। इतने बड़े साधक को एक युवती ने बाँध लिया। कुएँ में डाल दिया। जवानी के चुल्लू में डुबो दिया। उन्होंने कुएँ के पास जाकर आवाज लगायी—जाग मच्छंदर गोरख आया। दुखी और शर्मिन्दा मच्छंदर उठे। खड़े नहीं हुए। बोले—गोरख, मैं बाहर नहीं आ सकता। युवती के पास में बँधा हूँ। बाहुओं में जकड़ा हूँ। नीली आँखों के सागर में डूबा हूँ। मोह में जल रहा हूँ। काम से पागल हूँ।

मेरी साधना ने मुझे धोखा दिया। स्त्री को साथ कर कोई साधना नहीं हो सकती। मैंने स्त्री को साथ कर कामविजय चाहा था। किन्तु मैं हार गया। काम विजयी हुआ। काममन्दिर में काम को पराजित करने की भूल की थी बच्छ। कामकिला किसी भी राजा महाराजा और बादशाह के किले से कठोर है। सुखद है। किन्तु नाशकारी है। यह मुक्त बन्दी क्षेत्र है। जो एक बार आ गया वह चाहकर भी वापस नहीं जा सकता है।

अब तुम्हीं मुझे इससे मुक्ति दिला सकते हो। नाथ सम्प्रदाय तुम्हारे नाम से चलेगा। गुरु का उद्धार शिष्य करेगा। शिष्य और पुत्र से पराजय भाग्यशालियों को प्राप्त होती है।

गोरखनाथ नम्र हो गये। उन्हें याद आया। अभी कुछ दिन पहले उन्होंने कहा था—आफू खाइ भाँग भसकावै। ताका गोरख अकिल कहाँ से आवै ?

अफीम और भाँग साधना को नष्ट करते हैं। यह शक्ति नहीं। शक्तिनाश का कारण है। गुरु मत्स्येंद्रनाथ भी इसमें फँस गये थे। अफीम और भाँग खाकर ध्यान लगाने की प्रवृत्ति ठीक नहीं है। यह एक अप्राकृत पद्धति है। योगी को किसी की निन्दा नहीं करनी चाहिए। मद्य, मांस, स्त्री प्रसंग से दूर रहना चाहिए। अफीम और भाँग भी बुरे हैं। हर नशा बुरा है। केवल एक नशा रखो। प्रभु के प्रति समर्पण का नशा। उन्हीं के ध्यान धारण में मतवाला रहने का नशा।

गोरखनाथ के अनेक प्रयासों से मच्छन्दर नाथ कुएँ से निकले। निकलकर इधर नहीं आये। हिमालय चले गये। काफी दिनों तक हिमालय में साधना करने के बाद त्रिविष्टप पहुँचे। कहते हैं उनके अन्तिम दिन तिब्बत में ही बीते। वहाँ उन्होंने साधना की। अनेक ग्रन्थ रचे। नाथधर्म को हिमालय के शान्त प्रदेश में प्रसारित प्रचारित किया।

सन्त कबीर की बातें सुनकर नाथ उनके चरणों पर गिर गये। क्षमा माँगी। उन्होंने वैष्णवों की सहज साधना और प्रपत्ति भक्ति को स्वीकार कर लिया।

धीरे-धीरे पूरे पश्चिमी भारत के नाथों ने कबीर पंथ को स्वीकार लिया। शायद इसीलिये सद्गुरु ने अपने पंथ से योग को बाहर नहीं किया। नाम तो भक्ति योग था ही। व्यवहार में भी योग साधना को स्थान दिया। इसलिये भी कि सहज योग भक्ति मार्ग में बाधक नहीं साधक ही है। सहज योग समर्पण को सहज बनाता है। स्थायी रखता है। गिरने से बचाता है। भक्ति और योग का संबंध गाड़ी और लीक से है। योग रूपी लीक पर प्रपत्ति मूलक भक्ति सहज चलती है। अभय चलती है।

सद्‌गुरु आगे बढ़े। उनकी यात्रा गुर्जर प्रदेश में होने लगी। यहाँ की साधना पद्धतियों के बारे में उन्होंने सुना था। गुजरात में उस समय कांचलिया सम्प्रदाय की प्रसिद्धि थी। इसका प्रभाव गुजरात के बाहर भी था।

इस सम्प्रदाय में स्त्री-पुरुष की संयुक्त साधना थी। जितने पुरुष उतनी ही स्त्रियाँ। कोई भी साधक किसी भी साधिका के साथ साधना कर सकता था।

साधिकाएँ अपना कंचुक (चोली) उतार कर एक स्थान पर रखतीं थीं। एक साधक तास के पत्तों सा उन्हें मिला देता। पूजा, आरती और मन्त्रोच्चार होते। प्रसाद में तुलसी जल छोड़कर भोग लगता। हवन होते। प्रकाश बुझा दिया जाता। अँधेरे में प्रत्येक साधक उठता। एक चोली उठा लेता। चोलियाँ उठाने के बाद शंख बजता। प्रकाश में उस चोली की पहिचान होती। जिसकी कंचुकी होती वह साधिका उस साधक की मुद्रा बनती। एक दिन उसके साथ साधना करती। साधक अपने हाथों चोली पहनाता। शर्त यह कि हाथ काँपे नहीं। पसीना न हो। चेहरे पर विकार न दीखे। मन का एकाग्र भंग न हो।

सभी कंचुकियाँ एक रंग की होतीं। इस कारण पहचान में कठिनाई होती। साधिका स्वयं पहचानती। साधक पहचानते। कभी-कभी उसमें बसी शरीर गंध से पहचानी जाती। विवाद का निर्णय प्रमुख करते। उस दिन साधना खंडित मानी जाती। अक्सर साधक साधना खंडन से बचते थे। प्रमुख को निर्णय न करना पड़े।

संत ने इस सम्प्रदाय के साधकों से भेंट की। उन्हें इस मार्ग से विरत किया। राम नाम का उपदेश दिया। मूंड मुडाइ फूलि का बैठे काननि पहरि मंजूसा।

सन्त भंडौच आये। यहाँ तत्वा और जीवा दो ब्राह्मण थे। दोनों भाई थे। दोनों साधक थे। दोनों ने किसी को गुरु नहीं बनाया था। बिना मन्त्र गुरु के मुक्ति नहीं। इसलिये वे बेचैन रहते। उनकी प्रतिज्ञा के अनुसार गुरु मिल नहीं रहा था। उनकी प्रतिज्ञा थी। जो सूखे पेड़ को हरा कर देगा वही उनका गुरु

बनेगा। काटने पर भी जो पेड़ लहलहाये। बलिहारी ता विरिख की। फल लागै अति दूर।

सन्त इन दोनों भाइयों की बात समझ गये। उनके चरणकमल के धोवन से पेड़ लहलहा उठा। पत्ते निकले। फूल आ गये। गुरु कृपा से क्या नहीं हो सकता है ? दोनों भाई प्रसन्न हो गये। पलुहा गये। सन्त के शिष्य हो गये।

उन्होंने सन्त वाणी के प्रचार का निश्चय किया। दीक्षा के अवसर पर सन्त ने कहा पूरब जनम हम वाभन होते। ओछे करम तप कीना। रामदेव की पूजा चूका। पकरि जुलाहा कीना।

तत्वा और जीवा जानते थे। सन्त की माँ ब्राह्मणी थी। यद्यपि साधना में इसका कोई मतलब नहीं था। फिर भी यह कहने का उद्देश्य था। किसी में हीनता न आये ? ब्राह्मण बनने की ललक हर युग ही विशेषता रही है। उसकी असम्भावना देख कर ही कुछ और कहा जाता है।

सद्गुरु ने दोनों भाइयों को मीन मार्ग के अवलम्बन का उपदेश किया।

सद्गुरु के पंथ में आने से दोनों भाइयों की प्रतिष्ठा बढ़ गयी। दोनों को स्थापित कर सन्त आये गये। उन्हें दूर जाना है।

सन्त नर्मदा के किनारे एक गाँव के पास से गुजर रहे थे। ब्राह्मण रामदास महिमा सुनकर उनके पास आया। उसने सन्त के चरणों में निवेदन किया। मैं ईश्वर का दर्शन करना चाहता हूँ। भगवान् राम ने, कृष्ण ने सबको दर्शन दिया था। क्या वे मुझे दर्शन नहीं देंगे ? यह सन्त की परीक्षा भी थी। क्योंकि सन्त अवतार में विश्वास नहीं करते। वे राम को दशरथनंदन नहीं मानते। कृष्ण को कंसनिकंदन नहीं कहते।

सन्त ने धैर्य पूर्वक रामदास की बातें सुनीं। उन्होंने आश्वासन दिया। तुम्हें प्रभु का दर्शन होगा। तुम्हें ही नहीं। तुम्हारे साथ और लोगों को भी। तुम एक भंडारा करो। साधुओं को निमंत्रित करो। औरों को भी बुलाओ। सब एक साथ प्रभु दर्शन करें।

ब्राह्मण तैयार हो गया। भंडारे की व्यवस्था हुई। सैकड़ों साधु सन्त आये। सुस्वादु भोजन बने। तरह-तरह के पक्वान, मिठाइयाँ आदि। भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य एवं पेय भोजन। मीठा, तीता, खट्टा, चरपरा, नमकीन भोजन।

सन्त दूर एक पेड़ के नीचे समाधिस्थ थे। लोग उनकी समाधि के टूटने की प्रतीक्षा करने लगे। दिन बीतने लगा। सन्त की समाधि लगी थी।

इधर लोग भूख से व्याकुल थे। विना सन्त की आज्ञा के विजे नहीं हो रही थी। लोगों में उत्सुकता भी थी। भूख भी। सबकी आँखें टँगी थीं। सामधि टूटे। भगवत् दर्शन हो। भोजन हो।

अचानक लोगों का ध्यान रसोई की ओर गया। एक मत्त भैंसा घुसकर भोजन सामग्रियाँ खा रहा था। बर्त्तनों को उलट-पलट रहा था। सामान बिखर गये थे। जगह-जगह गोबर और मूत्र फैल गये थे। भोजन का समय बीत गया। सामान नष्ट हो गए। किन्तु प्रभु का दर्शन नहीं हुआ।

लोग क्रोध में आ गये। भूख ने क्रोध को और भी उकसा दिया। सामानों के नष्ट होने का अफसोस भी था। जिसे जो भी सामान मिला। लोग भैंसे को पीटने लगे। मारो मारो। भगाओ, भगाओ का शोर मच गया।

भैंसा लहूलुहान हो गया। उसके अंग जगह-जगह से टूट गये। वह डायँ डायँ चिल्लाता भागा। जाकर सन्त के सामने खड़ा हो गया।

सन्त की समाधि भंग हो गयी। वे भैंसे के गले से लिपट गए। क्षमा माँगने लगे। चोट और अपमान के लिये क्षोभ प्रगट करने लगे। घावों पर दवा लगाने लगे। तुरत पानी लाकर सामने रखा।

लोग चकित थे। लोगों ने पूछा—क्या यह भैंसा ही भगवान् है? सन्त ने उत्तर दिया। हाँ, भैंसा भी भगवान् है। खड्ग खंभ में प्रभु का बास है। तो, भैंसा में क्यों नहीं है? प्रभु कहाँ और किसमें नहीं? पत्थर में प्रभु को देखते हो। भैंसे की उपेक्षा करते हो। यह द्वैत है। द्वैत में रहने के कारण आपने

ईश्वर का दर्शन नहीं किया। सम्पूर्ण प्राणियों के साथ अद्वैत ही प्रभुदर्शन है। साम्य भाव में ही प्रभु का निवास है। विषमता से प्रभु दूर रहता है।

लोगों के देखते-देखते भैंसा अदृश्य हो गया।

रामदास सन्त के चरणों पर गिर पड़ा। साधु मंडली बिना खाये तृप्त हो गयी। उनकी भूख जाती रही। वे सदा के लिये क्षुधा रहित हो गए।

सन्त ने मानव-मानव की एकता, समता और सम्मान का प्रवचन किया। समस्त जीव के प्रति करुणा, मैत्री और मुदिता का उपदेश किया। लोग मन्त्र मुग्ध सन्त को सुनते रहे।

एकता का ज्ञान देते हुए कहा—सीखे सुने पढ़े का होई जौ नहीं पदहिं समांनां। करनाटक का शाक्त पूर्णानन्द सन्त कबीर से भयभीत था। वह जान चुका था कि सन्त शाक्तों के विरोधी हैं। सहज गृहस्थ धर्म वैष्णव धर्म के प्रचारक हैं।

करनाटक में कबीर के प्रवेश की सूचना पाकर उसने एक कुत्ते को भेजा। पागल कुत्ता। जा कबीर को काट ले। अपना विषदंत उसमें प्रवेश करे।

संत भूंक-भूंक कर मरे। मर जाय। शाक्तों का संकट दूर हो।

काला कुत्ता। पूंछ कटा। भूंकता नहीं। हाँवँ हाँवँ करता। दहाड़ता कुत्ता। आँखों में क्रोध था। जीभ निकली। दाँत बाहर। डरावना।

कुत्ते को देखते ही सन्त ने कहा—आओ भैरोनाथ। बहुत दिनों से काशी छूटी थी। तुम तो रखवाले हो। कहो काशी कैसी है? इधर कैसे भूल पड़े? कोई कारज हो तो बताओ? काशी में तो सम्वाद का अवसर ही नहीं मिलता है।

मैं राम भक्त हूँ। राम। जाके जपत महसेहू। लेकिन तुम तो महेश को छोड़कर शाक्त के चक्कर में आ गये। साकत सुनहाँ दोनूं भाई। एक भूंकत एक नींदत आवइ।

सन्त की करुणामय एवं मैत्री युक्त वाणी सुनकर कुत्ता रोने लगा। काफी देर तक रोता रहा। सन्त ने पूछा क्यों रोते हो भाई ? कुत्ता क्या बोले ? और रोने लगा। जोर-जोर से रोने लगा।

पूर्णानन्द को खबर लगी। वह दुखी हुआ। उसने कुत्ते के रोने को बड़ा अशुभ बताया। शाक्त धर्म का संसार से लोप हो जायगा। स्वयं भैरव रो रहे हैं। देवता का रुदन जगत का अकल्याण करता है। अकाल और विनाश लाता है। इसीलिये लोग देवता को प्रसन्न रखते हैं। देव शक्ति ही सृष्टि का आधार हैं। यह आधार ही रोये तो अकल्याण निश्चित है। भले व्यक्ति कभी अशुभ सोचते भी नहीं।

फिर किसी ने उस कुत्ते को नहीं देखा। कहते हैं वह कुत्ता और कोई नहीं। स्वयं भैरोनाथ थे। सन्त कबीर की परीक्षा ले रहे थे। उनका दर्शन करने आये थे। यहाँ से लौटकर उन्होंने लोगों को सन्त कबीर के महत्व को प्रकाशित किया।

सन्त मण्डली मध्य प्रदेश में घूम रही थी। घोर जंगल पार करने पड़ते। घने जंगलों, बीहड़ रास्तों को पार करना आसान न था। किन्तु सन्त अभ्यस्त थे। निर्भयता उनकी शक्ति थी। वर्षा के महीनों में वे कहीं रुक जाते। बाढ़ उतरने, वर्षा बन्द होने और रास्ता सूख जाने पर चलते। रास्ते में लोग इनकी सहायता करते। कभी कोई बदमाश नाहक परेशान भी करता। किन्तु प्रायः सन्त जानकर चोर डाकू भी हट जाते थे। उन्हें इनसे कुछ भी लेना देना नहीं होता। छल छल को ही ठगता है। निःछल सन्त को कौन ठगेगा ? सन्त के पास मिलेगा भी क्या ? छल का उद्देश्य होता है। कुछ प्राप्त करने के लिये छल किया जाता है। लूट का भी उद्देश्य होता है। लूट धन के लिए होती है। निर्धन तो सदा लुटा है। जिसे सम्पूर्ण व्यवस्था लूट रही है। उसे लुटेरे क्यों लूटेंगे ?

सन्तों के पास केवल उपदेश है। आचरण है। लुटेरे इन दोनों से डरते हैं। ये दोनों उन्हें नहीं चाहिए। इसलिये सन्तों के पास आने से घबराते हैं।

किन्तु डाकू अजीत सिंह को इन बातों से कुछ मतलब नहीं। उसकी क्रूरता में इतनी बुद्धि भी नहीं है। यात्रियों को मारकर छीन लेना उसका व्यापार है। लोगों को उसके क्षेत्र में जाने में डर लगता है। कोई भूला भटका ही उधर जाता है। डाकू अजीत सिंह के कारण चम्बल के बीहड़ों की काफी प्रसिद्धि हो गयी है। यहाँ के डाकू रक्त बीज हैं। एक के मरते ही कई तैयार हो जाते हैं।

चम्बल शासन के लिये सिर दर्द हो गया है। एक डाकू मरता है। बन्द होता है। दूसरा पैदा होता है। चम्बल के बीहड़ डाकू उत्पन्न करने की उर्वरा भूमि बन गये हैं। लोग वहाँ के पानी का दोष देते हैं। किन्तु बात ऐसी नहीं है। मूल बात है जंगल की सघनता और नदी की बनावट। भूल भुलैया रास्ते। एक बार खोया तो राह पर आना कठिन हो जाता है। डाकू उन रास्तों से परिचित हैं। वे तो भटके लोग हैं ही। अब दुबारा क्या भटकेगें ? भटका व्यक्ति ही तो डाकू होता है।

बीहड़ों में घुसते समय लोगों ने सन्त को मना किया। रास्ता ठीक नहीं है। इस रास्ते पर जाना खतरे का काम है। डाकू अजीत सन्तों को भी नहीं छोड़ता। उसे संन्यासियों से विशेष बैर है। किन्तु सन्त कब डरने वाले थे ? सन्त विकारों से डरते हैं। निर्विकार को कैसा डर ? डर के रास्ते पर चलना सन्त स्वभाव है। उनके चलने से रास्ता भय रहित हो जाता है। लोग सन्त को रोक न सके। बहुतों ने सोचा शायद कुछ कल्याण ही हो। सन्त चमत्कार का प्रभाव अजीत सिंह पर भी हो सकता है। सत्य की किरणें पत्थर को पिघला देती हैं। लोहा गल जाता है। किन्तु सोचा नहीं हुआ तो ?

सन्त की यात्रा का आरम्भ हुआ। लोगों ने बताया यही अजीत सिंह का क्षेत्र है। वह कहाँ रहता है ? कब आता है ? किधर से आता है ? कुछ भी पता नहीं। किन्तु उसके लोग सहज में मिल जाते हैं। अनेक रूपों में घूमते हैं। कभी किसान बनकर। कभी सिपाही या सौदागर के रूप में। कभी यात्री संन्यासी या कथा वाचक का रूप बना लेते हैं। उसे ग्रामीणों का संरक्षण प्राप्त है। गाँव

वाले उससे डरते हैं। प्यार भी करते हैं। प्यार और डर में कौन अधिक है कहना मुश्किल है। वह सामान्य ग्रामीणों को नहीं सताता है। बीहड़ के गाँवों में उसी का राज चलता है। वह जो चाहे कर सकता है। किसकी मजाल जो अजीत सिंह की पंचायत न माने। अजीत सिंह का गुप्त सन्देश भी शासकों के प्रत्यक्ष आदेश से अधिक प्रभावी होता है। अजीत किसी की फरियाद नहीं सुनता। वह तुरन्त फैसला करता है। प्रायः निर्णय उसके अपने होते हैं। जो बात उसके मन में बैठ जाय।

सन्तों को नदी पार करना था। नाव किनारे लगी। इस पर केवल सन्त मंडली बैठी। किनारे पर दूसरे यात्री थे भी नहीं। नदी सीधी नहीं थी। जंगलों के बीच से निकलने के कारण बीच-बीच में टेढ़ी थी। इस टेढ़ेपन ने नदी को भयानक और खूंखार बना दिया था। बरसात में तो तबाह करती ही। अन्य दिनों में भी धमकाती रहती। नदी और जंगल का रिश्ता भी भयानक था। कभी जंगल साक्षात् पशु बन जाता। कभी नदी यमराज बन जाती। बहरहाल कि लोग जंगल और नदी दोनों से भय खाते थे।

इस भयानकता में भी सन्त मंडली बेपरवाह थी। बेपरवाही दास। साहब आज विशेष प्रसन्न दीख रहे थे। न रास्ते की थकान। न जंगल, पहाड़, नदी, बीहड़ के वन्य पशुओं का भय। न किसी डाकू की आशंका। उन्होंने चलते समय किनारे पर बैठकर निर्गुण गाया। लोगों ने देखा आज उनके गले में विशेष मिठास थी। किन्तु दूसरे सन्तों के मन में आशंका थी। अजीत डाकू अनावश्यक क्रूर है। घायल शेर के समान हमला करता है। आदम खोर शेर भयानक हो जाता है।

मनुष्य का रक्त शायद सबसे अधिक जायकेदार होता है। इसलिये वनराज को मनुष्य रक्त प्रिय है। ऐसा भी कि उसके मन में केवल एक भय है। मनुष्य का भय। मनुष्य को मारकर वह भय मुक्ति की अनुभूति करता है। और इसी प्रसन्नता में मानव रक्त मांस के स्वाद का अभ्यस्त हो जाता है। डाकू अजीत भी ऐसा ही वनराज था।

सन्तों की टोली को उसने दूर से ही देखा। उसकी आँखों में बिजली दौड़ी। आज कई दिनों बाद कोई दल जंगल पार कर रहा था। नदी-नाव का संयोग कर रहा है। सन्तों के नाव पर बैठने के बाद वह स्वयं नाव पर आकर बैठ गया। नाव चल पड़ी। थोड़ी ही दूर जाने पर प्रखर धार थी। उसका धीरज समाप्त हो गया। उसने सन्तों की ओर मुखातिब होकर कहा—अपने अपने सामानों का मोह छोड़कर राम राम जपो। इधर आने वाला फिर उधर नहीं जाता। तुम लोगों को यहीं नदी के रास्ते स्वर्ग भेज देता हूँ।

सन्तों का दल घबराया। क्या ग्रामीणों की बात सच होगी? उन्होंने तो रोका ही था। साहब ने नहीं माना। किन्तु सन्तों में कोई कुछ बोला नहीं। किसी ने अपना भय प्रगट नहीं किया। सभी जानते हैं—साहब सों सब होत है। बंदे ते कछु नाहिं।

सन्त कबीर अभी तक ध्यान मुद्रा में बैठे थे। उन्होंने तेज किन्तु कोमल स्वर में अजीत सिंह से पूछा क्यों अजीत क्या तुम अपना सामान लेते जाओगे? सन्त तो नदी की राह जायेंगे। ठीक ही है। सबको जाना है। रास्ते अलग हो सकते हैं। किन्तु तुम कब और किस रास्ते आ रहे हो? आना तो तुम्हें भी है। जो आया सो जायगा। राजा रंक फकीर।

सन्त की वाणी का अजीत के मन पर जादू सा असर हुआ। वह घबरा सा गया। पता नहीं क्यों नाव पर चढ़ते समय उसे एक नयी अनुभूति हुई। नदी आज बदली लग रही थी। अब तक उसने सैकड़ों को मारा था। वे सभी जैसे उठ खड़े हुए हैं। अजीत को ललकार रहे हैं।

अजीत को लगा। ये साधारण साधु नहीं हैं। विशिष्ट हैं। तीव्र आकर्षण शक्ति है। वह काँपने लगा। उसकी दृढ़ता जाती रही। इतना शिथिल हुआ कि सन्त के चरणों पर गिर पड़ा। पूछा—क्या सन्त कबीर साहब आप ही हैं? मैंने उनका बड़ा नाम सुना है। लोग कहते हैं कि वे इन दिनों इधर आये हुए हैं। मुझसे बड़ी भूल हो गयी। सच-सच बताएँ प्रभु। क्या आप ही कबीर हैं?

मेरी यह देह कबीर नाम से जानी जाती है। किन्तु मैं कबीर नहीं हूँ। अरूप और अनाम हूँ। यह नाम रूप के साथ जुड़ा है। किन्तु रूप के नष्ट होने पर भी रहेगा। इसलिये कि नाम की आयु रूप की आयु से बड़ी है। स्थूल के मुकाबले सूक्ष्म अधिक दिनों तक रहता है। सूक्ष्म राम के अधिक निकट है। स्थूल शरीर को ही सब कुछ समझने वाले ही मरने-मारने का धंधा करते हैं। साहब ने अजीत को बोध दिया।

उन्होंने उस पर हाथ रखा। घबराओ नहीं अजीत। तुमने किसी को लूटा नहीं है। खुद को लुटाया है। बताओ आज तुम्हारे पास क्या है? साहब लेखा माँगेगा? उसे क्या दोगे? संसार में प्राणी का कोई अपना नहीं है। लोभ और मोह को वह अपना समझता है। किन्तु लोभ और मोह किसी को अपना नहीं समझते। सबको धोखा दे देते हैं।

अजीत रोने लगा। उसने साहब से क्षमा माँगी। सन्तों से क्षमा माँगी। अपने को बार-बार धिक्कारा। अपनी गर्दन काटने के लिये तैयार हो गया। उसने अपने साथियों को ललकारा। है कोई मेरा दोस्त जो मेरी गर्दन उतार कर साहब के चरणों पर रख दे। मैं इस नरक से ऊब गया हूँ। साहब ने उसे आशीर्वाद दिया। शिष्य बनाकर आगे बढ़े।

कहते हैं आगे अजीत ने अपनी सारी शक्ति गरीबों बीमारों आदि की सेवा में लगा दी। वह शासकी अन्याय के विरुद्ध एक सेना गठित करना चाहता था। बादशाह से लड़ना चाहता था। किन्तु साहब ने इसकी अनुमति नहीं दी।

सन्तों का काम शासन से लड़ना नहीं है। उन्हें उपदेश द्वारा सुधारना चाहिये। लोक में ऐसा मनोबल पैदा हो जिससे लोग अन्याय, अधर्मी शासन को स्वीकार ही न करें। बिना जनमत के कोई भी सत्ता बहुत दिनों तक नहीं टिक सकती है।

अजीत सिंह डाकू क्यों बना। इसकी भी एक कहानी है। पहले वह एक खाते पीते सुखी किसान का लड़का था। माँ-बाप का इकलौता होने के कारण बचपन

में अत्यन्त लाड़-प्यार में पला था। किन्तु दैव को उसका सुख रास नहीं आया। किशोर उठान के आरम्भ ही था कि हैजे की तेज आँधी ने एक साथ ही माता-पिता को उठा लिया। दोनों ही क्रूर काल के शिकार हो गये। अजीत को कुछ समझ में नहीं आया। अभी तो सब ठीक था। अचानक कै दस्त। पहले माँ और कुछ ही घण्टों के बाद पिता चल बसे। कुछ कहा भी नहीं। कुछ सुना भी नहीं।

चाचा बड़े दयालु थे। बड़ा स्नेह दिया। चाची उसे अपने बेटे से बढ़कर मानतीं। अजीत को माता-पिता का दुख भूलने लगा। समय आया। अजीत की शादी हो गयी। बहू आयी तो अजीत हैरान। बहू के चेहरे पर माता के गहरे निशान तो थे ही। वह अत्यन्त कुरूप और अंधी भी थी।

शीतला में उसकी आँखें चली गयी थीं। अजीत को दुख तो बहुत हुआ। किन्तु वह बोला कुछ भी नहीं। शिकायत करता भी तो नतीजा क्या निकलता? विवाहिता स्त्री छोड़ी तो जा नहीं सकती थी। विवाह के पहले उसके चाचा-चाची ने लड़की देखी नहीं थी। उनका भी क्या कसूर था? सारी जिम्मेवारी तो लड़की के पिता की थी।

अजीत ने निश्चय किया वह कभी ससुराल नहीं जायगा। सास-ससुर का मुँह नहीं देखेगा। किन्तु स्त्री का अपमान नहीं करेगा। उसे कभी भला बुरा नहीं कहेगा। वह अपनी स्त्री के साथ दिन बिताने लगा। किन्तु उसकी चाची का व्यवहार ठीक नहीं था। अन्धी स्त्री प्रायः चाची के व्यवहार से रोती रहती। चाचा-चाची के लड़के और बहुएँ भी उसकी स्त्री को परेशान करतीं। रोज ही कोई न कोई झंझट होती। किन्तु अजीत सब सहता। वह चाचा-चाची के उपकारों से लदा था। किन्तु पत्नी का रोना भी उससे नहीं देखा जाता। फूटी आँखों से झरते आँसू अजीत को बेचैन कर देते। अंधी आँखें अपने आँसुओं को नहीं देखतीं। किन्तु आँख वाला अजीत अपनी आँखों में दुहरी शक्ति दुहरा दर्द लेकर देखता। फूटी आँखों के अनकहे दर्द से वह व्याकुल हो जाता। उसका

मन ऊब गया। उसने बड़ी नम्रता से चाचा-चाची से अलगौछ का प्रस्ताव किया। चाचा-चाची तो चाहते ही थे। उन्होंने अजीत का प्रस्ताव तुरत मान लिया।

अजीत अलग कर दिया गया। उसका चूल्हा-चौका अलग हो गया। किन्तु खेत का बँटवारा देख वह दंग रह गया। अधिकतर खेत चाचा ने अपने बच्चों के नाम करा लिया था। अजीत तो खेती के बारे में कुछ जानता ही नहीं था।

वह चाचा के प्यार में भूला रहा। खेतो के कागजों को कभी देखने की कोशिश नहीं की। यों खेती के कागजों को देखना समझना सबके बूते का है भी नहीं। खेती की कागजात विद्या में अजीत अनाड़ी था। फिर भी अजीत ने कुछ कहा नहीं। जितना मिला उसी में गुजर करने लगा। पत्नी की चमड़ियाँ भले ही सुन्दर न हो, किन्तु उसका मन बड़ा था। असुन्दर शरीर में सुन्दर मन। उसके मन सौंदर्य से अजीत अत्यधिक प्रभावित हुआ। वह भूल ही गया कि उसकी चमड़ियाँ कुरूप हैं। वह अपनी पत्नी के प्रेम में डूबा रहता। पत्नी भी उसे मीठी बातों से सन्तुष्ट रखती। अन्धी होने के बावजूद गृहस्थी के अधिकांश कार्य करती। पति-पत्नी के दिन आनन्द से कटने लगे।

किन्तु अजीत का दुर्भाग्य देखिए। एक दिन वह कहीं से लौट कर घर आया तो भीड़ देखकर चकित रह गया। लोग उसी को देख रहे थे। कुछ लोग रो रहे थे। बीच में कुछ पड़ा था जिसे घेर कर लोग खड़े थे। पास जाते ही उसे पता लगा कि अंधी पत्नी भी उसे छोड़ कर स्वर्ग सिधार गयी। अचानक कुँए में गिरने से उसकी मौत हो गयी। यहाँ उसकी लाश पड़ी है। लोग अजीत की प्रतीक्षा में हैं।

अजीत इस घटना से अत्यंत मर्माहत हुआ। उसका अंधा सहारा भी टूट गया। उसने घर छोड़ देने का निश्चय किया। अब वह विधाता के खेल को अकेले ही भोगेगा। उसी दिन एक साधु मंडली उधर से गुजर रही थी। वह

उनके पीछे चलने लगा। उन्हीं की मंडली में रम गया। मंडली के प्रधान ने इसे अपने साथ कर लिया। अजीत तन-मन से साधुओं की सेवा करने लगा।

अजीत इन साधुओं के साथ घूमता। परिश्रम करता। उनके जानवरों के लिये घास लाना, चारे की व्यवस्था करना, रसोई का ईंधन जुटाना आदि। उसका पूरा समय इन्हीं कामों में बीतता। न कभी राम चर्चा। न कभी आत्म संस्कार के उपाय। दूसरी ओर महन्त और उनके प्रमुख शिष्य भोग में लिप्त रहते। मालपुआ, रबड़ी, मलाई, दूध, मेवा जो किसी गृहस्थ को नहीं नसीब होता है महन्त खाते-खिलाते। महन्त और उनके प्रमुख शिष्य कहने को तो ब्रह्मचारी संन्यासी थे किन्तु सबने कोई न कोई व्यवस्था कर रखी थी। पूरा मठ व्यभिचार का केन्द्र बना था। अनेक प्राकृत-अप्राकृत धन्धे होते। महन्त की पकड़ जबर्दस्त थी। जो एक बार आ गया फिर निकल नहीं सकता था। वह महन्त के किलेनुमा मठ का बन्दी हो जाता था। अनेक लोगों ने भागने का प्रयास किया। किन्तु महन्त के लोगों ने उन्हें पकड़ कर गहरी सजा दी। कई को तो प्राणों से हाथ धोना पड़ा।

अजीत का मन अशान्त रहता। उसका मन इस नकली संन्यास से ऊब गया। किन्तु निकलने का कोई रास्ता नहीं था। साँड़ दाग कर छोड़ दिया जाता है। किन्तु दागे हुए संन्यासियों पर विशेष नजर रखी जाती है। वे एक ढंग के कैदी हैं। बहुतों को तो मालूम भी नहीं चलता है कि मठ के अतिरिक्त भी कोई संसार है। उन्हें कभी मठ के बाहर निकलने पर सख्त पहरा है। काम करते-करते कमर टूट जाती है। व्यभिचार अलग से। जरा इधर उधर किया कि साधुओं के चिमटों से शरीर की मरम्मत हो जाती है। एक एक हड्डी चटखने लगती।

अजीत साधु समाज के असाधु वातावरण से ऊब गया। उसे घर में जिस कारण वैराग्य हुआ था यहाँ उसे कोई सांत्वना नहीं मिली। उलटे वह एक नये नारकी जीवन में फँस गया।

तभी एक दिन भागा था अजीत। अब उसे कहाँ शरण मिलेगी? साधुओं के हाथ-पैर लम्बे हैं। उन्हें मालूम हो जाय तो वे किसी न किसी बहाने पकड़वा मँगायेंगें। संयोगवश उसकी मुलाकात बीहड़ के डाकुओं से हो गयी। और तब से अब तक वह डाकू है। ख्यात, कुख्यात डाकू। उसे साधुओं से भी नफरत है। वह साधुओं को गृहस्थों से भी पापी और पाखंडी समझता है। इसीलिये अजीत उन्हें परेशान कर सुख की अनूभूति करता है। अजीत लूट-पाट क्यों करता है? उसे भी पता नहीं। उसके पास कोई धन नहीं है। कोई खजाना नहीं है। उसका कोई खर्च नहीं है। उसका भोजन साधारण और कपड़े तो वह बहुत ही कम पहनता है। फिर भी लूटने में उसे सुख मिलता है। सम्पन्न व्यक्तियों को रोते-चिल्लाते देख वह असामान्य आनन्द प्राप्त करता है।

आज सन्त को देखकर, सुनकर उसका मन बदल गया। उसे विश्वास हो गया साधु की जमात नहीं चलती। अकेले साधु का मिलना कठिन नहीं।

सन्त कबीर अफगानिस्तान होते हुए मक्का पहुँचे। यहाँ दुनिया भर के मुसलमान आते हैं। सन्त ने अपना पहनावा भारत के मुसलमान जैसा बना लिया। किन्तु वहाँ पहुँचते ही उसका मन बदल गया। उन्होंने साधु के स्वाभाविक वेश में मक्का में प्रवेश किया। पवित्र पत्थर की ओर पैर कर सो गये। यह बात मुसलमानों को अच्छी नहीं लगी। उन्होंने इसे अल्लाह का अपमान समझा। क्रोध भी हुआ। किन्तु फकीर के प्रति उनके दिल में बड़ा आदर था। इसलिये उन्होंने उन्हें समझाने की कोशिश की।

सन्त ने पूछा—क्या मुझसे कोई अपराध हो गया है? मैंने जानबूझ कर कोई अपराध नहीं किया है। अनजान के अपराध को आप लोग बताने की कृपा करें। मैं आपके सामने झुकने को तैयार हूँ।

उन लोगों ने कहा—तुमने खुदा की इबादत नहीं की। इसके उलटे जिधर खुदा हैं उधर ही पैर कर सो रहे हो। तुमने ये दो अपराध किए हैं। हम तुम्हें फकीर जानकर छोड़ रहे हैं। फिर ऐसा फकीर जो बुतपरस्त न हो। हिन्दुस्तान के अधिकतर फकीर बुतपरस्त होते हैं।

सन्त ने पूछा—मैं फिर किस दिशा में पैर रखूं ? क्या आप वह जगह और दिशा बता सकते हैं जहाँ खुदा न हो ? और जब वह सभी जगह सब दिशा में है तो मुझसे कोई गलती नहीं हुई। मैं तो हर समय खुदा की इबादत में ही रहता हूँ—जब जब डोलूँ सो परिकरमा, जो कुछ करौं सो सेवा। जब सोबौं तौ करौं बन्दगी पूजूँ और न देवा।

सन्त हर समय इबादत में रहता है। वह सारा कार्य इबादत के लिये करता है। जिस कार्य को वह इबादत के खिलाफ समझता है उसे नहीं करता है। इबादत मन में करो। केवल बाहरी इबादत से क्या फायदा ? खुदा की असली इबादत खुदा के बन्दों की सेवा, सहायता और सत्संग है। जाप भी मन ही मन करो। अजपा जाप। इससे मन बदलेगा।

तुरुक मसीति देहुरे हिन्दू, दहूठाँ राम खुदाई।
जहाँ मसीति देहुरा नाँहीं, तहाँ काकी ठकुराई।

सन्त के लौटने पर एक बड़ा भंडारा हुआ। कहते हैं इसमें सप्ताह तक चूल्हा ठंडा नहीं हुआ।

सुतदारा का किया....

आज लोई अत्यन्त प्रसन्न थी। फूली-फूली फिर रही थी। क्या करे? क्या न करे? अपना यह सुख किसे बताए? कोई तो नहीं है। कोई स्त्री ऐसी नहीं जिससे वह अपने मन की बात कह सके। जो उसके सुख-दुख को सुन सके। सुख सुनकर प्रसन्न हो। दुख सुन सहानुभूति के आँसू ढरकाये। स्त्रियाँ अधिक संवेदनशील होती हैं। विधाता की सृष्टि में संवेदना का पक्ष मुख्यत: उनके हिस्से में है। लेकिन कोई भी स्त्री लोई के पास आना नहीं चाहती। यह भी हो सकता है कि लोई किसी के पास जाना नहीं चाहती है। पता नहीं वे लोई से द्वेष करती हैं या घृणा। शायद दोनों। शायद दोनों नहीं। केवल संकोच। उदासनीता।

पुरुष का क्या कहा जाय? साधुओं की जमात है। लोई स्वयं उनसे दूर रहती है। वह साधुओं को देख चुकी है। यहाँ के साधु क्या कम हैं? लोई को ऐसे देखते हैं जैसे बिल्ली शिकार को देखती है। उसके आते ही साधुओं के चेहरे तनाव से भर जाते हैं। वे कुछ दबाते हैं। यह तनाव दबता नहो। जितना दबाओ और उभरता है। लोई कोई बच्ची नहीं। दुनिया देख चुकी है। देख रही है। कितने तनावों और शिथिलताओं से गुजर चुकी है। इसलिये इन साधुओं को समझने में उसे देर नहीं लगती है। किन्तु करे क्या? स्त्री पुरुष का सम्बन्ध ही ऐसा है। स्त्री को देख हर पुरुष तनाव की अनुभूति करता है। पुरुष की उपस्थित हर स्त्री को शिथिल करती है।

सभी लोई की उपस्थिति से प्रसन्न होते हैं। किन्तु बात उसके विरोध की करते हैं। लोई से आँखें नहीं मिलाते। उनकी आँखें लोई की सुडौल पीठ पर टिकी रहती हैं। लोई की आँखें इधर-उधर हुईं कि उनकी आँखें उस पर आकर टिक जाती हैं। थोड़ी असावधानी हुई। कपड़ा खिसका, अंग खुले कि साधु निहाल हो जाते हैं।

लोई की बहुत दिनों से इच्छा थी वह सन्त के साथ यात्रा में चले। रहे। किन्तु सन्त ने कभी इसकी स्वीकृति नहीं दी। किन्तु इस बार पता नहीं सन्त पर क्या प्रभाव पड़ा ? उनके मन को क्या हुआ ? उन्होंने लोई को साथ चलने की स्वीकृति दे दी। साधुओं ने विरोध नहीं किया। गुरु महाराज की आज्ञा जो थी। गुरुबानी सब कुछ है। साधनापक्ष इस वाणी का विरोध नहीं किया जा सकता। गुरुबानी ही आगम निगम प्रमाण है। लोई ने स्वयं निर्णय लिया। वह साधु मण्डली से थोड़ा अलग चलेगी। साथ भी। अलग भी।

प्रयाग और वाराणसी के बीच गंगा के किनारे-किनारे का रास्ता। हजारों स्त्री-पुरुष चल रहे हैं। कोई लाल, कोई हरा, कोई नीले-पीले वस्त्रों में सजा है। बैलों, बैलगाड़ियों, ऊँटों, ऊँटगाड़ियों पर सामान लदे हैं। लोग भी बैठे हैं। किन्तु अधिकतर लोग पैदल चल रहे हैं। पैदल चलने में ही उन्हें प्रसन्नता जान पड़ती है। सवारियों पर विशिष्ट पुरुष हैं या अशक्त। वृद्ध, बीमार आदि। सब सन्त के बनाये भजन गा रहे हैं। बीच-बीच में रामधुन होती है। आगे-आगे स्वयं सन्त साहेब। जैसे लोगों को रास्ता दिखा रहे हैं। उनके पीछे सफेद वस्त्रों में सजी साधु मण्डली। कहते हैं यह मण्डली जिस रास्ते से जाती है हैजा, पलेग आदि भाग जाते हैं। भूत, प्रेत, डाइन, जोगिन का डर दूर हो जाता है। दूर-दूर के ग्रामीण आकर सन्त के चरणों की धूल माथे पर रखते हैं। माताएँ बच्चों का सिर झुकाती हैं। काजल के दिठौने की जगह सन्त चरणों की धूल लगाती हैं।

सन्तों की यह यात्रा एक प्रकार का उत्सव है। सन्त की मण्डली बढ़ती है। लोग उसमें शामिल हो रहे हैं। गृहस्थी में अत्यन्त फँसे स्त्री-पुरुष भी थोड़ी दूर तक चलते हैं। बाद में लौट आते हैं। साधु के साथ दो कदम चलना भी पुण्य है।

लोई की छाती चौड़ी हो गयी है। वह मन ही मन प्रसन्न है। काश वह सन्त के बराबर बराबर चलती। बाँहों में बाँहें डालकर चलती। किन्तु यह सौभाग्य कहाँ ? एक साधु वह अतीत था जिसने कितनी स्त्रियों के जीवन बर्बाद

कर दिये। एक साधक वह था जो नंगी स्त्री को साधना का आधार बनाता था। एक साधु यह सन्त हैं। स्त्री से द्वेष नहीं। किन्तु स्त्री से दूर। साधना को भोग से अलग रखने वाले। संसार ऐसे ही साधुओं को पूजता है। इनकी ही आराधना करता है।

सन्त ने निश्चय किया था इस बार चौमासा वाराणसी में नहीं बिताएँगे। कई वर्षों से बाढ़ की खबरें आ रही थीं। अजीब देश है अपना भी। कहीं भयानक सूखा तो कहीं सर्वग्रासी बाढ़। कभी-कभी दोनों आगे पीछे। पहले लोग सूखते हैं। फिर डूबते हैं। सूर्य तपता है तो बेहद को पहुँच जाता है। उसके बाद छिपता है तो हफ्तों गायब। पानी ऐसे बरसता है जैसे आकाश फट जायगा। आसमान में छेद हो गया है। वरुण देवता प्रलय ला देते हैं। साम्राज्य फैलाने के वेग में धरती को बेकल कर देते हैं। कहीं ठौर-ठिकाना नहीं। सब जगह त्राहि-त्राहि की पुकार मच जाती है।

गंगा के किनारे गाँव से थोड़ी दूर पर सन्तों का अखाड़ा उतरा। सन्त गाँव में जाना पसन्द नहीं करते। गाँव के बाहर किसी बगीचे, नदी, नाले, तालाब के पास रहने में सुविधा होती है। करीब दस दिनों तक भण्डारा चलता रहा। दूर-दूर के साधु महात्माओं ने भाग लिया। रोज प्रवचन होता। रामधुन, कीर्तन संगीत, झांझ, करताल, मृदंग के स्वर गूंजते रहे। जोगी सारंगी पर वैराग्य के गीत गाते। गोपीचंद, मैनावती, भरथरी के गीत। दस दिनों तक अजीब समा बँधी रही। लोग सब भूल गये। न दुख। न सुख। केवल आनन्द। आनंद और आनन्द। मजा तो यह कि गीत गाये जाते विराग के। संसार को माया बताने वाले। संसार को छोड़ने से युक्त। किन्तु इससे संसार के प्रति विराग नहीं बढ़ता। राग प्रबल होता। हाँ, इस राग में काम, क्रोध, लोभ, मोह न होकर प्राणी हित के भाव होते। व्यक्ति की संकुचित सीमाएँ छूट जातीं। व्यक्ति समष्टि बन जाता। हम जो कुछ भी करते हैं भगवान् के लिये करते हैं। भगवान् ही सब कुछ है। उसके बन्दों की सेवा ही साधना है।

लोई सभी कामों मे आगे रहती। किन्तु सन्त के पास कभी नहीं जाती। सन्त कभी उसे बुलाते भी नहीं। उसकी खोज खबर भी नहीं लेते। वह सन्त के साथ है। सन्त की कृपा उस पर है। वह सन्त की है। यह उसके लिये चरम आनन्द था। सन्त के बहुत पास रहने से कठिनाई हो सकती थी। सन्त को किसी कठिनाई में नहीं डालना चाहती। मन का सुख देह सुख से बड़ा है। लोगों को आश्चर्य भी होता। साधु मण्डली में एक स्त्री। कोई-कोई उसे सन्त की पत्नी बताते। किन्तु वह तो सन्त से दूर रहती है। दूसरे साधुओं और उसमें क्या फर्क है? सिर्फ इतना कि विधाता ने उसे स्त्री बनाया है। मन को बदलकर पुरुषानुरूप बना भी ले तो शरीर का क्या करेगी? शरीर तो बदला नहीं जा सकता है? वह लोगों से कहती वह स्त्री शरीर से ही साधना करेगी। क्या स्त्री साधना नहीं कर सकती है? ब्रह्मचर्य की कल्पना पता नहीं क्यों पुरुषों के साथ ही अधिक है। स्त्री भी तो ब्रह्मचारिणी होती है। मैं सन्तानवती, विवाहिता, सन्त से अखंड प्रेम करने वाली ब्रह्मचारिणी हूँ। ब्रह्मचर्य का सम्बन्ध मुख्यतः मन से है। मेरा मन ब्रह्मचारी है। किन्तु तन ही कौन व्यभिचारी है? तन भी तो मन सा पवित्र है। वहुत से लोग लोई की बातों को मात्र छल समझ कर उड़ा देते। किन्तु साथ रहने वाले साधु उसका आचरण देख रहे थे। धीरे-धीरे उन साधुओं पर लोई का प्रभाव बढ़ रहा था।

ब्रह्मचर्य मुख्यतः कष्ट सहन विद्या है। प्रक्रिया है। और कष्ट सहन में स्त्रियाँ अपना प्रतिद्वन्द्वी नहीं रखतीं हैं। सृष्टि के सारे कष्ट स्त्री को दे दीजिए वह उफ् तक नहीं करेगी। उसे सहज बन्धु बना लेगी। पिता, पति, पुत्र में बदल लेगी। प्रत्येक स्त्री मन्दिर में वेदना का देवता निवास करता है। सज्जन पुरुष इस देवता की पूजा करते हैं। दुर्जन इसे स्त्री की कमजोरी समझ इसका अपमान करते हैं। प्रताड़ित और पीड़ित करते हैं। विद्वानों और दार्शनिकों ने स्त्री को माया कहा। किसी स्त्री को देखो। सबसे पहले जगती है। पूरा घर सोया है। पुरुष खर्राटे ले रहा है। स्त्री जगी है। रात में भी देर से सोयी थी। सबको खिला पिलाकर। घर की सारी व्यवस्था कर सोयी थी। रात में बच्चे ने उलटी

की। टट्टी लगी। खाँसी आयी। उसे दवा देती रही। बार-बार उठकर उसे देखती रही। दवा भी देती रही और चिंता भी करती रही। इस बीच में पुरुष सोया है। उसे कुछ भी पता नहीं क्या हो रहा है ? जैसे यह स्त्री का स्वधर्म है। पुरुष को इससे कोई मतलब नहीं।

सन्त की आँखों में अनेक स्त्रियों के चित्र हैं। सबेरे उठकर घर की सफाई कर पूरे घर को व्यवस्था देने वाली स्त्री। सन्त की आँखों में एक दृश्य नाचने लगा। उनके गाँव के पास के एक प्रतिष्ठित परिवार में ब्याह के बाजे बजे थे। ब्याह के बाजे कोई नये नहीं बजे थे। प्रतिवर्ष बजते हैं। हर गाँव गली और रास्ते में बजते हैं। किन्तु इस ब्याह का बाजा कुछ अपूरब बजा था। बहुत दिनों तक चर्चा रही इन बाजों की। बाजा मत कहिए पूरा ब्याह ही चर्चा का विषय था।

कन्या के पिता ने दहेज में सब कुछ दिया था। बारात भी जोरदार आयी। कई दिनों तक भोज हुए। गाँव के पशु भी पूड़ी-मिठाई खाकर अघा गये। जिधर देखिए उधर ही पुरवे पत्तलों की जमात जुटी है। पूरा गाँव ही नहीं आस-पास के गाँवों की हवा में भी पूड़ी, कचौड़ी की सोंधी महक फैली थी। रसदार, सूखी सब्जियों की गन्ध भर गयी थी। उस क्षेत्र में शायद कोई नाक हो जिसमें भोजन के सामानों की गन्ध न गयी हो और कानों में बाजों की आवाजें न सुनायी पड़ी हों। महफिलों के रंग ही निराले थे। क्या नहीं था उनमें। बार-बार महफिलें सजतीं। दूर-दूर के गायक-गायिकाएँ, नर्त्तकियों की कला से लोग मंत्रमुग्ध थे। दर्शकों और श्रोताओं का मेला लगा रहता। कोई भी दर्शक भूखा नहीं जाता। सबके भोजन, जलपान और बैठने आदि की व्यवस्था थी।

दोनों समधियों ने बड़ा प्रेम दिखाया। खुलकर खर्च किया। पूरा इलाका प्रसन्न था। हाथी, घोड़े, बैल, ऊँट आदि क्या नहीं आये थे ? लड़की के पिता ने सब दिया। सोना-चाँदी। कपड़े। बर्त्तन। गाय, घोड़ा, हाथी तक। लड़की-विदाई का वक्त आया। सारा गाँव रो रहा था। दुलहिन की आँखों का पानी थमने का नाम नहीं लेता। उसके साथ माता-पिता सब रो रहे थे। एक-एक

से मिली। गाँव की लड़की थी। सबने मिलकर विदाई दी। दूर तक पहुँचाने गये। सामने नदी पड़ती थी। बारात नदी पार हुई। दुलहिन-दुल्हा ने एक सवारी पर बैठकर नदी पार किया।

गाँव के लोग आँखों में वेदना लिये लौट आये। किन्तु भीतर से प्रसन्न थे। भगवान् सभी लड़कियों को इतना अच्छा घर वर दे।

किन्तु महीना नहीं बीता। खबर आयी कि लड़की ने पिता को बुलाया है। दूत टलना नहीं चाहता। साथ चलिये। बहुत जरूरी है। पिता खेती के कार्यों में व्यस्त थे। दो दिनों की फुर्सत चाहिए। कौन जल्दी है। लड़की अपने घर है। अब तीज में किसी न किसी को भेजूंगा। खुद भी आऊँगा। चौथ लेकर गये लोग अभी कुछ दिनों पहले लौटे हैं। सब ठीक था। एकाएक कौन सी आफत आ गयी कि अभी चलिए। किन्तु दूत ने जल्दी मचाई। चलना ही होगा—'हमें मालिक का आदेश है। साथ लेकर लौटना। जल्दी ही लौट आइयेगा।'

सबने सलाह दी। दूत की बात मान जाइए। नयी रिश्तेदारी है। पता नहीं क्या बात है? कोई खास बात होगी तभी दूत जिद कर रहा है। इस समय बुलाने का निश्चय ही कोई विशेष अर्थ है वरना यह समधियाना जाने का अवसर नहीं है। एक दो आदमियों को साथ ले लें। खेती का काम एक-दो दिनों स्थगित रहेगा। दो दिनों में कुछ नहीं बिगड़ता है। घर में और लोग हैं। देखेंगे। बाबू साहेब चले गये।

लौटे तो आँखों में दुख का सागर था। सीधे जाकर दालान में लेट गये। खाना-पीना सब बन्द। हाथ मुँह तक नहीं धोया। किसी की हिम्मत नहीं क्या पूछे? साथ गये लोगों ने भी हिम्मत छोड़ दी थी। किसी तरह रोते कलपते बताया—'लड़की मर गयी।'

पूरे घर में कुहराम मच गया। जो जहाँ सुनता रोते-रोते बेहाल हो जाता। लड़की की माँ रो-रोकर बेहोश हो जाती। दाँत पर दाँत बैठ जाते। लोग उन्हें होश में लाने की कोशिश करते। भाई, भाभी, छोटी बहनें सब रो रहे थे।

कोई किसी का आँसू पोंछने वाला नहीं था। घर-दालान सहानुभूति प्रगट करने वालों से भर गया। जो सुनता वही रोता चला आता। क्या हो गया ? इतनी सुन्दर शादी। इतनी हँसी। इतनी खुशी। एकाएक यह वज्र क्यों और कैसे गिरा ?

दूर-दूर के रिश्तेदार नातेदार आने लगे। किन्तु बाबू साहब ने किसी से बात नहीं की। किसी से मिलना पसन्द नहीं किया। कमरे से बारामदे में नहीं आये। भीतर ही भीतर घुलने लगे।

अफवाह फैली कि लड़की को ससुरालवालों ने मार दिया। उसके गले में चिकनी रस्सी से गला काटने का गहरा निशान था। बाबू साहब के पहुँचने के पूर्व ही लड़की की चिता में आग लग चुकी थी। उन्होंने दूर से ही पुत्री को लाश को देखा। उन्हें लगा कि गले के चारों ओर गहरा निशान है। वे उसकी परीक्षा न कर सके। चिता जल चुकी थी। परीक्षा कर होता भी क्या ? लड़की तो जा चुकी थी।

ससुराल वालों ने बताया—आप की काफी प्रतीक्षा हुई। हमने लाश को काफी देर तक रोक रखा। किन्तु सड़ने के डर से दाह करना उचित समझा। मृत देह को देखना न देखना बराबर है। शायद आप यही सोचकर आने में देर कर रहे थे।

किन्तु सच्चाई यह नहीं थी। लड़की के ससुरालवालों ने समाज और सरकार के भय से जल्दी की। बिना किसी प्रतीक्षा के लड़की को जला दिया। थोड़ी देर और होती तो बाबू साहब को कुछ भी पता नहीं लगता। ऐसे भी क्या पता लगा ? बताया यह गया कि लड़की दो-तीन दिनों से कुछ अस्वस्थ थी। शायद उसे कोई भारी भीतरी रोग था। अचानक उभरा और चल बसी। जल्दी में कुछ किया भी नहीं जा सका। स्थानी स्तर पर दवा दर्पण की कमी नहीं रही।

बाबू साहब लड़की की मृत्यु से अत्यन्त दुखी थे। यह लड़की उनके लिये लक्ष्मी थी। लड़की न होती तो क्या वे कभी उसे अपने से अलग करते ? किन्तु

लड़की चाहे जैसी हो। जितनी भी लक्ष्मी हो। शची और शकुन्तला हो। उसे दूसरों के घर भेजना ही पड़ता है। लड़की का जन्म ही दूसरों के लिये होता है। कन्या का पिता होना ही दुख का कारण है। दुखी लड़की माता-पिता को जन्म-जन्मान्तर तक दुःख देती है।

किन्तु बाबू साहब को लड़की की मृत्यु का दुःख भूल गया जब उन्हें उसके मारने के कारणों का पता लगा। छि···छि···छि··· । कितना घटिया आरोप है। मार भी दिया और यह घिनौना आरोप भी। यद्यपि बाबू साहब के समधी या उनके परिवार के लोगों ने कुछ नहीं कहा। दामाद तो सामने आया ही नहीं। किन्तु हवा में तैरती बातें उनके कानों तक पहुँचीं। अफवाह फैलाने और उन्हें रस ले लेकर सुनानेवालों की कमी है क्या? अनेक लोग अपनी रचना की सार्थकता अफवाह फैलाने में ही मानते हैं। दूसरों को लांछित करने वाली अफवाहें ऐसे फैलाते हैं जैसे वे रामकथा का प्रचार कर रहे हों। महफिल में कोई श्रृंगारी रचना का पाठ कर रहे हों।

कोई दुष्ट जो इन दोनों परिवारों के सम्बन्ध से दुखी था। उसने पता नहीं कैसे लड़की के पति के मन में यह बैठा दिया कि लड़की को नैहर का गर्भ है। इतना ही नहीं यह भी प्रचारित किया गया कि लड़की की माँ की पीठ बिल्कुल सफेद है। यह सब छिपाया गया। बाबू साहब को सब मालूम था। इसीलिये उन्होंने विवाह में अंधाधुन्ध खर्च किया। ताकि किसी को संदेह न हो। पैसे के बल पर सब कुछ हो सकता है। इतना दहेज दे दो कि लड़के वालों का मुँह बन्द रहे। वे कुछ बोल न सकें। लड़के का पिता लोभी है। इस प्रचार को प्रामाणिक मान लिया गया। क्योंकि लड़की कुछ दिनों पूर्व अंगारे से जल गयी थी। इससे उसके घुटने के पास एक छोटा सा सफेद निशान बन गया था। लड़के ने न आव देखा न ताव। लड़की की गर्दन कस दी। सुनते हैं बेचारी रोती रही। गिड़गिड़ाती रही। यह भी कहा—मुझे मार डालिये। मुझे मरने का कोई गम नहीं है। मैं तो लड़की हूँ। लड़कियों का भाग्य ही कुछ ऐसा होता है। किन्तु यह अपराध मत लगाइए। इससे मेरा

तो जो होगा उसकी मुझे चिन्ता नहीं। किन्तु मेरे नैहर का परिवार बदनाम हो जायगा। पिता जी सुनकर कितने दुखी होंगे। वे इस पर कभी विश्वास नहीं करेंगे। किन्तु लोगों को यह सहज विश्वसनी लगेगा। सारी बिरादरी में थू थू होगा। आपकी आज्ञा हो तो मैं स्वयं गंगा में छलाँग लगा लूं। आग में कूद जाऊँ। किन्तु आप मेरे परिवार को आरोप मुक्त कर दीजिए। कुलकलंक पीढ़ियों तक चलता है। मैं कुलकलंकिनी होकर नहीं मरना चाहती।

किन्तु उसके पति ने एक नहीं सुनी। उसके सिर पर शैतान सवार था। उसका भी क्या दोष कहिए? लड़के का मूल कहीं और था। यह लड़की को गर्भ हो या न हो उस लड़के के कारण कई लड़कियाँ बर्बाद हो चुकी थीं। इस समय भी वह एक ऐसे ही धंधे में फँसा था। कहते हैं अपनी भाभी से वह लड़का जिस ढंग से बर्ताव कर रहा था इस पर इस लड़की ने आपत्ति की थी। कभी हँसी-हँसी में कुछ कह भी दिया था। लड़की का स्वाभिमान कुछ कम न था।

लड़की के पिता फिर बाहर नहीं निकले। बाहर निकली उनकी लाश। बरसात बीतने को आ गया था। शरत् की रोशनी छाने लगी थी। किन्तु बाबू साहब के परिवार पर अँधेरे का भूत और गहरा हो गया। परिवार के सारे सुख पेड़ पर बैठे पक्षी से उड़ गये। उनकी बीमारी के कारण खेती भी ठीक प्रकार से नहीं हुई। इधर बाबू साहब भी चल बसे। लड़की के विवाह की सारी खुशियाँ दुख में बदल गयीं।

बाबू साहब की पत्नी विधवा भी हुईं। बूढ़ी भी हो गयीं। जीवित तो रहीं किन्तु मरी जैसी।

सन्त बाबू साहब के गाँव के पास से गुजर रहे थे। सन्त बाबू साहब को जानते थे। बाबू साहब कई बार सन्त के यहाँ आ चुके थे। जब आते सन्त को अपने यहाँ आने का निमन्त्रण दे जाते। उनका बड़ा आग्रह होता—'महात्मा जी कभी मेरी कुटिया को पवित्र कीजिए।' किन्तु सन्त बात टाल देते।

किसी गृहस्थ के यहाँ जाने में उनकी रुचि नहीं होती। बहुत आग्रह और जिद्द पर ही जा पाते।

आज अचानक बाबू साहब की याद ने सन्त को मर्माहत कर दिया। सब कुछ खतम हो गया। लोग भूल गये होंगे। शायद किसी को उस बारात की याद हो। बाबू साहब के मृदु व्यवहार और प्यार का। हाँ, जो भूला न होगा वह है एक निरपराध लड़की पर किया गया भ्रामक और असत्य आरोप। क्योंकि यह आरोप उन्हें सुख और सन्तोष देता था जो स्वयं अनेक पाप पंथ में डूबे थे। किसी ने सच्चाई जानने की कोशिश नहीं की। अगर लड़की के गर्भ की बात सच भी होती तो ऐसा क्या अपराध बनता था कि उससे एक पूरे परिवार का नाश कर दिया जाय? हरी भरी खेती पर ज्वालामुखी उलट दिया जाय। किन्तु कौन सुनता है? कुटिलता और द्वेष का सुख अनेक सुखों से अधिक सुख देता है। यहाँ वेस्वाद का स्वाद है। कुटिल प्रचारों में हर आदमी अपनी ओर से कुछ मिर्चमसाला लगाता है। स्वयं चखता है। दूसरों को चखाता है। काश, लोग किसी अच्छे कार्य में इस प्रकार का रस लेते। भगवान् की कथा में कुछ मिठास घोलते।

अचानक सन्त की विचार सरणी रुक गयी। लोग लोई और जोगिनी के बारे में भी क्या-क्या सोचते होंगे? कोई मुझसे कहता नहीं। किन्तु उनकी आँखों में उमड़ा व्यंग्य, हँसी और उपेक्षाएँ क्या कहती हैं? लोई शान्त रहती है। परिश्रम करती है। किन्तु फिर भी लोग उसे उचित और योग्य स्नेह देने से कतराते हैं।

सन्त ने उस गाँव की ओर देखा। किन्तु आगे बढ़ गये। किसी को पता नहीं चला कि सन्त के भीतर कौन-सी हलचल चल रही थी।

सन्त अनश्वरता के जिस दर्शन का बार-बार उपदेश करते हैं वह उनके भीतर की गहरी वेदना का दर्शन है। कष्ट सहन की युक्तिपूर्ण कंचुकी हैं। वेदना है। रहेगी। कोई व्यक्ति, समाज या देश उससे मुक्त नहीं हो सकता।

एक वेदना की दवा होगी दूसरी उपस्थित हो जायगी। दुख रक्तबीज है। घमोई की पौधों सा फैलता है। यह सच है तो उससे घबराकर क्या होगा? उसे स्वीकार करना होगा। इसीलिये सन्त ने लोई को स्वीकार किया। लोगों के कथन भय से वे उसे नष्ट होने नहीं दे सकते। यह प्रभु का अपकार होता।

सन्त ने एक बार मुड़कर लोई की ओर देखा। वह मंडली के सबसे पीछे थी। इसलिये दिखाई नहीं पड़ी। पता नहीं वह क्या सोच रही होगी? यह मण्डली और यह यात्रा उसे कैसी लग रही होगी? बेचारी कितना मौन रहती है। जैसे उसमें कोई जान न हो। पत्थर की प्रतिमा बनी। किन्तु जहाँ कोई कार्य आता है यह प्रतिमा गेंद-सी उछलने लगती है। तितली-सी भागती है। छौने-सी फुदकती है। हाँ, न कभी कूकती है, न कभी खिलखिलाती है।

ईश्वर ने मनुष्य को वहु आयामी बनाया है। एक ही व्यक्ति में कितने व्यक्तित्व छिपे हैं। एक ही अभिनेता अनेक भूमिकाएँ प्रस्तुत करता है। किन्तु इनमें उसकी संगता नहीं होती। उसका हँसना, रोना, गाना आदि सब निःसंग होते हैं। साधारण मनुष्य में यह निःसंगता कठिन है। अगर हो तो मनुष्य भी अभिनेता बन जाय। नहीं, नहीं। सच यह है कि हम सभी अभिनेता हैं। संसार रंगमंच है। प्रभु निदेशक है और हम अभिनेता। रूप बदल-बदल कर अभिनय करनेवाले। हाँ, इसके दर्शक भी हमीं हैं। वह निदेशक भी दर्शक है। हर निदेशक दर्शक भी होता है। वह अभिनेता की पीठ ठोंके या न ठोंके अपनी पीठ अवश्य ठोंकता है। उसकी प्रस्तुति कितनी अच्छी रही।

किन्तु इस सृष्टि अभिनय का निदेशक भयानक है। कभी दर्शक की परवाह नहीं करता। किसी का सुनता भी नहीं। यह भी नहीं देखता कि अभिनय में पूरी तैयारी है या नहीं? मंच पर ही सजाता है। वहीं वजाता है और वहीं नचाकर खेल खतम कर देता है।

इस खेल में कैसे-कैसे लोग शामिल हो जाते हैं। कहाँ यह साधु मण्डली और कहाँ यह लोई कितनी अटपटी है यह संरचना। किन्तु है। एक बार जो

लग गया वह छूटता नहीं। छूटे दागों के भी निशान बने रहते हैं। यह लोई भी अब सन्त समाज का एक अंग बन गयी है। इसे छोड़ा नहीं जा सकता है।

सन्त ने फिर सोचा—मैंने लोई की मुक्ति चाही थी। गया था लोई को मुक्त कराने। किन्तु स्वयं बँधने के कगार पर आ गया। जे बांवा ते छछंद मुक्ता बाँधनिहारि बँधा।...सुतदारा का किया पसारा।

साधु समाज धीरे-धीरे बढ़ रहा था।

●

बाहर भीतरि पानी...

संसार एक नदी है। हम सभी इस नदी के जलचर हैं। इस नदी में बह रहे हैं। कभी ऊपर और कभी नीचे बहते हैं। हमारे भीतर भी एक नदी है। एक मछली है जो नदी में तड़प रही है। पानी में रहकर भी प्यासी है। बड़ी मछली छोटी मछली को निगल रही है। सभी मछलियाँ छोटी हैं। बड़ी हैं। इन मछलियों को काल का मगरमच्छ दबाए है। कभी निगलता है। कभी उगलता है। फिर भी हम नदी को चाहते हैं। नदियों के किनारे गाँव बसाते हैं। बाढ़ का इन्तजार करते हैं। सूखने पर सूखते हैं। लहराने पर लहराते हैं। कभी कल-कल खल-खल। कभी तपती बालू की आग। नीरस और हृदयहीन।

वर्षा का मौसम आरम्भ हो गया। अभी नदी शान्त है। स्वाभाविक गति से चल रही है। हमें यह स्वाभाविकता पसन्द नहीं है। हम नदी के उतावलेपन के लिये परेशान हैं। नदी लहराए। उसके संग-संग हम भी लहराएँ। जितनी छोटी नदी होती है उतनी ही तेजी से लहराती है। घहराती है। जब घहराती है तो किसी की एक नहीं सुनती। सब उजाड़ देती है। खेत, खलिहान, मकान, दूकान, पेड़, पौधे सबको बिखरा देती है। उजाड़ कर उड़ा देती है।

गोमती, सई देखने में छोटी नदियाँ हैं। किन्तु बरसात में पागल बन जाती हैं। लेकिन हम तो आदी हैं। दुख सहने के आदी। बाढ़ के आदी। बाढ़ न आये तो हम सन्तुष्ट नहीं होते। आये तो परेशान होते हैं। अजीब सम्बन्ध है हमारा और नदी का। धर्मराज भी। यमराज भी। रोज की धर्मराज नदी बरसात में यमराज बन जाती है। किन्तु मनुष्य है कि इस नदी को छोड़ नहीं पाता। छोड़कर जाये भी तो कहाँ ? पानी में प्यासी हाँफती मछली कहाँ जाती है ? नदी के बाद उसकी एक ही जगह है यमराज का घर। मृत्यु प्रदेश। जहाँ

हाँफ कर भी आज तक कोई बचा नहीं। न तो बच सकता है। इसलिये हाँफ कर भी मछली पानी में रहना चाहती है। जीने की बलवती इच्छा ही तो जिजीविषा है।

सन्त को लग रहा है—नदी इस वर्ष फिर उमड़ेगी। पागल बनेगी। बड़े-बड़े दरख्तों को गिरा देगी। मकानों को अपना बना लेगी। लोग परेशान होंगे। दाने-दाने के लिये बेहाल होंगे। रक्षा की एक एक अँगुली भूमि की खोज करेंगे। किन्तु नख के बराबर भी भूमि खाली नहीं बचेगी। परछाही भी बहती चली जायेगी।

सन्त ने आकाश की ओर देखा। पूरा आकाश बादलों से ढँक गया था। पानी बरसना शुरू हो गया था।

संत मंडली ने पास की एक सराय में डेरा डाल दिया। वर्षा में तंबू या पेड़ के नीचे संभव न था। संत ने जान बूझकर यहाँ रहने का निश्चय किया है। बाढ़ की खबरें आने लगी थीं। वर्षा तेज हो रही थीं। संत ने देखा गरीब अति-वर्णाश्रमी लोगों के घर गाँव के दखिन है। घर क्या हैं सब झोपड़े हैं। युगों से वे इन मिट्टी फूस के झोपड़ों में रहते हैं। गिरता है फिर उठाते हैं। उनके कपड़ों में पेबंदों की भरमार है। वैसे घरों में भी पेवंद लगे हैं। जगह-जगह फटे, कटे, टूटे। सूर्य की रोशनी तपाती है। जाड़ा अकड़ाता है। वर्षा का पानी भिगोता है। रातें जागकर बीतती हैं। चूते छप्परों के नीचे भीगते लोग। फिर भी इन्हें घर कहते हैं। इन घरों के प्रति उनमें मोह और ममत्व है। जैसे मनुष्य हाड़ मांस के इस नशवर शरीर से मोह करता है। काल अधीन होकर भी ममता में डूबा रहता है। सनातन को असत्य और मिथ्या को सनातन समझता है।

सन्त के लिए कुछ भी नया न था। स्वयं उनकी जिंदगी भी ऐसे ही घरों में बीती है। गरीबी और अभाव उनके लिए न नया था। न दर्शनी। किन्तु वे बाढ़ के आदी नहीं थे। बाढ़ इन गाँव की अपनी विशेषता थी। नदी किनारे का सुख-दुःख थी।

पानी का जमाव बढ़ने लगा। पहले खेत डूबे। फसलें डूबीं। लोगों ने जानवरों को खोल दिया। जहाँ ऊँची जगहें पाओ। चले जाओ। इस समय कोई नहीं है। संकट काल में कोई किसी को नहीं पूछता। जानवर भी मनुष्य के समान आत्मरक्षा चाहते हैं। खुले जानवर इधर-उधर भागने-भटकने लगे। जिसे जिधर मौका मिला भाग चला। ऊँचे टीलों के पेड़ों का सहारा लिया। जिन मालिकों ने उन्हें पाला था। उनसे काम लिया था इस समय वे स्वयं संकट में थे। बाढ़ प्रतिवर्ष आती है। किन्तु इस साल की बाढ़ कुछ विशेष जान पड़ती है। लगता है इन्द्र ने समूह बाँधकर पूरी शक्ति से सन्त के दर्शन की इच्छा की है। इसलिए न वर्षा थमने का नाम लेती है। न बाढ़ रुकना चाहती है। किन्तु सन्त तैयार हैं। उन्होंने सभी साधुओं से आग्रह किया। सभी साधु भजन-पूजन, छापा-तिलक छोड़कर बाढ़ से रक्षा में लग जायँ। भक्ति का अर्थ है लोकसेवा। नर-नारायण की सेवा।

साधु समाज बिखर गया। वह जानता था यह संकट चन्द दिनों का है। सबने दो-दो में अपने को बाँट लिया। साधु समाज चला गया। रह गये सन्त और लोई। सदा पीछे रहनेवाली लोई अब आगे थी। सामने थी। वह किसके साथ जाय? मण्डली में और कोई स्त्री तो थी नहीं। सन्त ने देखा लोई अकेली है। किन्तु किसी कार्य के लिये सन्नद्ध है।

सन्त ने पूछा—तुम किसके साथ जाओगी लोई? सभी साधु चले गये। केवल तुम्हीं रह गयी।

लोई ने बेझिझक कहा—'मैं ही क्यों तुम भी तो हो। जहाँ तुम रहोगे वहीं मैं भी रहूँगी। जहाँ तुम जाओगे वहीं मैं भी जाऊँगी। माया की शोभा भगवान् के साथ ही है। भगवान् माया के द्वारा ही अपने को फैलाता है।' यह कहकर लोई जोर से हँसी। भक्त न हो तो भगवान् को कौन पूछे?

सन्त मौन रहे। उन्होंने लोई की हँसी में साथ नहीं दिया। यह कोई हँसने की बात भी नहीं है। माया क्या कोई हँसी-खेल है? जो हरि का हरण

कर लेती है वह भला सांसारिक लोगों को क्या समझेगी ? किन्तु यह लोई ऐसे बोल रही है जैसे वह कुछ हो ही न। आखिर है तो स्त्री ही। क्या जाने कि संसार माया के कारण कितना कष्ट पा रहा है।

सन्त ने लोई से कहा—लोई, तुम यहीं रुको। मैं गाँव के निचले हिस्से की ओर जाकर देखता हूँ। कौन सा साधु उधर गया है ? क्या कर रहा है ? साधुओं में एक से एक आलसी और काहिल हैं। लोक सेवा से डरने वाले। परिवार और बच्चों को अछूत समझने वाले। पूजा दिन-दिन भर कर सकते हैं। किसी बीमार की सेवा से भागते हैं। बेचारे नहीं जानते कि प्रभु हमें कहाँ बुला रहा है ? बीमार-बीमार नहीं है। इसके बहाने प्रभु हमारी परीक्षा ले रहा है।

अँधेरा बढ़ रहा था। पानी भी बढ़ रहा था। सामने जली आग की लपटें कभी धीमी पड़तीं। कभी हवा के तेज झोंकों से फिर सजग हो जातीं। समस्या थी। इस आग को बचाए रखने की। वहाँ प्रकाश का कोई साधन न था। बस वही आग जल-जल कर प्रकाश करती। इसी प्रकाश में कभी लोई सन्त को देखती। कभी सन्त लोई को। आग के प्रकाश में दोनों के चेहरे की चमक बढ़ जाती। लोई तो ऐसे चमकती जैसे किसी दुल्हन को पीरी चड़ाई गयी हो।

यह चतुर्दशी की रात है। कल अमावस्या है। भयानक अँधेरे की रात। हम सबके जीवन में एक अँधेरा है। जलने वाली आग उस अँधेरे को कुछ-कुछ काटती है। सामने पीपल का विशाल वृक्ष दूर-दूर तक छितराया हुआ था। पानी उसकी जड़ों में टकराने लगा था। ऊपर भी टिप···टिप···टिप बरस रहा था। जाने कितने प्रकार के जीवों ने वहाँ सहारा ले रखा होगा। लोई प्रसन्न थी। यद्यपि चारों ओर आतंक का वातावरण था। दुर्भेद्य अन्धकार में पानी बढ़ रहा था। किन्तु लोई की प्रसन्नता का कारण दूसरा है।

वाराणसी में उसे कभी ऐसा मौका नहीं मिला। एकान्त में सन्त से बातें कर सके। जब मिला था तो वह दूसरी स्थिति में थी। तब उसका मन वासना विकल था। आज लोई में किसी प्रकार की वासना नहीं है। काल प्रवाह में

वासना की बाढ़ बह गयी। किन्तु कोई दुख उसे साल रहा है। क्यों जी रही है लोई ? उसके जीवन का क्या उद्देश्य है ? उसका कौन है ? पहले सोचती थी बच्चों के लिये जीती हूँ। अब बच्चे भी बड़े हो गये। इतने बड़े और समझदार कि उन्हें साथ रखने की जरूरत नहीं है। वे स्वयं अपना मार्ग तय करने लगे हैं।। दोनों साधना में लग गये हैं। साधना भी ऐसी वैसी नहीं। इतना कमाल किया है कि उन्हें कमाल-कमाली कहते प्रसन्नता होती है। बहन (जिसे हम योगिनी के रूप में जानते हैं) का कुछ पता नहीं। मरती है या जीती है ? बेचारी ने कितना दुख भोगा ?

बहन की याद आते ही लोई को अपना दुख भूल गया। जैसे पहाड़ के सामने खड़ा ऊँट अपने को अत्यन्त तुच्छ महसूस करता है। सन्त को चिंता थी लोई को कहाँ और किसके साथ भेजें ? कोई रास्ता दीख नहीं रहा था। पीपल पर बैठे उल्लू की आवाज ने दोनों का ध्यान आकर्षित किया। लोई ने सन्त से कहा—उल्लू बोल रहा है। यह शुभ नहीं है।

सन्त ने कहा—तुम शुभ-अशुभ देख रही हो। लेकिन तुम इस उल्लू के संकट को नहीं समझ रही हो ? उल्लू की आवाज में भय है। निश्चय ही वह किसी संकट में होगा। उसे खाना न मिला हो। भूखा हो। अपने किसी बड़े दुश्मन पर नजर पड़ी हो। ईश्वर की सृष्टि में कोई भी दुख से मुक्त नहीं है। उल्लुओं के भी दुश्मन होते।

बहुत सम्भव है वर्षा के कारण उसके पंख भीग गये हों। उसे उड़ने में असुविधा हो। उड़े भी तो कहाँ जाय ? चारों ओर पानी ही पानी है। न ठहरने वाला पानी। पानी न खुद ठहरता है न किसी को ठहरने देता है। सभी इस पानी में बह रहे हैं। उल्लू को सब दीखता है। जैसे-जैसे हमारी आँखों पर अँधेरा इन्हें बेकार करता है वैसे-वैसे उल्लू की आँखें देखती हैं। याद रखो अँधेरे में या तो ऊल्लू देखता है या कोई योगी, महात्मा, आध्यात्मिक पुरुष। सम्भव है उल्लू ने किसी भयानक साँप को देखा हो। बाढ़ ने सभी जीवों को अपने निवास से बाहर कर दिया है। बाढ़ का सर्वप्रथम प्रभाव साँपों, चूहों

आदि बिलों में रहने वाले जीवन पर पड़ता है। साँप बाढ़ से पीड़ित होगा। कहीं शरण खोज रहा होगा। इस समय वह इतना परेशान होगा कि किसी का कुछ बिगाड़ नहीं सकता। किन्तु उल्लू साँप की इस परेशानी को, दुख को नहीं समझ कर भयभीत है। चिल्ला रहा है। जैसे भय केवल उसके हिस्से पड़ा है। दूसरों को कोई भय नहीं है। उल्लू नहीं जानते कि भय देने वाला स्वयं भी भयभीत रहता है। भय ही भय का प्रचारक है। जैसे प्रेमप्रेम का।

लोई को कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा था। उसे सन्त की बानी सुनने में अच्छी लग रही थी।

सन्त ने पूछा—लोई तुम डर गयी हो क्या ?

लोई ने उत्तर दिया—नहीं। सन्त की उपस्थिति में डर कैसा ? मैं तो उस उल्लू के बारे में सोच रही थी जो सन्त की उपस्थिति में भी डरा है।

हवा का चलना प्रायः बन्द हो गया था। वर्षा तेज हो गयी थी। हवा का झोंका न पाकर आग शान्त हो चुकी थी। उधर साँप और उल्लू दोनों बोल रहे थे। लगता है दोनों ने एक दूसरे को देख लिया था। दोनों एक दूसरे से भयभीत हैं। दो महा शक्तियाँ आपस में भिड़ने के लिये सेना का आह्वान कर रही हैं। शस्त्र युद्ध के पहले वाणी युद्ध कर रही हैं।

लोई को लगा कि दोनों लड़ते-लड़ते इधर आ गये तो क्या होगा ? वह जान देकर भी सन्त को बचायेगी। साँप को पकड़ लेगी। उसे सन्त की ओर बढ़ने नहीं देगी।

अचानक बड़े जोरों से बिजली तड़की। सारा क्षेत्र प्रकाश से भर गया। शायद सन्त और लोई ने एक दूसरे को देखा। नहीं, बिजली की तड़क इतनी तीव्र थी कि लोई अत्यन्त घबरा गयी। डर उसके पोर-पोर में समा गया था। इसका एक कारण और था। बिजली के प्रकाश में लोई ने देखा एक अत्यन्त जहरीला साँप फन काढ़े बैठा है। शायद इधर ही आना चाहता हो। वह साँप···चिल्ला कर सन्त की ओर भागी। अँधेरे में कुछ ठीक अनुमान न होंने

के कारण वह सन्त से टकरा गयी। टकरा कर सन्त की गोद में गिर गयी। वह कुछ-कुछ बेहोश हो गयी थी।

सन्त ने उसे धीरे से जमीन पर लुढ़काते हुए कहा—बिजली से इतना डरती हो लोई ? बेचारा कहीं पानी से डूबे पेड़ पर गिरकर स्वयं नष्ट हो गया होगा। हो सकता है किसी के घर पर भी गिरा हो। ऐसा हुआ होगा तो बुरा है।

सन्त ने साँप को नहीं देखा था। क्यों कि साँप उनकी पीठ के पीछे था। लोई सामने थी। असल में वह सन्त को सावधान करना चाहती थी। सन्त ने समझ लिया दुख का मारा कोई साँप यहाँ बैठा है। बाढ़ ने उसके घर नष्ट कर दिये हैं। उसे अपने घर से उजड़ना पड़ा है। बेचारा शरणार्थी होकर इधर-उधर भटक रहा है। और हम हैं कि शरणार्थी से भी डर रहे हैं। हो सकता है यहाँ मेढक को देखकर आ बैठा हो। किन्तु मेढक है कि भाग गया। उसकी पकड़ के बाहर हो गया। कोई चूहा भी हो सकता हैं। बाढ़ के कारण बहुत से जीव यहाँ इकट्ठे हो गये हैं।

अँधेरे में कुछ दीख नहीं रहा था। सन्त ने लोई को पुकारा। कोई आवाज नहीं आयी। उन्हें लगा कि लोई भय से बेहोश हो गयी है। वे साँप का क्या करते ? दिखाई भी नहीं पड़ रहा था। हो सकता है चला गया हो। अगर हो भी तो हम कर ही क्या सकते हैं ? अँधेरे में इधर-उधर भटकना ठीक नहीं। मनुष्य को देखकर साँप भागता है। वह मनुष्य का सामना नहीं करना चाहता। उसे सभी मनुष्य अपना शत्रु दीखते हैं। साँप तभी काटता है जब उसे विश्वास हो जाय कि अब भागते नहीं बनेगा। हम मरेंगे। तो क्यों नहीं हमीं सर्वप्रथम प्रहार करें। काटना साँप की मजबूरी है। वह किसी को दौड़ाकर नहीं काटता है। चाँप पड़ने पर या अत्यन्त सकते में आने पर ही काटता है। वरना उसे किसी को काटने का शौक नहीं होता है।

सन्त ने अँधेरे में पड़ी लोई को हिलाया—उठो लोई, चलो चलें। गाँव की ओर देखें क्या हो रहा हैं ? पानी कहाँ तक पहुँचा है ? किन्तु लोई में कोई प्रतिक्रिया

नहीं हुई । सन्त समझ गये । लोई अभी तक मूछित है । उन्होंने उसी अँधेरे में उसके मुँह पर हाथ रखा । उसके दाँत चढ़े थे । सन्त ने जोर से उसकी नाक दबायी । एक हाथ नाक और दूसरा मुँह पर रखा । लोई में हलचल हुई । उसने मुँह खोल दिया । बोली—घबराओ नहीं । मैं ठीक हूँ । थोड़ा सो गयी थी । डर भी लगा था । लगा जैसे साँप मुझे बाँध लेना चाहता है । बाँधकर जगह-जगह अपने दाँत गड़ा रहा है । अपनी लम्बी जीभ निकालकर मुझे चाट रहा है । मेरे ओठ सफेद हो गये हैं । हाय, हाय । मेरे होठों को एक विषधर नाग चाटे । हे प्रभु, यह अभागिन फिर भी मरी नहीं । जब तुम्हारी ऐसी अकृपा है तो मुझे क्यों जिलाए हो । आओ भाई साँप, आओ । मुझसे गलती हो गयी जो मैं डरी । तुम तो मेरे मित्र हो । सखा हो । मुझे काट लो । काटकर मेरा कल्याण करो ।

लोई पागल की तरह बक रही थी । क्या बक रही थी उसे पता नहीं । लगता है वह अब भी डरी थी ।

सन्त ने अत्यन्त स्नेह से, करुणा से उसके माथे पर हाथ रखा । उसका माथा गर्म था । अधिक तो नहीं । किन्तु जैसे जड़ैया बुखार की शुरूआत हो । सन्त ने माथे से हाथ हटाना उचित नहीं समझा । कैसी हो लोई ? क्या जाड़ा भी मालूम होता है ? सिर पर सन्त का हाथ पाकर लोई अत्यन्त प्रसन्न हुई । जैसे उसे स्वर्ग का साम्राज्य मिल गया हो ।

अँधेरा कामियों, लोभियों और तस्करों का स्वर्ग होकर आता है । अँधेरे को पाकर सन्तों के मन में भी काम का उदय हो जाता है ।

लोई का अतृप्त यौवन बाढ़, वर्षा और अँधेरे के इस रहस में हिलोरें मारने लगा था । उस पर सन्त का स्नेहिल परस पाकर वह उछलने लगी । उसे मजाक सूझा । उसने अत्यन्त वक्र भाषा में कहा 'तो क्या सन्त जी के पास मेरे जाड़े की कोई दवा है ?'

किन्तु सन्त ने उसके वक्रता भरे मजाक पर कोई ध्यान नहीं दिया । सीधा सरल मन समझ न सका कि लोई क्या कह रही है ? उन्होंने सहज ढंग से

कहा—'यहाँ तो एक कम्बल के अतिरिक्त कुछ भी नहीं हें।' यह कहते हुए सन्त ने उस कम्बल को जिस पर वे बैठे थे अपने पैरों के नीचे से खींच लिया। खींच कर धीरे से लोई पर ओढ़ा दिया।

लोई निराश हुई। वह बोली कुछ नहीं। लेकिन उस कम्बल का रोम-रोम उसे बाणों सा बेधने लगा। वह नहीं चाहती थी कि उसके और सन्त के बीच यह कम्बल व्यवधान बने। अभी तक लोई और सन्त के बीच एक मुलायम अँधेरा था। अँधेरे के बिखरे असंख्य परमाणुओं में दोनों अलग थे। एक दूसरे से सटे थे। किन्तु कम्बल परमाणु नहीं ठोस है। काँटों भरा है। कोई नारी देह ऐसे कम्बलों से अपना शरीर नहीं ढँक सकती है। लोई को साँप काट लेता तो वह प्रसन्न होती। किन्तु यह कम्बल उसे बबूल के काँटों और साँप केदांतों से भी भयंकर लग रहा था।

लोई ने धीरे से कम्बल को हटाते हुए कहा—यह क्या करते हो? क्या तुम सचमुच ही मुझे बीमार बना देना चाहते हो? क्या मेरी बीमारी से तुम्हें कोई लाभ होगा?

सन्त को लगा कि लोई अब तक सामान्य नहीं हो पायी है। इसे किसी भयानक भय ने आक्रांत कर रखा है।

उन्होंने अँधेरे में टटोल कर लोई का हाथ अपने हाथों में लेकर पूछा—'कैसा मन है लोई? क्या तुम अभी भी डर रही हो? मैं तो हूँ ही। मेरे यहाँ रहते तुम्हें डरना नहीं चाहिए। इसीलिये मैं यात्रा में किसी स्त्री को साथ नहीं लेता। एक तो साधु धर्म से स्त्री स्वभाव का मेल नहीं है। दूसरे कोई भी संवेग उन पर इतनी जल्दी काबिज हो जाता है कि फिर परेशानी हो जाती है। हम चले थे दूसरों का उपचार करने। अब स्वयं हमें ही उपचार की आवश्यकता हो गयी। साधु समाज हमारा इन्तजार कर रहा होगा। पता नहीं पानी ने कौन सा कहर ढाया होगा?

यह कहते-कहते सन्त कुछ परेशान हो गये। उनके ललाट पर बल पड़ गया।

लोई पर सन्त की बातों का जैसे कोई असर नहीं हुआ। वह यथावत् पड़ी रही। कोई प्रतिक्रिया नहीं की। जैसे उसने कुछ सुना न हो या पुनः बेहोश हो गयी हो।

कुछ क्षण की शान्ति के बाद लोई बोली—नाराज न हो सन्त! तुम मेरी स्थिति नहीं समझ सकते। एक तो पुरुष नारी की पीड़ा समझने में अक्सर भूल कर बैठते हैं। दूसरे सन्त। साधक। साधक का मतलब है जिसने माया, ममता, मोह आदि से मुक्ति पा ली है। जिसके हृदय में पत्थर के प्रभु का निवास है। यह सही है कि तुम पत्थर की पूजा नहीं करते हो। यह और भी बुरा है। करते तो तुम देखते कि पत्थर में भी प्राण होते हैं। कोई भी पत्थर ऐसा नहीं कि सर्दी-गर्मी से प्रभावित न हो। किन्तु तुम्हारा पत्थर तो दस दरवाजों के भीतर बन्द है। उसे बाहर के किसी ऋतु परिवर्तन का पता नहीं चलता है। उसे न सर्दी सताती है। न गर्मी ताप देती है। तुम्हारा मार्ग उलटा है। तुम योगी और साधक गर्मियों में पंचाग्नि सेवन करते हो। सर्दियों में जल समाधि लेते हो। भला ऐसे में नारी मन की कोमल भावनाओं को तुम कैसे समझ सकते हो? तुम्हारे भीतर की नदी जल चुकी है। पानी कोयला हो गया है। मछलियाँ पेड़ पर बास करने लगी हैं। पक्षियों ने अन्यत्र बसेरा ले लिया है। किन्तु स्त्री ऐसा नहीं कर सकती। उसकी नदी में पानी ही नहीं दूध भी है। मधु भी है। घी की चिकनाहट भी है। दही का गाढ़ापन भी है। वह जमती भी है। पिघलती भी है। समता और समरसता नारी स्वभाव के विरुद्ध है। वह हँसती है तो खुलकर हँसती है। हँसती ही चली जाती है। रोती है तो उसके रुदन से नदी बन जाती है। शायद इसीलिये अधिकांश नदियों के नाम स्त्रियों के नाम पर हैं—गंगा, यमुना, कृष्णा, कावेरी, गोमती, सरस्वती आदि।

सन्त मौन होकर लोई की बातें सुन रहे थे। उन्होंने लोई को कभी इतना समझदार नहीं समझा था। वे उसे एक भावुक और स्वार्थी स्त्री से अतिरिक्त कुछ नहीं समझते थे। इसीलिये अभी तक उन्होंने लोई पर दया की थी। वे लोई को जितना छोटा समझते थे उतनी छोटी वह है नहीं।

लोई ने कहा—सन्त तुम्हारी समाज सेवा तुम्हारा स्वधर्म नहीं, लोक संग्रह है। तुम समाज सेवा करुणावश नहीं करते। तुम वाराणसी से चलकर आज यहाँ इसलिये नहीं आये हो कि तुम्हें यहाँ के ग्रामीणों के प्रति दया, करुणा और भाई जैसा स्नेह है। तुम्हारे में ये गुण होते तो तुम्हें यहाँ आने की जरूरत नहीं थी। क्योंकि सेवा की जरूरत कहाँ नहीं है? धरती का कौन सा कोना दुख से अछूता है? अगर दुख सर्वत्र है तो सेवा की आवश्यकता भी सर्वत्र है। सबको है। किन्तु तुम तो यहाँ आये हो। इसीलिये कहती हूँ यह तुम्हारा स्वधर्म नहीं समाज धर्म है। स्वधर्म की प्रेरणा भीतरी होती है। धर्म की प्रेरणा बाह्य है। बाह्य भी महत्वहीन नहीं है। मैंने इतना इसलिये कहा कि तुम्हारी साधना का सारा जोर अन्तर साधना पर है। कहीं तुम इस सेवा को भी आन्तरिक न समझ लो। समाज की सेवा मूर्ति पूजा का ही एक प्रकार है। असंख्य पीड़ितों के रूप में स्वयं प्रभु पीड़ा भोग रहा है। सहायता की माँग कर रहा है। जो समाज की सेवा करता है उसे मैं मूर्ति पूजक ही मानती हूँ। अचेतन नहीं सचेत मूर्ति की पूजा।

सन्त कुछ बोलें इसके पहले ही जोर की आवाज हुई। लगता है आस-पास ही कोई मकान गिरा है। पानी बरस रहा था।

अँधेरे में कुछ पता नहीं चला कि किधर क्या हुआ?

सन्त मौन रहे।

लोई ने कहा—सन्त मेरी एक बात और सुन लो। फिर शायद कभी अवसर मिले या नहीं। तुम्हें कहाँ फुर्सत है कि तुम मेरी पीड़ा सुन सको। तुम्हें तो अभी भी लग रहा होगा कि मैं स्वार्थिनी हूँ। नीच हूँ। इस वर्षा और बाढ़ में सेवा का अवसर छोड़कर अपना दुखड़ा लिये बैठी हूँ। सच है। देखने में अति सच है। किन्तु वास्तविकता कुछ और है। जैसे बीमार व्यक्ति दूसरों की सेवा नहीं कर सकता उसी प्रकार जिसका मन अस्थिर है। भीतर से टूटा है वह दूसरों की सेवा क्या कर सकता है? मैं समझती हूँ सन्तों का समाज को सबसे बड़ा दान यही है कि वे लोगों के मन के रोग को दूर करते हैं। मन को मन से जोड़ने

का सूत्र देते हैं। वे एक प्रकार के मन वैद्य हैं। उनकी बानी मनोरोग की औषधि है।

मुझे किसी भी पीपल से डर लगता है। लोग पीपल के बहुत से गुण गाते हैं। मुझे हर पीपल भुतहा लगता है। अभी उल्लू और साँप बोल रहे थे। मैं डरी थी। मुझे उस दिन की याद आ गयी। याद है तुमने मुझे पीपल के पास ही उस तुरुक से बचाया था। किन्तु कहानी उससे भी पहले की है।

मैं रोज एक पीपल के पास जाती थी। मैंने सुना था कि पीपल में भगवान बसते हैं। पीपल वासुदेव है। इसलिये जो इसमें रोज पानी देता है उसकी सारी मन कामना पूरी होती है। साक्षात् भगवान् उसकी पूजा से प्रसन्न होकर दर्शन देते हैं। उसकी इच्छा पूरी करते हैं। यह सुनकर मैं रोज ही एक पीपल की पूजा करती। पानी देती। फेरा लगाती।

यह पीपल गाँव के दक्खिन है। वहाँ दूर-दूर तक और कुछ नहीं है। केवल दो पीपल के पेड़ आज भी खड़े हैं। कहते हैं यहाँ कभी मुर्दों को गाड़ने की जगह थी। जो लोग मुर्दों को किसी कारण से गंगा नहीं ले जाते वे यहीं मुर्दा गाड़ते या जलाते। छूतक होने पर यहीं घंट भी बाँधा जाता था। मैं देखती बराबर ही कोई न कोई हड़िया वहाँ लटकी रहती। कभी लोग वहीं आकर बाल भी बनवाते। हड़िया टाँगते। पानी देते।

मैं निडर रहती। भला जहाँ भगवान् रहते हों वहाँ डर कैसा? एक दिन मुझे गाँव की एक अधेड़ औरत ने बताया वहाँ जाती है तो सावधान रहना। वहाँ भूतों का डेरा है। न जाने कब से कितने ही प्रेत वहाँ निवास करते हैं। असावधानी हुई कि प्रेत पकड़ लेते हैं। कई लोग इसी में मर चुके हैं।

शायद मुझे यह बात डराने के लिये कही गयी थी। किन्तु मैं इससे डरी नहीं। अपना काम करती रही। गर्मियों के दिन थे। धूप प्रचंड हो रही थी। हवा लू बनकर बहने लगी थी। मुझे उस दिन पीपल के पास पहुँचने में देर हो गयी। ऊपर

सूरज और नीचे धरती तप रही थी। तेज धूप के कारण पूरा गाँव अपने-अपने घरों में बन्द था। गाँव के खेतों में एक भी जानवर नहीं थे। गर्मी से परेशान वे भी अपने घरों को लौट गये थे। मैं जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाती पीपल की ओर बढ़ी जा रही थी। मन आशंकित था। इसी बीच एक गिद्ध पीपल के पेड़ से उड़ा। कहीं कोई पशु मरा था। इसलिये पीपल पर बहुत से गिद्ध बैठे थे। मुझे लगा कि उस पीपल के नजदीक काले कपड़े में कोई और घूम रहा है। वह कभी सामने आता और कभी तने की आड़ में छिप जाता। ऐसा मैंने कभी नहीं देखा था। निश्चय ही आज कोई प्रेत मेरी प्रतीक्षा कर रहा है। वह मुझे पकड़ लेगा। मैंने राम राम रटना शुरू कर दिया। मेरे पीपल के पास पहुँचते ही प्रेत तने की आड़ से बाहर निकला। उसने मुझे पकड़ लेना चाहा। उसकी शकल बड़ी भयावनी थी। विकृति से भरा था उसका चेहरा। पूरा शरीर काला। बड़े-बड़े बाल। लम्बी-लम्बी नखें। उसने झपट कर मुझे पकड़ लिया। मैं घबरा गयी। अभी कुछ करूँ या बोलूँ कि उसने वह काला कपड़ा मेरे मुँह पर डाल दिया। कपड़े में भयानक बदबू थी। मैं डरी तो पहले से ही थी। उस बदबू से और भी घबरा गयी। साँस लेने में भी कठिनाई हो रही थी। मैं बेहोश हो चली। बेहोश होकर जमीन पर गिर गयी। बेहोश होने के पूर्व इतना अवश्य सुन सकी 'दुष्ट छोड़ दे इस औरत को।' यह कौन कह रहा था पता नहीं। हाँ, इतना अनुभव हुआ कि कोई भाग रहा है। बगल के नाले की ओर दौड़ रहा है।

मैं कुछ देर यों ही पड़ी रही। होश आने पर मैंने कपड़ा हटाया। डर भी रही थी। पता नहीं प्रेत क्या करे? किन्तु आँख खोलने पर वहाँ कुछ भी नहीं था। यह नहीं समझ में आया कि कुछ हुआ भी था कि सब मेरा भ्रम था।

तब से मैंने पीपल की पूजा बन्द कर दी। उधर जाना ही छोड़ दिया। मन कामना पूरी हो या न हो। मैं अब उधर देखूंगी भी नहीं। आज भी उस घटना की याद मन को डरा देती है। मेरा विश्वास है कि पीपल पर बैठकर

प्रेत लोग प्रलय की प्रतीक्षा करते हैं। मुक्ति का इन्तजार करते हैं। पीपल में भगवान् नहीं भूत रहते हैं।

लोई की कहानी पूरी हो रही थी उधर पानी तेजी से सराय की सीढ़ियाँ चढ़ रहा था।

सन्त ने कहा—उठो लोई। अब यहाँ बैठना ठीक नहीं। चलो गाँव की ओर देखें पानी का क्या हाल है ?

सन्त यह कह ही रहे थे कि कुछ लोग ऊपर आ गये। नहीं बाबा, नहीं। कहीं जाने की जरूरत नहीं पानी तेजी से बढ़ रहा है। आइए हम लोग सीढ़ियों से ऊपर चलें। यहाँ तो पानी बढ़ रहा है।

सन्त असमंजस में पड़ गये। क्या करें ? गाँव का क्या हाल है ?

उन लोगों ने बताया कि गाँव का दक्खिनी हिस्सा तो बिलकुल डूब चुका है। वहाँ तो अब नावें आ गयी हैं। धीरे-धीरे नावें बढ़ रही हैं। नावों से ही लोगों को भोजन तथा दूसरे सामान वितरित किये जा रहें हैं। मवेशियों और आदमियों ने ऊँचे टीलों और ऊँचे-ऊँचे रास्तों पर सहारा ले लिया है।

सन्त ने कहा—मैं रुक नहीं सकता। आप में से कोई मेरे साथ चले। देखूँ क्या स्थिति है ? मेरी कहाँ जरूरत है ? यह कह कर सन्त आगे बढ़े। पानी घुटनों तक आ चुका था। लोई बोली मैं भी चलूंगी। मैं यहाँ अकेली नहीं रह सकती। मैं सन्त को अकेला नहीं छोड़ सकती।

सन्त ने मना करना चाहा किन्तु जोर नहीं दिया। वे जानते थे लोई मानने-वाली औरत नहीं है।

इधर सबेरा भी हो चला था। थोड़ा-थोड़ा प्रकाश आने लगा था। सन्त पानी में उतर गये। पीछे थी लोई और एक आदमी और। साथ के व्यक्ति के हाथ में एक लाठी थी। उसने कहा—नहीं, बाबा। आप मुझको आगे जाने दें। यह कहता हुआ वह सन्त के आगे हो गया।

संत ने देखा चारों ओर पानी ही पानी है। प्रलय का दृश्य व्याप्त है। पता नहीं खंड प्रलय होगा या पूर्ण प्रलय। तोनों व्यक्ति गाँव की ओर बढ़ने लगे। किंतु पानी का बहाव बढ़ रहा था। साथ के व्यक्ति ने कहा—बाबा, आगे जाना नहीं हो सकता। हम लोग लौट चलें।""धारा तेज हो रही है। पाँव टिकाना कठिन लग रहा है। ये बातें हो ही रही थीं कि उधर से एक छप्पर बहता जा निकला। लकड़ियाँ तो न जाने कितनी बही जा रही थीं।

पानी का प्रवाह अब एक क्षण के लिए रुकना नहीं चाहता था। आगे वाले व्यक्ति ने पुनः आग्रह किया—लौट चलो बाबा। अब शायद लौटना हो या न हो क्योंकि उधर भी पानी बढ़ रहा था। व्यक्ति होशियार था। उसे प्राणों की जल्दी थी। उसने झट से पेड़ का सहारा लिया। उस पेड़ पर और भी दो-एक आदमी डटे थे। कठिनाई लोई की थी। उसके पैर काँप रहे थे। लगता था नीचे की मिट्टी खिसक रही थी। उधर पानी का प्रवाह धक्का दे रहा था।

संत ने मुड़कर पीछे देखा। निस्सहाय लोई उनकी प्रतीक्षा कर रही थी। एक क्षण का विलम्ब भी खतरनाक हो सकता था। संत ने लोई के पास आने की कोशिश की। लोई ने उन्हें जोर से पकड़ना चाहा। अनुभवी संत ने कहा—घबराओ नहीं लोई। पानी में घबराहट से जान पर आ बनती है। तुम मुझे बिलकुल छोड़ दो। मैं ही तुम्हें पकड़ता हूँ। सत ने लोई की बाँह पकड़नी चाही किंतु ऐसा हो न सका। लोई दूर चली गयी। उसकी सारी का एक छोर संत के हाथ में था।

संत ने चाहा था कि लोई को लाकर पेड़ पर पटक दें। स्वयं गाँव चले जायँ किन्तु ऐसा हो न सका। पानी के तेज प्रवाह में लोई बह रही थी। किंतु कहाँ तक जाती उसकी साड़ी का छोर तो संत के हाथ में था। संत ने उसे जोर से खींचना उचित नहीं समझा। गाँठ छूट गयी तो अनर्थ हो जायेगा' वे धीरे-धीरे उसी कपड़े के सहारे लोई को अपनी ओर खींच रहे थे।

किन्तु इसी बीच कोई जानवर बहता आया। लोई उसी के धक्के से दूर चली गयी। उसकी गाँठ खुल गयी। साड़ी संत के हाथ में रह गयी और लोई बही जा रही थी।

सन्त ने देखा भारी अनर्थ हुआ चाहता है। वे कपड़ा छोड़कर तेजी से पानी में बहने लगे। किन्तु लोई सन्त से आगे बही जा रही थी। सन्त लोई और जानवर का साथ-साथ बहना देख रहे थे। पेड़ पर बैठे लोग भी देख रहे हैं। किन्तु कर भी क्या सकते थे ? पानी में कूदने से कोई फायदा तो था नहीं। पानी से बचने के लिये ही तो पेड़ों पर थे।

लोगों ने समझा सन्त गये। भारी अनर्थ हो गया। उनका गाँव सदा के लिये बदनाम हो जायगा। एक साधु ने अच्छा चातुर्मास बिताया यहाँ आकर। कैसा गाँव है जो साधुओं की रक्षा भी नहीं कर सकता है।

सन्त ने बचपन में तैरने का अच्छा अभ्यास किया था। वे नित्य लहरतारा ताल में तैरते। अक्सर गंगा में तैरते। उन्होंने तैर कर गंगा पार किया था। किन्तु इधर बहुत दिनों से तैरने का अभ्यास छूटा हुआ। किन्तु आज उस अभ्यास ने काम दिया। तैरना जल्दी भूलता नहीं। समय पड़ते ही आ जाता है।

वे लोई को लक्ष्य कर तैरने लगे। काफी दूर तक तैरते-तैरते उनका दम फूलने लगा। शरीर में प्रथम बल तो था नहीं। फिर भी सन्त ने हिम्मत नहीं हारी। मन में राम राम जपते। जहाँ मनुष्य का पुरुषार्थ थकता है वहाँ से भगवान् की प्रार्थना का आरम्भ होता है। यद्यपि यह बात सन्त के साथ नहीं थी। सन्त तो आरम्भ ही से हरि सेवक हैं। नित्य ही स्मरण और प्रार्थना करते हैं।

अचानक सन्त ने देखा जानवर का बहना रुक गया। वे बड़ी आशा से उधर बढ़े।

मृत जानवर कोई गाय या बैल था। पानी में ठीक पता नहीं लग रहा था। उसका शरीर फूल गया था। लगता है वह बहुत पहले मरा था। लोई ने जोर से उसकी पूंछ पकड़ ली थी।

यहाँ कुछ ऊँचा टीला था। टीले पर कोई पेड़ था। उसी ने जानवर को रोका। आगे के बगीचे से भी पानी को बहने में रुकावट हो रही थी। यहाँ प्रवाह मन्द था। जानवर सहित लोई उसी पेड़ पर टिक गये। सन्त ने भी भी उसी पेड़ का सहारा लिया।

उन्हें इस बात से प्रसन्नता हुई कि लोई बिलकुल होश में हैं। सन्त से अलग होने के बाद उसमें एक दृढ़ता का संचार हुआ। उसने मात्र एक काम किया। दृढ़ता पूर्वक जानवर की पूँछ पकड़े रही। वही इसके बचने का आधार बना।

सन्त ने देखा लोई बिलकुल नंगी है। उनके बगल में पड़ी है। पानी का तेज धक्का आये तो वह पुनः बह सकती है। उसकी साड़ी भी उनके हाथों से छूट चुकी थी। कोई पेड़ था जो पानी में बिलकुल डूब गया था। हाँ, वह कुछ-कुछ चुभ रहा था। किन्तु ठिठुरन भरे शरीर में उसका विशेष असर न था। शायद बबूल का पेड़ हो। संकट में काँटे भी मनुष्य के रक्षक हो जाते है।

सन्त ने लोई को देखा और लोई ने सन्त को। लोई की आँखों में न भय था, न संकोच। यद्यपि वह पूरी तरह नंगी थी। उसने जोर से सन्त को पकड़ लिया। सन्त ने आँखें बन्द कर लीं। नंगी स्त्री को देखना उनके आचरण के विरुद्ध था। वे काफी देर तक लोई को पकड़े रहे। दूर-दूर तक पानी ही पानी। कोई देख रहा है इसकी कोई सम्भावना नहीं थी। पानी में अनेक चीजें बही चली जा रही थीं।

लोई नहीं समझ पा रही थी कि उसने आकर अपने को बचाया था सन्त को। सन्त के काम में बाधा अवश्य पड़ी। किन्तु वह न होती तो सन्त बच पाते क्या ? उसके मन में आया। वह सन्त से कहे—स्त्री दो प्रकार की होती है एक डुबाने वाली। दूसरी संसार सागर से बचाने वाली। लोई ने सन्त को बचाया है। डुबाया नहीं है।

हवा अत्यन्त ठण्डी हो गयी थी। तेज भी। दोनों ने एक दूसरे को पकड़ रखा था। लोई बीच-बीच में ठंडक से काँप रही थी। उसके रोंगटे खड़े हो जाते।

दिन बीता। रात बीती। दोनों एक दूसरे को पकड़े जल समाधि में पड़े प्रलय के उतार की प्रतीक्षा कर रहे थे। प्रकृति और पुरुष का युग्म इस बार वट या वासुदेव पर नहीं बबूल पर बचा था।

दूसरे दिन काफी दिन चढ़े पानी उतर गया। सन्त ने देखा लोई मूर्छित हो रही है। उन्होंने उसे अपनी पीठ पर लादा और धीरे-धीरे पेड़ से उतरे।

पानी का प्रवाह अत्यन्त क्षीण हो गया था। दूर-दूर तक मृत पशुओं की लाशें पड़ी थीं। पक्षी, साँप आदि तो कितने मरे थे कहना कठिन है।

पानी उतरने के बाद चारों ओर दुर्गंध फैल गयी। लोग बीमार पड़ने लगे। सन्त को लोई की बात याद आयी—दुख कहाँ नहीं है? कब नहीं है? सूखा दुख है। बाढ़ दुख है। बाढ़ के उतर जाने के बाद भी दुख है। पूरा क्षेत्र बीमारों और बीमारियों से भर गया।

लोई लोगों की सेवा में लग गयी। वह बाढ़ को नहीं रोक सकती थी। स्वयं बाढ़ का शिकार हो गयी थी। किन्तु वह बीमारी से बचेगी। सन्त सदा उसके साथ रहते। उसने अपने जिम्मे एक ही काम लिया। लोगों को उबला पानी पिलाने का काम। दूसरे साधुओं ने भी लोई की मदद की। अनेक रोगों पर केवल इस कार्य द्वारा काबू पाया जा सका।

सन्त प्रसन्न थे। स्त्री त्याज्य नहीं है बशर्ते कि उसके पीछे साधु प्रेरणा हो। द्रविड़ प्रदेश के सुरम्यपुरम् में सर्वजीत नामी एक ब्राह्मण रहते थे। विद्वान् और शास्त्रार्थी थे। विद्वान् का अर्थ ही है शास्त्रार्थी। हर विद्वान् किताबी होता है। पुस्तक पर भरोसा करने वाला। तर्की। प्रतिपक्षी। तर्क से तर्क को पराजित करनेवाला।

सर्वजीत का नाम ही इसीलिये पड़ा था। उसने तर्क से दूसरों को पराजित किया था। सबको जीता। सर्वजीत कहलाया।

सब उसे सर्वजीत कहते। यह नाम सुन उसे प्रसन्नता होती। मन मस्त हो जाता। छाती फूल जाती। फूला-फूला घूमता फिरता। माँ भी विदुषी थी।

वह उसे घरेलू नाम से पुकारती। उसे बुरा लगता। घर में उसकी प्रतिष्ठा बाधित होती। वह इस स्थिति से दुखी रहता। एक दिन उसने माँ से अपना दुख व्यक्त कर दिया। सभी उसे सर्वजीत कहते हैं। केवल माँ घरेलू नाम से पुकारती है। यह अच्छी बात नहीं है। माँ ही पुत्र का अपमान करे। उसे महत्व न दे। क्या अब कोई विद्वान् है जिसे उसे परास्त करना बाकी है ?

माँ ने उत्तर दिया—हाँ। अभी एक है। काशी में एक नया विद्वान् पैदा हुआ है। अभी तक अपराजित। कोई उससे शास्त्रार्थ का साहस नहीं करता है। उसे पराजित किये बिना वह सर्वजीत कहलाने का पात्र नहीं है। माँ अपने पुत्र का खंडित व्यक्तित्व नहीं देखना चाहती है। वह पूर्ण बने। पुत्र की कमजोरियों को माँ सबसे अधिक समझती है। वह अपने पुत्र को धोखे में नहीं रख सकती। उसे पुत्र का अपूर्ण व्यक्तित्व खटकता है। माँ अपराजेय व्यक्तित्व चाहती है। पराजय रहित विद्या।

माँ ने सर्वजीत को सही-सही बात बता दी। शास्त्रार्थी सर्वजीत दुखी नहीं हुए। उनमें नयी इच्छाओं ने जन्म लिया। वे कबीर को जीतने की तैयारी में लग गये। शास्त्रों का अद्यतन अभ्यास किया। ग्रन्थ जुटाए। सोलह सौ बैलों पर ग्रन्थ लादे गए। काशी की यात्रा आरम्भ हो गयी। पूरे दक्षिणापथ में तहलका मच गया। सर्वजीत कबीर को जीतने जा रहे हैं। काशी में कोई नया विद्वान् पैदा हुआ है। बिना काशी को जीते दक्षिण में कोई विद्वान् प्रतिष्ठा नहीं पा सकता है। काशी सर्व विद्या की राजधानी है। कसौटी है। यहाँ आकर सबको अपनी विद्या कसनी पड़ती है।

मन्दिरों में अनुष्ठान होने लगे। मनौतियाँ मानी जाने लगीं। स्त्रियों ने आरती उतारी। बहनों ने सर्वजीत को तिलक लगाया। अक्षत चिपकाया। वेदपाठियों ने मंगल पाठ किये। जनता ने मालाओं से लाद दिया।

सर्वजीत की विदाई के अवसर पर सभी वर्गों, जातियों और सम्प्रदायों के लोग उपस्थित थे। सबने मिलकर सर्वजीत को विदाई दी। दिग्विजय की

आकांक्षा की। घंटा-घडियाल और शंख बजे। काफी दूर तक लोग पहुँचाने आये। आश्चर्य था। इन पहुँचाने वालों में माँ न थी।

सर्वजीत ने घर से चलते समय माँ के पैर छुए थे। कल्याण कामना की। किन्तु दिग्विजय का आशीर्वाद नहीं दिया। शायद भूल गयीं। चाहा होगा अवश्य ही। कौन माँ है जो बेटे के दिग्विजय की कामना नहीं करती है? बेटे की जय का अर्थ है माँ की जय। सन्तान माँ का ही तो विस्तार है। माँ आकाश है। सन्तान सूर्य है। सूर्य आकाश में टिका है। आकाश सूर्य से प्रकाशित है।

सर्वजीत के पिता प्रसन्न थे। अलौकिक सुख की अनुभूति कर रहे थे। ऐसी भीड़ उन्होंने कभी नहीं देखी थी। ऐसा उल्लास। ऐसी विदाई। यह सब उनके पुत्र के लिये। उन्हें लगा यह सब उनका सम्मान है। आत्मा वै जायते पुत्रः के माध्यम से वे स्वयं को गौरवान्वित अनुभव कर रहे थे। लोगों की आँखों में उनके प्रति नया सम्मान था। श्रद्धा और विश्वास के भाव थे।

किन्तु पत्नी की अनुपस्थिति उन्हें खटक रही थी। वे क्रुद्ध भी हो रहे थे। कहाँ तो नित्य घूमेंगी। किन्तु आज पता नहीं क्या हो गया? इतनी बड़ी भीड़ को न देख सकी। अभी तक कौन था जिसकी इतनी बड़ी विदाई हुई हो? क्या उत्तर जाने वालों की कमी है? अक्सर ही तो लोग उत्तर जाते हैं। दक्षिण आते हैं। कोई बँटवारा नहीं है। किन्तु आज विशेष अवसर था। वह भी हमारे लिये। अपना लाडला दिग्विजय को जा रहा है। जिस समय वह दिग्विजय से लौटेगा हमारी प्रतिष्ठा आसमान में होगी।

वे क्रोध में ही घर लौटे। उन्होंने पत्नी को शान्त पाया। बरसने लगे। विदाई में न जाने की उलाहना दिया। वह मौन रही। केवल इतना कहा—प्रभु कल्याण करेंगे। आप शान्त हों।

सर्वजीत के पिता अपना आनन्द खोना नहीं चाहते थे। वे अपने अध्ययन अध्यापन में जुट गये। यज्ञ की तैयारी करने लगे। विदाई के बाद छात्रों का दल उपस्थित था।

महीनों की यात्रा के बाद सर्वजीत दल काशी पहुँचा। हनुमान घाट पर डेरा गिरा। पूरे शहर में हल्ला हो गया। दक्षिण के एक विद्वान् कबीर को पराजित करने आये हैं।

हवा में तैरती खबरें सन्त के पास भी पहुँची। वे शान्त रहे। शान्ति उनका कवच थी। बहुत कम अवसरों पर वे उत्तेजित होते। उनकी उत्तेजना का समय परदुखानुभूति होता। स्वतः उन्हें कोई दुख न था। वे अक्सर कहते—

सुखिया सब संसार है खावै अरु सोवै।
दुखिया दास कबीर है जागे अरु रोवै।

किन्तु उनका यह रुदन अपने लिये नहीं था। वे सोने वालों के लिये रोते थे। वे जानते थे सुख मांग्या दुख पहली आवैं। वे जहाँ जाते शोक, सन्ताप, जरा, मरण देखते। मड़ा काल का खाद्य बन रहा है। राजा राणा राव छत्रपति, जरि भये भसम कौ कूरो रे। वे देख रहे हैं। सब जा रहा है। मृत्यु सबको समेट रही है—चोबा चन्दन चरचत अंगा, सो तन चरै काठ के संगा। स्वयं तो भगवत रस में लीन हैं—अमृत झरै सदा सुख उपजै, वंक नालि रस पीवै।

डेरे पर सब को ठहरा कर। व्यवस्था कर। ग्रन्थों को लिये सर्वजीत सन्त कबीर के पास पहुँचे। सन्त ने आगे बढ़कर उनका स्वागत किया। सम्मान से आसन दिया। दक्षिण का, उनका, उनकी माता का हालचाल पूछा। उनके सम्मान में छोटे से भंडारे का आयोजन किया।

भंडारा प्रारम्भ हुआ। सन्त लोग आरोगने लगे। कबीर शान्त रहे। सर्वजीत बेचैन थे। उन्हें भोजन अच्छा नहीं लग रहा था। अन्त में अपना प्रस्ताव रख ही तो दिया। कबीर सहमत हो गये। शास्त्रार्थ होगा।

दोनों दल आमने सामने बैठ गया। सर्वजीन ने निर्गुण भक्ति का खंडन प्रारम्भ किया। अनेकों तर्क दिये। पूरा शास्त्र उनकी जीभ पर था। जीभ चल रही थी। वाणी बरस रही थी। जीभ का विस्तार ही शास्त्र है। वाणी का चमत्कार शास्त्रार्थ है। सर्वजीत की वाणी में अद्भुत चमत्कार था।

सर्वजीत बोलते रहे। सन्त कबीर सुनते रहे। सभा में उपस्थित लोग साँस रोके सुन रहे थे। देख रहे थे। सबको कबीर के बोलने की प्रतीक्षा थी। पंडे, पुरोहित, घाटिए सब दिल से मना रहें थे। कबीर हार जाय। उन्हें पूरा विश्वास था। हार तो जायगा ही। संकृत तो जानता नहीं। जानना चाहता भी नहीं। संस्कृत को कूप जल कहता है। न संस्कृत जानता है। न शास्त्र, न वेद। न पुस्तक, न पुराण। बातें ऐसी करता है जैसे सब देखा है। सब देखकर छोड़ दिया है। अर्थहीन और बेकार समझ कर छोड़ दिया है। केवल भासा जानता है। केवल भासा से शास्त्रार्थ नहीं जीता जा सकता है।

सर्वजीत रुके। उनकी स्थापनाओं से सभा चमत्कृत थी। उन्होंने शान्त भाव से बैठे सन्त की ओर देखा। सन्त की वाणी नहीं खुली। वे देख नहीं रहे थे। बोल नहीं रहे थे। पता नहीं सुन भी रहे थे या नहीं? हो सकता है इस बीच वे वहाँ हों ही नहीं। कहीं दूर चले गये हों। किसी गुहा में प्रविष्ट हों। भीतर के संघाराम में आराम कर रहे हों। वहाँ हो जहाँ सर्वजीत का शास्त्र नहीं जा सकता। शास्त्रार्थ नहीं पहुँच सकता है। मन पवन का गमि नहीं, तहाँ पहुँचे जाय।

पंडितों के अग्रगण्य आचार्य श्री ने सन्नाटा तोड़ा। उन्होंने सन्त को संबोधित कर कहा—कबीर साहब, सर्वजीत महोदय अपना तर्क दे चुके। अब सभा आपको सुनना चाहती है। आपने शास्त्रार्थ स्वीकार किया है। उत्तर दें या पराजय स्वीकार करें। पंडित परिषद् को आपके वाद की प्रतीक्षा है।

सन्त ने आँखें खोलीं। बोले—आचार्य आप मेरा उत्तर पा चुके हैं। मैंने सर्वजीत के हर प्रश्न का उत्तर दे दिया है। उसे समझ में न आये तो मैं क्या करूँ? किताबों के अभ्यास से इनकी बुद्धि कुंठित हो गयी है। पंडित और तर्की सन्त वाणी नहीं समझ सकते हैं। सच को बहस से नहीं पाया जा सकता है। बहस और बुद्धि के विसराम थल पर प्रभु के दर्शन होते हैं। तर्क अपनी शक्ति है। जीत की इच्छा है। जब तक अपनी शक्ति और जीत की आशा है ईश्वर हमसे दूर है।

सभा में हलचल मच गयी। लोग कहने लगे—कबीर झूठ बोलते हैं। अभी तो मौन हैं। कहाँ उत्तर दिया है ? लोग तो उत्तर की आशा में ही बैठे हैं। श्रद्धावानों का दल चकित तो था। परन्तु वह सन्त को झूठा मानने की स्थिति में न था। सन्त झूठ नहीं बोल सकते। निश्चय ही वे कोई बड़ी बात कहना चाहते हैं। वह बात हमारी समझ में नहीं आ रही है।

सन्त ने पुनः कहा—आचार्य समस्त शास्त्रों का मूलाधार मौन है। शास्त्र बाहर की विद्या हैं। योगी भीतर के अनन्त को देखता है। तर्की और आचार्य देवशर्मा के सुग्गे में क्या अन्तर है ? वह भी विद्या बोलता है। रटी विद्या। अनुभूति रहित विद्या। तुम कागज की लेखी कहते हैं। मैं आँखिन की देखी कहता हूँ। पारब्रह्म के तेज का कैसा है उनमान। कहिबे की सोभा नहीं। देख्या ही परमान।

कागद लिखि-लिखि जगत भुलाना मनहीं मन न समाना। यह सर्वजीत विद्वान् है। विद्या जानता है। इसकी विद्या बैलों पर लदी हैं। बैलों के लिये भी भार बनी है। १६०० बैलों को व्यर्थ कष्ट दिया। ये बैल किसी किसान के पास होते तो ज्यादा अच्छा होता। इतनी पोथियों के पढ़ने से क्या मिला ? प्रेम का, राम प्रेम का एक अक्षर तो पढ़ा नहीं। क्यों कि पुस्तकों में सब है। केवल राम प्रेम नहीं है। राम प्रेम के अक्षर को पढ़ते ही पुस्तकें भार लगने लगतीं। पुस्तकों को बहाकर आओ तब मुझसे शास्त्रार्थ करो। पुस्तकें सत्य को पाने में बाधक हैं। पुस्तकों का ग्यान तुम्हारा नहीं है। दूसरों के ज्ञान से ज्ञानी नहीं हुआ जा सकता है।

आचार्य ने पूछा—आप पुस्तकों की निंदा करते हैं ? क्या आप वेद विरोधी हैं ? शब्द प्रमाण में आपका विश्वास नहीं है ?

सन्त ने कहा—ठीक कहते हो। मैं पुस्तकों का विरोधी हूँ। इसलिये कि पुस्तकी ज्ञान दूसरे स्तर का होता है। उसकी अनुभूति से सम्बद्ध नहीं होता है। पुस्तकों में कथनी है। करनी नहीं है। करनी बिना कथनी कालबूत का कोट है।

वेद-पुराण झूठे नहीं हैं। झूठा वह है जो उन पर विचार नहीं करता है। तत्व को नहीं समझता है। शब्द दूसरों के नहीं हो सकते। शब्द सतगुरु के हैं—

सतगुरु साँचा सूरिवाँ, सबद जु बाह्या एक
लागत ही मैं मिलि गया, पड्या कलेजै छेक।

सर्वजीत से मैं क्या वाद करूँ? इसके पास अपना कुछ भी नहीं है। यह तो साहों का प्रतिनिधि मात्र है। इसे कहो कुछ आतमवोध करे। अपनी किताब तैयार करे। तब आवे। दूसरों को जीतने से अच्छा है अपने को जीते। जो अपने को नहीं जीत सका वह सर्वजीत कैसा? मूढ, सब जानता है। किन्तु जो तुम्हारे सबसे अधिक नजकीक है उसे नहीं जानता। और जानने से क्या फायदा?

जरा सोचो तो। तुमने किया क्या है? वहुत से वेद कितेब को अपने माथे में ठूंस रखा है। तुम्हारा सिर किताबों का भंडार है। ये किताबें कहीं तरतीब से कहीं बेतरतीब ठुँसी पड़ी हैं। शास्त्रार्थों के झाड़न द्वारा तुम उन्हें समय-समय झाड़ते पोंछते रहते हो। वरना उन पर सैकड़ों मन धूल पड़ी रहती है। तुम्हारा अहंकार वढ़ता जाता है। जैसे सेठ का खाजाना हो। नगर सेठ अपनी तिजोरियों में काफी सोना, चाँदी, जवाहिरात भरे हैं। चौकसी से उनकी रखवाली करता कराता है। चारों ओर उसकी प्रसिद्धि है। सेठ जी के पास बहुत माल है। मालामाल है नगर सेठ। अपनी इस सम्पत्ति के वल पर सेठ ऐंठा चलता है। सबसे अकड़ कर बातें करता है। भीतर से डरा भी रहता है। कहीं चोरी न हो जाय। डाकू न आ जाएँ। इस भय ने उसे और भी भयभीत कर दिया है। वह इन्हें और भी छिपाता है। जैसे-जैसे धन वढ़ता है वैसे-वैसे उसे छिपाने का लोभ बढ़ता है। बढ़ाने की प्रवृत्ति बढ़ती है। सन्तोष नहीं होता। कितना धन इकट्ठा कर लें। किसी को हमसे अधिक धन न हो जाय। मैं सबसे अधिक धनी रहूँ। जहाँ सुना कि कोई और धनी है कि ईर्ष्या बढ़ी। द्वेष विकसित हुआ। अगर हमारा बढ़ नहीं रहा है तो दूसरे का कम हो जाय यह इच्छा बेचैन कर देती है। फल क्या होता है? बेचैनी बढ़ जाती है। शान्ति भंग

हो जाती है। करोड़ों-अरबों की सम्पत्ति रखकर भी शान्ति नहीं। सुख नहीं। हम रोगी हो जाते हैं। नींद नहीं आती है। खाया अन्न अपच हो जाता जाता है।

विद्वानों में कम ईर्ष्या है क्या? हर विद्वान् दूसरे विद्वान् से जल रहा है। उसे मूर्ख समझता है। उसे नीचा दिखाना चाहता है। उसके अपमान पर प्रसन्न होता है। शास्त्रार्थ से कोई तत्व नहीं निकलता है। केवल जीत का अहं बढ़ता है। हराने का सुख मिलता है। थोथा सुख। धन का संचय किया था सुख के लिये। वह सुख और दूर चला जाता है! गरीब को धन न होने का दुख है। अमीर को बहुत अधिक होने पर भी और होने की लालसा का दुख है। यह दुख गरीब के दुख से बड़ा है। भयानक है। अशांति, अनिद्रा और अपच का घर है। इनसे दूसरे-दूसरे रोगों की बढ़ती होती है। जूआ, छल, धूर्तता, व्यभिचार, नशा आदि धन के सहज मित्र है। काम, क्रोध, लोभ, मत्सर आदि इसके सहोदर हैं।

ऐसी ही बातें किताबों के धनी में देखी जाती हैं। विद्या और तर्कों का संग्रह भी संग्रह है। यह भयानक परिग्रह है। इसमें हम भूल जाते हैं कि यह संग्रह मात्र है। तुम कह सकते हो कि इस संग्रह में अन्याय नहीं है। लूट और दूसरों का शोषण नहीं है। यह तुम्हारे परिश्रम का फल है। किन्तु यह है तो संग्रह ही। इसे तुम्हारी बुद्धि ने पैदा नहीं किया है। केवल बटोरा है। इसमें तुम्हारा क्या है जिसे तुम अपना कह सको। तुम्हारी दृष्टि हर समय दूसरों पर रहती है। जहाँ कहीं कुछ अच्छा देखा। कुछ विशेष या नया देखा उसे उठा कर अपने मन के तहखाने में भर देते हो।

दुनिया में बहुत से शौक हैं। किसी को अच्छे कपड़ों का शौक है। किसी को फूलों का शौक है। कोई कलमों और किताबों का शौकीन होता है। एक नगर सेठ को जूतों का शौक था। वह रोज नये-नये जूते खरीदता। उन्हें एक बार पहनकर रख देता। जहाँ उसे मालूम होता कि कोई नया जूता आया है। नये ढंग का जूता आया है वह उन्हें लेने दौड़ जाता। दूकान पर जाता।

जूते को देखता। उन्हें उलटता-पलटता। आँखें इतने प्यार से घुमाता जैसे कामी पुरुष किसी स्त्री को देखता है। फिर मुँह माँग। दाम देकर जूता घर ले आता। जूते से उसे इतना मोह हो गया था कि वह कभी जूते को पहनता। कभी गन्दा होने के भय से हाथ में लटकाये आता। घर आकर उन्हें ऐसे रखता जैसे भक्त ठाकुर जी की मूर्ति रखते हों।

सेठ का जूता प्रेम प्रसिद्ध हो गया। यह बात दूर-दूर तक फैल गयी। लोग उसके पास जूता भेजने लगे। जूते का कोई नया ढंग निकलता लोग उसके पास भेज देते। उसके भवन में देश-देश के जूतों का अम्बार लग गया। अब जूतों के रख-रखाव की समस्या हो गयी। सेठ तो था ही। उसे पैसों की कमी नहीं थी। उसने जूतों को रखने के लिये कई विशाल भवनों का निर्माण करायें। कई नोकर-चाकर रखे जो जूतों की देख-भाल करें। साफ-सुथरा रखें। इनका वर्ग विभाजन करें। अनेक सूचियाँ बनीं। बहियाँ बनो। उन पर जूतों के नाम, दाम, आकार, विशेषताएँ, निर्माता, प्राप्ति स्थान आदि दर्ज होने लगे। किसी ग्रन्थागार से ग्रन्थ निकालने-निकलवाने में देर लग सकती है। किन्तु उसके यहाँ नाम लेते ही सेवक जूते निकाल देते थे।

अब दूर-दूर से लोग जूता देखने आने लगे। जो भी शहर में आता इस जूता संग्रहालय को अवश्य देखता। उसका यह संग्रहालय इतना बड़ा था कि एक पूरा दिन लगाने पर भी कोई उसे पूरी तरह देख नहीं पाता था। अनेक शौकीन उस जूता संग्राहलय को देखने के लिये शहर में कई-कई दिन ठहरने लगे थे। संग्रहालय के आस-पास कितने ही सराय, धर्मशालायें और दुकानें खुल गयीं। उनसे अनेक लोगों की रोजी रोटी चलने लगी।

इन स्थितियों से सेठ अत्यंत उत्साहित हुआ। उसने अपनी सारी संपत्ति संग्रहालय को दान कर दी। उसकी संपत्ति से जूतों पर शोध होने लगे। किताबें तैयार होने लगीं। अनेक विद्वानों की जीविका चलने लगी। लोग पुरानी पोथियाँ ढूँढने लगे। उनसे निकाले गये वचनों द्वारा जूतों की महत्ता पर प्रकाश डाला जाने लगा। सेठ ने घोषणा की 'अब शीघ्र ही राम राज्य आनेवाला

है क्योंकि शासन पर जूता प्रतिष्ठित हो गया है। जब शासन में जूता प्रतिष्ठित हो जाय तो समझिए कि रामराज्य नजदीक है। जूता राज्य रामराज्य का पूर्व रूप है। 'उसने दीवालों पर जूतों के निशान बनवाये। पताकाओं में जूतों के चिह्न बनाए गए। सेठ अब जूता सेठ के नाम से प्रसिद्ध हो गया था। वह जब मरा तो लोगों ने उसे जूते की माला पहनायी। उसका शव जूतों से सजाया गया। उसकी चिता में पाँच जोड़े जूते रखकर उसे जलाया गया।

सेठ जब तक जिया जूते की चिंता में जिया। मरते समय भी उसे जूतों का का ही ध्यान रहा। खुद तो उसने जो कुछ किया सो किया ही उसके बाद भी उसके पैसों से जूतों पर विद्वानों के भाषण होते। सालाना जलसा होता। इस जलसे में बड़े-बड़े विद्वान् भाग लेते। वे जूता माहात्म्य पर भाषण करते। पैसा प्राप्त करते। पैसे के लोभी विद्वान् जूते को ब्रह्म का पर्याय बताते। उसकी उपासना की चर्चा करते। जूता पूजन को आदर्श प्रभुभक्ति बताते। कोई कहता आदर्श भक्त वह है जो जूता साफ करता है। कोई कहता हमारे शरीर का चाम प्रभु को जूती बने परमार्थ है। सबने मिलकर सिद्ध किया कि जूता न होता तो भरत का व्यक्तित्व स्पष्ट नहीं होता। जूते के प्रति अपनी भक्ति व्यक्त करने के लिये लोग उसे माथे पर रख कर आते। माथे पर रखे लौट जाते। साधारण लोग विद्वानों की देखादेखी जूता पूजने लगे। जूते पर फूलमाला चढ़ाते। धूप-दीप नैवेद के बाद आरती उतारते। हर साल जूता मेला लगता। लोग जूता दर्शन कर अपने को धन्य समझते।

जूता से दुआएँ माँगते। अनेक रोगों का इलाज जूतों से करते। किसी को मिरगी हो। किसी पर भूत का उपद्रव हो। तुरत जूते का इस्तेमाल करते।

ऐसा नहीं कि इसे समझने वालों की कमी थी। किन्तु जो इसका विरोध करता। लोगों को समझाना चाहता उन्हे उपद्रवी, झगड़ालू, बकवासी, नास्तिक आदि न जाने क्या-क्या कहा जाता। लोग सब समझकर भी चुप हो जाते। ऐसा ही है तुम्हारा यह पोथियों का संग्रह।

पढ़ाई दो तरह की है—एक वह जो तुम दूसरों की पोथियों से पढ़ते हो। उन पोथियों के बनाने वालों ने दूसरों की पोथियाँ पढ़ी थीं। इस पढ़ने के

बाद तुम उनका बोध करना चाहते हो। आचरण में लाना चाहते हो। उनका प्रचार चाहते हो। कितना लम्बा रास्ता है। एक तो इतने लम्बे रास्ते को पार करना कठिन। पार भी कर लिया तो क्या ? वे शास्त्र तुम्हारे हो सकेंगे ? तुम उन्हें बार-बार भूलोगे। ऐन मौके पर वे तुम्हें धोखा दे देंगे। क्योंकि वे मूलतः तुम्हारे नहीं दूसरों के हैं। तुम केवल जमा करने वाले हो। इसकी अपेक्षा एक दूसरी पढ़ाई है। यह सन्तों की पढ़ाई है। तत्व से सीधे जुड़ो। सत्य को सीधे देखो। अपनी अनुभूति में उतारो। वह ज्ञान तुम्हारा होगा। इसमें बोध होगा। आचरण होगा। यह बोध बिना शास्त्रार्थ के भी तुम्हें आनन्द देगा। यों कहो कि शास्त्रार्थ में हार का भय है। किन्तु यहाँ हार कभी होती ही नहीं। शास्त्रार्थी का आनन्द क्षणिक है। बाहरी है। वह आत्मानन्दी नहीं हो सकता है। किन्तु योगी का आनन्द भीतरी है। वह हर समय आनन्द की अनुभूति करता है। यह आनन्द शास्त्रार्थी की जीत के आनन्द से बड़ा है। शास्त्रार्थी इसका कण भी नही पा सकता है। शास्त्र तो साधन है। हम इस साधन को छोड़कर दूसरे साधनों से सत्य को पाते हैं। किताब से नहीं आँखों से देखते हैं।

सन्त कबीर कह रहे थे। लोग मन्त्र मुग्ध सुन रहे थे। सर्वजीत की बातें केवल पंडितों ने समझी थी। उनका मन भी वैसा नहीं खिला था।

सन्त कबीर की बातें सभी लोग समझ रहें थे। सन्त की बातें 'भासा' में थीं। सहज, सरल थीं। लोग प्रसन्न थे।

सन्त के चेहरे से ज्योति प्रकट हो रही थी। शून्य में कुछ चल रहा था। सन्नाटा, चुप्पी··· उत्सुकता के बीच लोगों ने देखा—सर्वजीत सन्त के चरणों पर थे। आँसुओं की झड़ी लगी थी। शायद वे सन्त चरण को अर्घ्य प्रदान कर रहे थे।

मेरा चित्त अब तक शब्दों के जंगल में भटकता रहा है। जब कभी मैंने इस भटकाव का अनुभव किया उसे प्रमा, प्रमाण और उपमान से ढँक देने की कोशिश की। कर्कश तर्कों के पत्थरों से दबा दिया। मैंने आप्त. वाक्यों को अत्यधिक महत्व दिया। किन्तु स्वयं आप्त बनने की कोशिश नहीं की। फिर भी

मैंने बहुतों को भरमाया। लोग मुझे विद्वान्, ऋषि, कवि, ज्ञानी आदि पता नहीं क्या-क्या समझते थे ? जब कि मैं आर्ष वचनों को ढोने वाला एक बलिवर्द मात्र था। और तो और। मुझे उपनिषदों की वे बातें भी जाग्रत नहीं करती थीं जिनमें तर्क, मेधा, बुद्धि, प्रवचन आदि तत्वों का सत्य प्राप्ति के लिए स्पष्ट निषेध है।

मैं समझता था बिना न्याय, शिक्षा, कल्प, व्याकरणादि समझे कोई भी व्यक्ति ब्रह्मसाक्षात्कार नहीं कर सकता। वर्ण और अक्षर मेरे आराध्य बन गये। ईश्वर छूट गये। मैंने शब्दों और वाक्यों में कितना माथा खपाया। बिना खाए पीये सूत्र, वृत्ति, टीका, भाष्य आदि मुखाग्र करता रहा। शास्त्रार्थ किये। सर्वजीत बना। सबको जीतकर भी सन्तुष्ट नहीं हुआ। क्योंकि अपने विकारों को न जीत सका। इतने शास्त्रों के भारी बोझ के नीचे दबे विकार मुझे व्याकुल करते रहे। इससे तो अच्छा था प्रेम का एक भी अक्षर सीख लेता। अपने को देने की कला जान जाता। उस शास्त्र को पहचानता जिससे सब कुछ प्राप्त होता है।

शास्त्रों के ज्ञान ने मेरी वाणी को और भी कठोर कर दिया। मैं वाक् बाण के लिये प्रसिद्ध हो गया। मेरे वाक् बाणों से अच्छे-अच्छे योद्धाओं की हालत खराब हो जाती। वे मेरा नाम सुनकर घबड़ाते। मैं वाक्यों और शब्दों द्वारा ही हिंसा करने लगा। लोग मेरे शब्द प्रहार से तिलमिला उठते। दुखी हो जाते। तलवार न उठाने पर भी मेरी ब्राह्मण नम्रता क्षत्रिय क्रोध में बदल जाती। क्षत्रिय के समान मैं सबको जीतने की आकांक्षा रखता। ज्ञान साम्राज्य का चक्रवर्ती सम्राट् बन गया। किसी में हिम्मत नहीं थी कि मेरा घोड़ा पकड़ ले। अश्वमेध अश्व तो कभी कभार घूमता है। किन्तु मेरी विद्या का अश्व हर क्षण हर दिशा में दौड़ता रहता था। महात्मा कबीर जैसे निश्छल और निर्मल साधु को हराने के लिये मैंने १६०० बैलों पर पुस्तकें लादीं। किसी भी राजा के समान शिष्य सेना लेकर दक्षिण से उत्तर की यात्रा की। जीत कर मैं और भी दंभी हो गया होता। अहंकार बढ़ जाता। विद्यादंभ धनाहंकार से भयानक है।

ऐसे विद्या संग्रह और शास्त्रार्थ से न अपना कल्याण होता, न जगत् का। शास्त्र पढ़कर कोई भी व्यक्ति मोक्ष का अधिकारी नहीं बन सकता। क्योंकि शास्त्र तो शस्त्र का ही एक रूप है।

सर्वजीत की आँखों में आँसू आ गये। उन्होंने मन ही मन माता को धन्यवाद दिया। माता ने उनका बहुत बड़ा कल्याण किया। उन्हें शास्त्राहंकार के समुद्र में डूबने से बचा लिया। नश्वर शास्त्रों के भँवर जाल से निकालकर प्रेम के सिंहासन पर बैठा दिया।

पं० सर्वजीत ने कहा—मैंने वेदान्त की बहुत सी टीकाएँ, भाष्य आदि पढ़े थे। किन्तु उसका मूलतत्व आज समझ पाया हूँ। पंडित मण्डली निराश हुई। कबीर पराजित न हो सके। उलटा हुआ। सर्वजीत ने न केवल पराजय स्वीकार की बल्कि सन्त का शिष्य हो गया।

पुस्तकें लौट गयीं। बैल लौट गये। शास्त्रार्थ की आकांक्षा और साधन लौट गये।

काशी समेत दक्षिण के पंडितों का एक दुख और था। सर्वजीत ने पराजय स्वीकार की। यह दुख था ही। दूसरा दुख, सबसे अपमान जनक था। एक वेद पारंगत वेदांत विशारद कुलीन ब्राह्मण शूद्र का शिष्य हो गया। इससे वर्णाश्रम के विरोध की शंका प्रबल हो गयी थी।

पंडितों का समुदाय भयभीत था। वे कबीर को पराजित देखने की आकांक्षा से यहाँ आए थे। किन्तु परिणाम उलटा निकला। सब दुखी थे। अवसन्न। संत कबीर को गालियाँ दे रहे थे।

सर्वजीत द्वारा संत कबीर को गुरु बनाने से पूरे देश के ब्राह्मणों पर गहरा असर पड़ा। वर्णाश्रमी समाज स्तब्ध रह गया। अतिवर्णाश्रमी प्रसन्न थे। ब्राह्मणों क्षत्रियों का दंभ टूटा। शास्त्र ही ब्राह्मणों का एकमात्र बल था। वह भी आज पराजित हो गया।

ब्राह्मणों को एक डर और था। अभी तक कबीर जो कुछ कहते थे सभी शब्दावली शास्त्री नहीं थी। उसमें अनुभूति और साधक मन के अनुभव होते

थे। अब वे ही बातें शास्त्री शब्दो में कहीं जायँगी। कहीं ऐसा न हो कि वर्ण विरोध, ब्राह्मण विरोध को शास्त्र सम्मत रूप दे दिया जाय। क्योंकि शास्त्रों में वर्ण विरोध की बातों की कमी नहीं। अभी तक पंडित समुदाय उन्हें दबाए था। उजागर नहीं करता था। सर्वजीत उन्हें प्रचारित करेंगे। संत कबीर हृदय की भाषा बोलते हैं। सर्वजीत बुद्धि की भाषा में कहेगा। संत कबीर की बातें केवल बेपढ़ा और पिछड़ा ही सुनता था। अब उनका प्रचार विशिष्टों में भी होगा।

चिन्ताओं में पंडित समुदाय अपने घरों को लौट गया।

सर्वजीत को माता का स्मरण आया। माँ ने विजय कामना नहीं की थी। केवल मंगल कामना की थी। तो माँ को सद्‌गुरु की शक्ति और शिक्षा ज्ञान था......। भगवत् तत्व को पुरुष नहीं स्त्री बनकर ही भलीभाँति समझा जा सकता है।

भीड़ हटने के बाद सर्वजीत ने सद्‌गुरु के चरणों में प्रणाम किया। मुझे शरण में लें। आगे बढ़कर प्रकाशित करें। मैं अब तक लोक वेद के चक्रवात में भ्रम रहा था। सर्व को जीत रहा था। किंतु अपने भीतर बैंठे यम की ओर से निष्फिक्र था। सद्‌गुरु के सदके जाऊँ—बलिहारी गुरु आपणा गोविन्द दियो बताइ।

पुत्र की खबर पाकर माता कल्याणी देवी भी वाराणसी आयीं। पुत्र ने उनके चरणों में प्रणाम किया। माँ ने उन्हें गले से लगा लिया। अश्रु से अभिनंदित किया। बोली—बेटा, तुम्हारा पुराना नाम सर्वानन्द हो ठीक है। सब को आनंद देनेवाला। सर्वत्र आनंदित रहनेवाला। सब के आनंद में शामिल। यह सर्बजीत नाम दंभ से भरा है। सर्वजीत सबसे जीता भी जा सकता है। आज तुम सचमुच विजयी हो। आनंद प्राप्ति ही मनुष्य की असली विजय है। ब्रह्म मूर्ति आनंदमय है। सत् चित् तक तो मनुष्य बिना प्रयास प्राप्त करता है। उसका असली पुरुषार्थ आनंद प्राप्ति में है। अब तुम आनंद प्राप्ति के मार्ग में हो। सद् गुरु की शरण में हो। वे तुम्हें आनंद का साक्षात्कार कराएँगे। यह

मार्ग परिश्रम और कठोर साधना का उतना नहीं है जितना गुरु की कृपा का है। गुरु दिखाई बाट।

यह कहकर माँ चली गयीं। सर्वानंद गुरु कृपा की प्रतीक्षा करने लगे। वे नित्य सत्संग में शामिल होते। गुरु के लिये अच्छे-अच्छे सामान लाते। नाना प्रकार से गुरु को प्रसन्न करने की कोशिश करते।

उन्हें पूरा विश्वास था कि गुरु उन पर शीघ्र प्रसन्न हो जायँगे। विद्या भी है। धन भी है। परिश्रम भी है। उनके पास क्या नहीं है? कोई कारण नहीं कि गुरु उन पर प्रसन्न न हों।

किंतु देर होने लगी। देर होने से शंकाएँ घर करने लगीं। निराशा ने आ घेरा। शंका और निराशा निन्दा को जन्म देती है। आशंकाएँ आलोचना की जननी हैं। वे मन ही मन सद्गुरु की आलोचना करने लगे। उनके सामने अनेक मूर्खों, निरक्षर और दरिद्रों को गुरुकृपा मिली। किंतु गुरु हर समय इनकी उपेक्षा कर देते।

सर्वानंद भीतर ही भीतर कुढ़ते रहते। कभी-कभी अचानक किसी पर उबल पड़ते। साधना से भी मन उचट जाता। अपने त्याग का स्मरण आता। एक बार तो उन्होंने यहाँ तक सोच लिया। सद्गुरु को ब्राह्मण का अपमान करने में आनंद आता हैं। शायद में द्रविड़ हूँ इसीलिये उपेक्षित हो रहा हूँ। ऐसा ही है तो मुझे सद्गुरु की कृपाकांक्षा की आशा छोड़ देनी चाहिए। दुख और वेदना से सर्वानंद का तनमन जलने लगा। उन्होंने अत्यंत बेचैनी की अनुभूति की। इसी बेचैनी का भार लिये वे गंगा में कूद गये। किंतु डूब न सके। मन ने पलटा खाया। अपने को शांत करने के लिये उन्होंने काफी देर तक गंगा के शीतल जल में स्नान किया। काफी दिन चढ़ने पर आश्रम पर लौटे।

धूप तेज थी। गरम लू चल रही थी। उन्होंने देखा आश्रम बिल्कुल खाली है। दूर पेड़ के नीचे दो आदमी सो रहे थे। दोनों ने अपने को चादर से ढँक लिया था।

सर्वानंद को लगा। लोग जानबूझ कर उनकी उपेक्षा कर रहे हैं। उन्हें आता देखकर ही सोने का रूपक रचाए हैं। इनका मुख्य उद्देश्य मुझे अपमानित करना है। वे इस तथ्य को बार-बार भूल जाते हैं कि मैं दिग्विजयी विद्वान् हूँ। कुलीन ब्राह्मण हूँ। सद्गुरु की शरण में आया हूँ तो क्या मेरा अपमान होना चाहिए ? आज सद्गुरु को भी स्पष्ट कहूँगा। यह तो पता लगे कि वे चाहते क्या हैं ?

इतना सोचते-सोचते सर्वानंद पर क्रोध हावी हो गया। शास्त्र का संग उन्हें बारबार कष्ट दे रहा था। संग से इच्छा और इच्छा बाध से क्रोध उत्पन्न हो रहा था। वे कटु वचन बोल रहे थे। लपक कर एक व्यक्ति की चादर खींच ली। लगा जैसे वे उसे अवश्य मारेंगे।

चादर हटते ही सर्वानंद चकित रह गए। अपने व्यवहार पर दुखी भी हुए। यह और कोई नहीं, स्वयं सद्गुरु कबीर साहब सोये थे। किन्तु चादर खींचने से जग गए। सर्वानंद को लज्जित और दुखी देखकर बोले—चिन्ता न करो सर्वानंद। तुम्हारे मन का अहंकर अभी गया नहीं है। शास्त्र का अहंकार बड़ा प्रबल होता है। धन का अहं शीघ्र चला जाता है। किन्तु शास्त्र का थोड़ा ज्ञान भी दुःख देता है। अविद्या से छूटना आसान है। किन्तु विद्या के बन्धन से मुक्ति कठिन है। चित्त से विद्या की मैल उतार कर उसे निर्मल करो। मन मैला पिऊ उजला लागी न सकूं पाँव। परम पुरुष अत्यन्त सात्विकी प्रवृत्ति का है। वह थोड़ी सी मैल भी वर्दाश्त नहीं करता। अभी तक तुम केवल अविद्या की वासना से मुक्त हुए हो। विद्या की वासना से मुक्त नहीं हुए हो। विद्या का बन्धन अविद्या के बन्धन से अधिक कठिन है।

यह कह कर सद्गुरु ने सर्वानन्द की आँखों में आँखें डाल दी। सर्वानन्द को लगा वे बेहोश होकर गिर जायेंगे। वे सद्गुरु के चरणों पर सीधे गिर पड़े। सद्गुरु ने उनके कंधे के पास कुछ दबाया। वे उठ बैठे। नम्रता से आँखें झुकी थीं। सद्गुरु ने कहा---आज से तुम्हें लोग श्रुत गोपालदास कहेंगे। भगवद् चरणों में तुम्हारी अविचल भक्ति बनी रहेगी।

चन्दो जइहैं सुरजो जइहैं जइहैं पवनो पानी।
कह कबीर हम भगत न जइहैं किनकी मति ठहरानी ।।

यही श्रुत गोपालदास जी कबीरचौरा मठ के आचार्य बने। लोगों ने देखा साहब में उनकी अविचल भक्ति है। फिर तो लाखों नर-नारी इस भक्त के भक्त हो गए। क्योंकि साहब सेवा का अर्थ है उनके आश्रितों की सेवा। साहब अपने लिये कुछ नहीं चाहता। वह एक ही बात चाहता है। लोग उसके भक्तों के भक्त बनें। दीनों, दुखियों और पीड़ितों की सेवा करें। दास से बढ़कर दासानुदास बनें।

साहेब घूम रहे थे। उन्होंने आचारी सम्प्रदाय के तोताद्रि आश्रम का बड़ा नाम सुना था। यह मठ अपने आचार-विचारों के लिए प्रसिद्ध था। इस मठ के प्रति सन्त में विशेष उत्सुकता थी। श्री सम्प्रदाय और आचार्य रामानुज से सम्बद्ध होने के कारण सभी सन्तों में इस मठ की प्रसिद्धि थी। आदर था।

महन्थ जी ने आगे बढ़कर अगुआनी की। साहब का स्वागत कर वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। अंकमाल दे भेंटे। मानो गोपाल से भेंट कर रहे हों। किन्तु अचानक ध्यान आया। कबीर अतिवर्णाश्रमी हैं। उनके मन में द्वैत की उत्पत्ति हुई। यह ठीक है कि कबीर वैष्णव हैं। प्रभु भक्त हैं। उच्चकोटि के महात्मा हैं। सभी प्रकार के कलुप से दूर रहने वाले। माया का सर्वथा त्याग कर दिया है। आठों याम रामनाम का चिन्तन करते हैं। भक्त के शरीर जैसा पवित्र संसार में कुछ नहीं है। भक्ति मनुष्य के सारे कल्मष बहा देती है। प्रभु का अवतार होता है। पाप निवृत्ति और धर्म स्थापना के लिये होता है।

यह सब ठीक है। किन्तु इस शरीर का क्या किया जाय? इस सन्त का जन्म तो हीन कुल में हुआ है। माता-पिता का भी ठीक ज्ञान नहीं है। सामाजिक व्यवस्था और आत्मदर्शन में एकता बैठाना अक्सर कठिन होता है। यह असंगति है। और यहाँ यह असंगति उपस्थित है। अज्ञात कुलशीलवाले

सन्त के साथ पंक्तिभोज सामाजिक व्यवस्था पर प्रश्न बन जायगा। तोताद्रि मठ के दूर-दूर तक फैले शिष्यों, अनुयायियों और श्रद्धालु भक्तों में भ्रम उत्पन्न हो जायगा। शंका और अश्रद्धा का विकास होगा।

प्रभु चरणों में किसी द्वैत को स्थान नहीं है। जाति एवं वर्ण के भेद नहीं हैं। किन्तु सामाजिक मर्यादा भी तो विशिष्ट है। खान-पान का अध्यात्म से क्या सम्बन्ध ? यह तो जगत की वस्तु है। जगत में रहकर जगत के विधान को मानना ही होगा। निश्चय ही वर्ण और जाति जागतिक नियम हैं। पारमार्थिक नहीं हैं।

महन्थ जी ने आत्मानन्द का स्थान जगतानन्द को दिया। शायद उनके मन में जो था उसे तर्क का जामा पहिना दिया। बुद्धि सदा हृदय की सेविका है। पहले लोग मन से कुछ निश्चय कर लेते हैं। तब उसके लिये तर्क खोजते हैं। और तर्क इतना बेकार का होता है कि हर समय व्यर्थ घूमा करता है। जहाँ जरूरत हुई उपस्थित है। खड़ा है। चाहे हार ही क्यों न जाय ? यों हार का कष्ट सबसे अधिक तर्क को ही होता है। क्योंकि वह सदा झपट्टामार विजय में विश्वास करता है।

महन्थ जी ने अपने शिष्यों को बुलाया। सन्त कबीर और उनकी मंडली के सत्कार का भार सौंपा। सन्त को किसी प्रकार का कष्ट न हो। वे यहाँ से सन्तुष्ट होकर जायँ। असन्तुष्ट सन्त भयानक होता है। उसमें भी कबीर। कौन है जो इनकी आलोचनाओं से बचा है ?

शिष्यों ने आचार्य की आज्ञा मान ली। किन्तु सबके मन में वही था जिससे महन्थ जी अभी अभी जूझे थे। महात्मा कबीर अतिवर्णाश्रमी हैं। उन्हें पंक्ति में कैसे बैठाया जा सकता है ? शिष्यों की आँखों में शंका की लहर थी। पैर बँधे थे। हाथ उत्साहहीन थे। वाणी गूंगी हो रही थी। कोई बढ़ नहीं रहा था। महन्थ जी अनुभवी व्यक्ति हैं। उन्होंने समझ लिया। शिष्यों की क्या कठिनाई है ?

जो संस्था सीधे उत्पादन से नहीं जुड़ी है उसे समाज पर निर्भर रहना पड़ता है। उत्पादक समाज पर। व्यवस्थापक और वितरक समाज पर। यहीं आकर समतावादी दर्शनों की धार मुड़ जाती है। थोथी होने लगती है। व्यवस्था और वितरण में लगे लोग विषमताभिलाषी होते हैं।

महन्थ जी ने शिष्यों को आश्वस्त किया। सब करना। साथ में भोजन नहीं करना है। किन्तु सन्त का अपमान भी न हो। वे इस बात को समझें भी नहीं। कहेंगे ये लोग प्रभु मन्दिर में भी भेद रखते हैं। भेद भाव जानकर वे आरोगना स्वीकार नहीं करेंगे। सन्त समुदाय भूखा लौट जायगा। यह पातक भी होगा। आश्रम की बदनामी भी होगी। साधुओं को खिला न सके।

रामधुन समाप्त हुई। सन्तों की विजे हुई। आरोगिए महाराज। साधु मंडली बैठने लगी। महन्थ जी ने घोषणा की। वैदिक मन्त्रों के प्रस्तोता एक साथ बैठेंगे। शेष लोग अलग बैठेंगे।

महन्थ जी का विश्वास था कि सन्त कबीर वेद नहीं जानते हैं। उनकी मंडली में भी कोई वेदपाठी नहीं है। कोई ब्राह्मण जानता भी होगा तो उसके इधर आने में कोई अधिक हानि नहीं है। यद्यपि शूद्रों की संगति से वह भ्रष्ट है। शूद्र को गुरु बनाकर पतित है। किन्तु आपत धर्म में जितना हो सके उतना ही करना चाहिए।

सन्त कबीर महन्थ की इस लीला को समझ गये। उनके मन में पहले से सन्देह था। सन्त ने महन्थ जी से पूछा—महाराज, ऐसा निर्णय क्यों ले रहे हैं? क्या अवैदिक प्रभु भक्त नहीं होते हैं? सारे वचन तो वेदवचन हैं। वेद के अतिरिक्त और क्या है? वेद इस संसार वृच्छ के पत्ते हैं। और सारी भाखाएँ उस पत्र के पत्ते हैं। संसार पर्ण नहीं प्रतिपर्ण है। वर्ण नहीं अवर्ण है।

महन्थ दुविधा में पड़ गये। क्या जवाब दें? सन्त ने उन्हें पकड़ लिया था। उन्होंने अपने कुटिल मन को तेज किया। इषत् हँसी से कहा, 'महाराज, मैंने

कोई विशिष्ट और नयी बात नहीं कही है। तोताद्रि के सामान्य नियमों की बात कह रहा था। यहाँ वैदिक और अवैदिक की अलग पाँतें लगती हैं।'

सन्त कबीर को महन्थ की बुद्धि पर तरस आ गयी। उन्होंने महन्थ से पूछा—'क्यों महाराज, अगर दूसरे प्राणी भी वेद बोलें तो आप उन्हें वैदिक मानेंगे ? उनके साथ भोजन करेंगे ?'

महन्थ ने कहा अवश्य। किन्तु मनुष्य से भिन्न प्राणी वेद बोलें यह कहाँ सम्भव है ?

सन्त कबीर ने कहा—महाराज, आप विचार नहीं कर रहे हैं। अगर वेद किसी पुरुष के बनाये नहीं हैं तो इस भैंसे को भी वेद ग्यान होना चाहिए। भैंसे में भी तो भगवान् हैं। कोई ऐसी जगह नहीं जहाँ हरि न हों। वेद और भैंसा दोनों ईश्वर के बनाये हैं।

असली है प्रेम। पोथी नहीं प्रेम। आप वेद को पोथी मानते हैं। किन्तु पोथी का वेद प्रेम से बड़ा नहीं हो सकता है। प्रेम पुरुषार्थ है। महान् है। वेद साधन है। प्रेम प्रभु है। पुस्तक से अन्धी दुनिया भेद देखती है। अपने भीतर के परमात्मा को नहीं देखती है। सच्चे प्रेम से देखिए। भैंसे में भगवान् मिलेंगे और जहाँ भगवान् हैं वहाँ वेद को रहना ही चाहिये। यही हमारे गुरुओं की शिक्षा है।

महन्थ से यह कहकर सद्गुरु कबीर साहब ने उपस्थित भैंसे की पीठ पर हाथ रखा। गर्दन को दबाया। लोगों ने आश्चर्य से देखा सुना। भैंसा वेद वाणी बोल रहा था। दोनों तरफ की साधु मण्डली अवाक् देख-सुन रही थी। यह चमत्कार। साहब ने कहा था। भैंसे में भी प्रभु का दर्शन करो। ईश्वर सब जगह है। हर जड़ में है। हर चेतन में है।

खालिक खलक खलक में खालिक सब जग रहा समाई।

आज उसे स्पष्ट कर दिया। भैंसे में भी भगवान्। प्रभु के सिवाय और क्या है ?

महंथ और उनकी मंडली घबरा गयी। एक शूद्र संत की यह महत्ता ! महंथ का जाति अभिमान मिट्टी में मिल गया। जाति के राजमहल को भूकंप का गहरा झटका लग गया। महल एक झटके में गिर गया। महंथ मंडली चकित रह गयी। सब संत के चरणों पर गिर गये। बड़ा अपराध हुआ। संत की अवज्ञा हो गयी। संत अवज्ञा सबका अकल्याण करती है।

पूरी महंथ मंडली भावी अकल्याण से डर गयी। अनिष्ट की आशंका से व्याकुल हो उठी।

संत मुस्काने लगे। मंहथ की ओर सम्बोधित कर कहा 'भक्ति की धारा में स्नान करके भी तुम्हारी पंडिताई गयी नहीं। भक्ति प्रेम का घर है। खाला का घर नहीं है। यहाँ पैसा और पंडिताई बेकार है। यहाँ तो संपूर्ण समर्पण चाहिए। जो अपने को दे सके। किताबवाला लेना चाहता है। किताबों का ज्ञान संग्रह करना चाहता है। हर विद्वान मन में एक पुस्तकालय बनाता है। भारी-भारी पुस्तकें। बड़ी-बड़ी पोथी। उसे ईश्वर के दिए ग्यान पर भरोसा नहीं है। ईश्वर ने सभी प्राणी को अपनी जरूरतों के मुताबिक ग्यान दिया है। उसकी कृपा होगी तो और भी मिलेगा। उसी पर भरोसा करो। भूलो मत आचार्य। प्रभु की यही शिक्षा है।

महंथ और उसके लोगों की आँखें आसुओं से भर गयीं। जैसे सारा अभिमान आँखों की राह बह रहा हो। वे काफी देर तक रोते रहे। संत मंडली से प्रार्थना की यहाँ और कुछ दिनों तक टिकें। किंतु संत ने उनसे कहा— नहीं। अब आगे जाना होगा। साधु को घूमते रहना चाहिए। बहता पानी सा रमता रहना चाहिए। स्थापित साधु की साधुता घटने लगती है। इसीलिये नारद जी घूमते रहते हैं।

जाति पांति वेद की अपेक्षा लोक में अधिक है। वेद की जाति तोड़ना आसान है। किंतु लोक से लड़ना कठिन है। लोक से लड़े बिना नयी चीज नहीं चल सकती है। वेद हमारे मन में है। दिमाग में है। अरजित है। वेद को रटकर पढ़कर इकट्ठा किया है। किंतु लोक की जाति हमारी आदत बन गयी है।

सहज जीवन प्रणाली बन गयी है । सहज जीवन प्रणाली को बदलना आसान नहीं है । जाति का संबंध ज्ञान से नहीं रह गया है । ज्ञान को ज्ञान से मिटाया जा सकता है । किंतु ज्ञान से सहज कर्म मिटाना बहुत कठिन होता है । इसीलिये मैं कहता हूँ लोकवेद दोनों को छोड़ो । दोनों गले की फाँसी हैं । जाति लोगों का स्वार्थ भी बन गयी है । इस स्वार्थ को छोड़ो । परमार्थ को ग्रहण करो । लोग जाति में जनमते हैं । जाति में जीते हैं । जाति में मरते हैं । कितना कहिए कोई जाति छोड़ने के लिये तैयार नहीं है । संत मंडली के सामान भैंसों पर लद चुके थे । चलने का बिगुल बजा । एक संत ने तामे का लंबा बिगुल फूँका । दूसरे ने पीतल का । पूरी मंडली आगे बढ़ी ।

इस घटना के बाद अनेक ब्राह्मण साहब के शिष्य हो गए । इन्हीं ब्राह्मणों ने प्रचाररति किया—संत कबीर विधवा ब्राह्मणी की संतान हैं । यह बात ऐसे कही गयी कि सभी लोगों ने विश्वाम कर लिया । कोई उसकी प्रामाणिकता की जांच में नहीं गया । स्वयं साहब ने अपने को पूर्व जन्म का ब्राह्मण कहा—

पूरब जनम हम वाभन होते ओछे करम तप हीना ।
रामदेव की सेवा चूका पकरि जुलाहा कीना ।

ब्राह्मणों के आने से मंडली के लोग चौंके । अनेक लोंगों ने इसे अच्छा नहीं माना ।

ब्राह्मण अभी भी भेद भाव छोड़ नहीं पाये थे । एक दिन एक शूद्र संत ऊँचे आसन पर बैठे थे । ब्राह्मण संत बाद में आया था । उसे नीचे बैठना था । किंतु उसे नीचे बैठने में तकलीफ हो रही थी । वह काफी देर तक टहलता रहा । किसी ने ध्यान नहीं दिया । अंत में उसे नीचे बैठना पड़ा ।

लोगों ने देखा । उसका बैठना सहज न था । जैसे हाथी बलात् बैठाया जाता हो । वे सत्संग के समय भी कुछ अलग बैठना चाहते । विद्या की चाहे जितनी निंदा की जाय । ब्राह्मण संतों को पुस्तकी विद्या तो थी ही । वे दूसरी जाति के संतों की ईर्ष्या के आधार बन जाते थे । सभी संत उच्चकोटि के नहीं थे । उनके अनुभव

और साधना भी संत कबीर जैसी नहीं थी। जैसे ब्राह्मण अपना संस्कार नहीं छोड़ पा रहे थे वैसे ही दूसरी जातियों के संतों में जातिगत संस्कार थे। फलतः एक साधना पद्धति, एक विचारधारा और एक स्थान में रहकर भी अलगाव बना रहता था। साहेब इस अलगाव को बराबर ही दूर करने की कोशिश करते। किंतु श्रेष्ठ बनने की माया सबको घेरे रहती। कुछ के भीतर की श्रेष्ठता नहीं निकलती। तो कुछ अपनी हीनता से नहीं मुक्त हो रहे थे। साहेब इस स्थिति से दुखी रहते थे। कभी-कभी भंडारे के समय यह स्थिति विकृत रूप ले लेती। ब्राह्मण संत आगे बढ़कर पाकशाला में प्रवेश करते। वे नहीं चाहते कि गैर-ब्राह्मण पाकशाला में प्रवेश करे। उनके लिये वे सफाई आदि का कार्य सौंपते।

मांस अहारी...

कें....के....कें....क्रें....क्रें....क्रें क्रांयं....

संत का मन दुखी हो गया। उन्होंने अत्यंत भारी भाव से कहा आज फिर किसी की बलि हो रही है। ये लोग मानते ही नहीं। हे प्रभु, इन्हें सद्बुद्धि दो।

आवाज अभी बंद नहीं हुई थी। काफी देर हो गयी। लगता है कोई मोटा सूअर है। जल्दी मर नहीं रहा है।

शिष्य के मुँह पर घृणा छप गयी थी। उसने अत्यंत दीन वाणी में कहा 'गुरुदेव, इन्हें रोकिए। लोक धर्म के नाम पर भूत, प्रेत, डाकिनी, पिशाचिनी आदि की पूजा के निमित्त ये पशु-पक्षियों का बध करते हैं। अपनी जीभ को स्वाद देने के लिये ये सब पूजा के बहाने हैं। इससे चित्त की मैल साफ होने की जगह और भी बढ़ जाती है। वेद बुराइयों की निंदा सभी लोग करते हैं किंतु लोक की ओर किसी का ध्यान नहीं है। इसलिये कि वेदवालों का लोक से संबंध छूटा है। द्विज वेद में मस्त है। शूद्र एवं अवर्ण लोक बुराइयों के शिकार हैं। वेद, यज्ञ और ब्राह्मण विरोध से उनका सुधार होगा जहाँ ये हैं। किंतु उनका सुधार कैसे होगा जहाँ ये हैं ही नहीं? अवर्ण से कहिए तुम वेद छोड़ दो। यज्ञ और ब्राह्मण को छोड़ दो। तो इसका क्या मतलब है? ये तो उनके लिये पहले से वर्जित है। इन्हें लोकधर्म ने बाँध रखा है। देह पूजा इनकी सबसे बड़ी समस्या है। पशु बलि भगवान के नाम पर जीभ का आस्वाद मात्र है। प्रभु हिंसा को कभी स्वीकार नहीं सकता।

संत ने कहा—ठीक कहते हो। अभी ही चलो। पूजा में बहुत से स्त्री पुरुष एक साथ मिल जायँगे। सब बातें हो जायँगी। हिंसा रोकने का इससे अच्छा अवसर नहीं मिलेगा। शायद सूअर की जान भी बच जाय।

संतों का झुण्ड पूजा के स्थान पर पहुँच चुका था। संतों की मंडली को आया देख स्त्री-पुरुषों की भीड़ इनकी ओर घूमी।

एक व्यक्ति एक नुकीला बाँस सूअर के शरीर में घंसा रहा था। सूअर छटपटाये नहीं इसलिये उसे कसकर बांध दिया गया था। फिर भी वह तड़प रहा था। कुछ लोग उसे दबाने की कोशिश कर रहे थे।

संत के पहुँचते-पहुँचते सूअर दम तोड़ चुका था। बिना रक्त गिरे सूअर की बलि हो गयी। लोग प्रसन्न थे। अब बारी कबूतरों और मुर्गियों की थी। एक आदमी आगे बढ़कर उनकी गर्दन उतार कर मिट्टी की पिंडी के आगे रक्त गिराने लगा। कई कबूतर और मुर्गियाँ धरती पर छटपटा कर शांत हो गयीं। जमीन खून से रंग गयी।

संत ने चिल्लाते हुए कहा 'ठहरो, क्या करते हो ? जीव हत्या से अलग हो जाओ। ये कौन देवता हैं ? जो इस तरह से निरीह जीवों की बलि लेते हैं ? ये गरीब प्राणी क्या मारने के लियें बने हैं ? इन्हें मारने से अलग हो जाओ। आश्चर्य है। तुम इस मिट्टी के ढेले में देवता की कल्पना करते हो और जीवों को भगवान् से हीन मानते हो ? भगवान् सबसे पहले प्राणियों में है। जीव में है। मिट्टी की पिंडी में सिंदूर लगने से मिट्टी ईश्वर नहीं हो सकती। ईश्वर तो सब जगह है। केवल अनुभव करने की जरूरत है। भीतर के भगवान की यह अनेदेखी और तिरस्कार ने तुम्हें हीन बना रखा है। तुम्हारी पूजा के पीछे त्याग नहीं है। भोग वासना है। सूअर के प्रति क्रूरता इसीलिये तो करते हो कि उसका खून न गिरे। खून गिरने से सूअर का मांस स्वाद खो देगा। यह खून पीना नहीं तो और क्या है ? खून पीने वाला ईश्वर का भक्त नहीं हो सकता है। ऐसे लोग से ईश्वर कभी खुश नहीं हो सकता है।

सन्त की बातों को लोग ध्यान से सुन रहे थे। चटिया (भगतिया) सिर धुन रहा था। उसने सिर धुनना बन्द कर कहा पूजा में विघिन मत डालो सन्त ! अपना काम करो। बाबा का कोप मत लो।

सन्त ने 'कहा नहीं भाई, मैं तुम्हें पूजा से नहीं रोकता हूँ। केवल हिंसा के लिए मना कर रहा हूँ।'

चटिया बोला 'अच्छा सोचूंगा। अभी चलो। हमारे बाबा की शक्ति देखो।'

यह कहकर भगतिया ने खप्पर उठा लिया। उसमें आग जल रही थी। उसने उसमें दशान्न डाला। उसकी गन्ध हवा में फैल गयी। वह आगे बढ़ा। उसके पीछे और लोग थे। पास ही लम्बी खुदी जमीन में आग जल रही थी। यह आग ढाई-तीन गज लम्बी थी। आग के अंगारे दहक रहे थे। एक आदमी ने बड़े-छोटे ऊबड़-खाबड़ अंगारों को एक बाँस के सहारे समतल बना दिया। फिर भी आग के ताप में किसी प्रकार की कमी नहीं आयी। वह पूर्ववत दहकती रही।

भगतिया ने आकर आग पर कुछ छिड़का। उससे धुआँ उठने लगा। अब वह स्वयं आग पर चढ़कर पार होने लगा। उसके पीछे करीब ५० व्यक्ति थे। क्रम-क्रम से सभी आग पर चढ़ गये। चढ़कर पार उतर गये। किसी ने 'इस्स' तक नहीं किया। कोई डरा नहीं। घबराया नहीं। आग पर चढ़ने के नतीजों पर विचार नहीं किया। यह भी नहीं सोचा कि जल गये तो क्या होगा ? कितने भयानक अंगारे धधक रहे हैं। किन्तु किसे फुर्सत थी कि इन बातों पर विचार करे। देवता और भगतिया के प्रति अटूट विश्वास था। आग पर चढ़ गये। और सचमुच कोई जला नहीं। सबके सब पार उतर गये। आबाल वृद्ध वनिता। किसी को आश्चर्य नहीं हुआ। इस तरह के कार्यों से लोग परिचित थे। प्रति-वर्ष ही पूजा होती। कभी-कभी वर्ष के बीच में भी।

पूजा के मध्य सन्त कबीर दूर बैठे रहे। सन्त मंडली ने पूजा में भाग नहीं लिया। वे केवल सब देखते रहे। उन्हें तो लोक से बात करने की इच्छा थी।

पूजा के अन्त में भगतिया ने लोगों से कहा 'भाइयो, सन्त कबीर हमारे क्षेत्र के मानी साधु हैं। हमीं लोगों के बीच के हैं। ये कहते हैं पूजा में मारकाट मत करो। लेकिन यह काम तो हमारे पुरखे भी करते थे। इनके पुरखे भी करते

थे। इन्होंने उसे छोड़ दिया। प्रभु जी की मर्जी से हम उसे चला रहे हैं। इससे देवता प्रसन्न होते हैं। गाँव की रक्षा होती है। सबका भला होता है। आखिर मांस तो सभी लोग खाते हैं। हमलोग परसाद लेते हैं। महापरसाद। भगवान की किरपा से हम आग पर चलते हैं। आग खाते भी हैं। आग हमारा कुछ नहीं बिगाड़ती है। देवता परसन रहते हैं।

सन्त ने अहा ठीक कहते हो भगत। लेकिन जिस जीव को मारते हो उससे पूछो वह तुम्हारे बारे में क्या सोचता है ? वह तुम्हें सरापता है। तुम्हारा अशुभ मनाता है। समाज में तुम्हें नीचा दर्जा देने कहवा है। आग पर चलना बेकार है। इससे क्या होने वाला है ? देवता गरीबी दूर करे। असिच्छा का अँधेरा दूर करे। आग पर चलने का चमत्कार से तुम अपने भीतर नहीं देख पाते हो। ऐसी पूजा उपासना में लगे हो जिसका तुम्हारे मन से कोई वास्ता नहीं। यह परदर्सन है। इसे छोड़ो। घट-घट वासी राम को देखो। सभी लोग कण्ठी पहनें। मछ कछ से अलग रहें। निरगुन राम को भजो। निरगुन गाओ। कुछ ही दिनों में लोगों के विचार तुम्हारे प्रति बदल जायँगे। समाज में तुम्हारी परतिसठा बढ़ जायेगी। और देवता माया हैं। केवल राम को भजो।

सन्तों ने देखा। कुछ दूर पर दो-तीन व्यक्ति आग जलाकर सूअर को भून रहे हैं। उसके जलने की गन्ध आ रही थी। चमड़ा और मांस के जलने की गन्ध। सन्तों ने नाक पर कपड़े रख लिये किन्तु भीड़ पर कोई प्रभाव न था। सूअर के जलने की प्रतीक्षा थी। कहीं खाना तैयार हो रहा होगा। एक व्यक्ति कटे पक्षियों को उठा ले गया। दूर ले जाकर उनके पंख नोच रहा था। कैसी उपासना है ? मन शुद्ध होने के स्थान पर मांस खाने का लोभ बढ़ रहा है। हत्या और लोभ। हत्या का लोभ। जीभ सन्तुष्टि का लोभ।

लोगों ने सन्त से प्रसाद पाने का आग्रह किया। सन्त ने कहा 'आज तुम्हारा पानी भी नहीं लूँगा। तुम सभी पाजी हो। झूठ-मूठ में भजन भक्ति की बात करते हो।'

लोगों ने बहुत कहा। किन्तु सन्त न तो पानी वानी पीना स्वीकार कर रहे थे। न यहाँ से टलना चाहते थे। बिना सन्त को खिलाये कोई खा नहीं सकता। सब सबेरे से भूखे थे। पूजा के बाद ही कुछ ग्रहण होगा। भगतिया विशेष परेशान था। उसे भूख तो लगी ही थी। उसके भीतर भी एक भूख जगी थी। सन्त ठीक कहते हैं। ऊँची जाति के लोग वैष्णव हो गये हैं। मांस मदिरा सब छोड़ रहे हैं। कण्ठी ले रहे हैं। समाज में उनकी प्रतिष्ठा है। स्वयं सन्त कबीर को देखिए। ये कौन हैं? हमीं लोगों में पैदा हुए। पले। अब सन्त हो गये हैं। सभी इनकी इज्जत करते हैं। ब्राह्मण भी दण्डौत करता है। सब बाभन बाभन करते हैं। बाभन है कि इन्हें परनाम करता है। उठना है तो हमें भी मांस मदिरा छोड़ना होगा। भगत बनना होगा।

भगतिया ने अपने लोगों को बुलाया। 'तुम लोग पास की बगिया में जाओ। 'बिना सन्त को मनाये मैं कुछ भी नहीं खा सकता। पहले हमें सन्त का परबचन सुनना चाहिए।' कुछ लोगों ने कुछ कहना चाहा किन्तु कह न सके।

सभी बगिया में इकट्ठे थे। माहौल बदल रहा था। भगतिया सन्त मंडली के साथ आया। सन्त को ऊँचे आसन पर बैठाया गया। खजड़ी बजने लगी। लोग निर्गुन गाने लगे। काफी देर तक निर्गुन होता रहा। पूरी सभा निर्गुन में नहा उठी। भूख प्यास जाती रही। सन्त ने प्रवचन पूरा किया।

समूचा गाँव कण्ठी लेने को तैयार हो गया। निश्चय हुआ कि सारे मांस जमीन में गाड़ दिये जायँ। आज सभी उपवास करें। व्रत रखें। किसी के घर चूल्हा नहीं जलेगा। बच्चों के लिये दूध की व्यवस्था कर दी गयी। कुछ वृद्धों को भी दूध देने की कोशिश हुई। किन्तु उन्होंने लेने से इनकार कर दिया।

सबेरे सबने नदी में स्नान किया। पास से रेह मिट्टी मँगाकर कपड़े धोए। बालों को मिट्टी से साफ किया। स्नान का क्रम घंटों चलता रहा। इस बीच कंठियाँ मँगा ली गयी। कंठियाँ धागे में गूंथी गयीं। सन्त ने प्रवचन आरम्भ किया। प्रवचन के बाद सन्त ने अपने हाथों से एक कंठी भगतिया को पहनाया।

सबने प्रतिज्ञा की अब वे मांस, मदिरा का सेवन नहीं करेंगे। अनेक सन्तों ने अलग-अलग लोगों को कंठी दी।

सब प्रसन्न थे। सब के जीवन में नया मोड़ आया। भगतिया आज से भगेलूदास कहलाया। शेष व्यक्तियों ने अपने-अपने नामों में भगत लगाना प्रारम्भ किया। वे नित्य निर्गुन गाते। संध्याकाल अपने-अपने कामों से निवृत्त होकर सत्संग करते। यह बात ऐसी फैली कि गाँव-गाँव के लोग सन्त कबीर के भक्त हो गए।

समाज में कंठीधारी, भगतों और दासों की प्रतिष्ठा बढ़ गयी। इन्होंने अपना धंधा नहीं छोड़ा। जीविका साधन छोड़ना कठिन था। किन्तु इन्हें नीच समझना मुश्किल हो गया। दूर-दूर के लोग सन्तों से शिक्षा लेने आते। दीक्षा लेते। कंठी, माला, तिलक करते। साफ, शुद्ध और पवित्र खाते-पहनते। निर्भय रहते। न किसी से डरते। न किसी को डराते।

× × × ×

लोग भागे चले जा रहे थे। जिसे देखिए वही दौड़ रहा है। कहाँ जा रहे हो भाई ? कौन बताए ? किसी को कुछ नहीं मालूम। इतना सब जानते हैं कि सामने वाले गाँव में एक डायन पकड़ी गयी है। आज उसे गदहा पर बैठाया जायगा। गाँव में घुमाया जायगा। काट कर जमींदोज की जायगी।

कोई कहता है रात में लोगों ने उसे एक बच्चे को खाते पकड़ा है। वह बच्चे का कलेजा निकाल कर खा रही थी। नहीं, नहीं। वह रोज रात में मुर्दघट्टी जाती है। वहाँ मरे बच्चे को कब्र से निकाल कर नंगा होकर नाचती है। बच्चे को गोद में लेकर दूध पिलाती है। बरसों से विधवा है। बाल विधवा है। किन्तु पता नहीं कहाँ से मरे बच्चे के लिये दूध उतर आता है। उसका दूध पीने के लिये बच्चा जी जाता है। दूध पिलाकर उसे काजल का टीका लगाती है। लोरी गाती है। लोरी सुनते-सुनते बच्चा सो जाता है। तब डायन

बच्चे को गला दबाकर मार देती है। मार कर कब्र में गाड़ देती है। यही रोज करती है। कई लोगों ने रात में बच्चे के रोने की आवाज सुनी है। डायन को गाते सुना है। वह गाँव से कब बाहर होती है किसी को पता नहीं। कहते हैं घर से बाहर जाने के पहले घरवालों की खाट के नीचे मुर्दे की राख रख देती है। इससे वे लोग बेहोश सोते हैं। कितना भी हल्ला हो उनकी नींद नहीं खुलती है।

बड़ी बदमाश औरत है। पति को तो बचपन में ही खा गयी। बाद में देवर, सास, ससुर सबको मारकर खा गयी। हर साल गाँव के दो-चार बच्चों को खा जाती है। कहते हैं अपने अमृत पीकर आयी है। कौए की जीभ पीस कर पी गयी है। तब से उसे सिर में दर्द भी नहीं होता है। गेहुँअन का फन जलाकर आंजन बनाती है। पागल कुत्ते के दांत से उठा कर आँखों में लगाती है। ऐसी आँखों से वह जिस भी बच्चे को देख लेती है वह अब तब करने लगता है। श्मशान में गिद्ध के पंखों पर बैठती है। श्मशान के सभी बच्चों को एक बार जगाती है। सबको प्यार करती है। रात बीतने के पहले सबको गाड़कर घर आ जाती है। रात-रात भर श्मशान में नाचती-गाती है। तरह-तरह के बाजे बजते हैं। घूंघरू, पायजेब, कंगन, चूड़ियाँ आदि की आवाज होती हैं। मरे बच्चे रोते हैं। रोने पर यह उनका गला दबा देती है।

संत का मन डूबने लगा। दुष्टों ने आज फिर किसी अबला को तंग किया है। बेचारी कितने कष्ट में होगी। लोग उसकी दुर्दशा कर रहे होंगे। एक तो दैव की मारी। उस पर समाज का यह रवैया। जिसे सहानुभूति और सांत्वना चाहिए उसे लांच्छन और धिक्कार मिल रहा है। उन्होंने शिष्यों से कहा—आओ हम लोग भी सामने वाले गाँव की ओर चलें। भीड़ के पीछे चलो। भीड़ को देखना है तो जाना ही होगा।

संत मण्डली की चाल मंथर थी। लोगों की चाल में जल्दी थी। तमाशे के आरम्भ होने के पूर्व की जल्दी। तमाशा हो रहा होगा। कहीं हमारे जाने के पहले खत्म न हो जाय। ऐसे तमाशे रोज नहीं आते।

औरत करीब-करीब निर्वस्त्र थी। लोगों ने उसे कालिख से पोत कर कहीं-कहीं चूना लगा दिया था। उसके हाथों में चूड़ियाँ भी थीं। माथे पर सिन्दूर भी था जिसे पोंछने की कोशिश की गयी थी। लगता है सिन्दूर उसने स्वयं लगाया था। और लाल चूड़ियाँ भी स्वयं पहनी थी। किसी ने उसे पिछले मेले में चूड़ी खरीदते देखा था।

सामने एक हँसिया गरम हो रही थी। इसी से इस स्त्री को दागा जायगा। दाग कर गाँव में घुमाया जायगा। कभी पैदल और कभी गदहे पर। बाद में गाँव से बाहर कर दी जायगी या कत्ल कर दी जायगी।

स्त्री सिर झुकाए खड़ी थी। न भय, न लज्जा, न गुस्सा। वह शायद किसी दूसरी दुनिया में चली गयी थी। भय, लज्जा और गुस्से को भोग कर इनसे मुक्त हो चुकी थी।

कुछ क्षण तक सन्त भीड़ को देखते रहे। तमाशा देखने को लालायित अविवेकी भीड़ में घुस गए। भीड़ को चीरते उस स्त्री के पास जा पहुँचे। उन्होंने गरज कर कहा ' इस अबला के तुम लोग क्यों तंग करते हो ?'

अचानक सन्त कबीर की वाणी सुनकर लोग सकते में आ गये। कुछ लोग बिल्कुल शान्त हो गये। कुछ बुदबुदाने लगे आ गया बखेड़िया। किन्तु अधिकांश ने अपनी कैफियत दी—देखते नहीं बाबा यह डायन है। जाने कितनों को खा गयी। रात को मुर्दों के बीच नाचती है। देखते नहीं आँखों में सुरमा लगा रखा है। विधवा है फिर भी सिन्दूर लगाती है। लाल चूड़ियाँ पहनती है। आज हम लोग इस पापिन को गाँव से बाहर कर देंगे। जान से मार देंगे।

एक औरत जोर से चिल्लायी 'हाय भगवान पिछले साथ यही डायन की नजर लगी और हमारी भैंस मर गयी।'

दूसरी औरत ऐसे बुदबुदायी जिसे लोग सुन सकें 'हरामी है। मरद खोजती है। कोई जीवित जबान नहीं मिला तो मुर्दघट्टी के मुर्दों को जगाती है। पागल बनती है। कहती है मैं अपने खसम से मिलने जाती हूँ। अरे राँड़, खसम को

तो पहली ही रात खा गयी। अब क्या वह बेचारा तुम्हारे लिये असमसान में बैंठा है। बाबा तुम चले जाओ। आज हमलोग इसको दवा कर देंगे।

किन्तु सन्त ने बेपरवाही के साथ स्त्री को झकझोर दिया। वह जैसे बेहोशी से जगी। सामने सन्त को देखकर भी शान्त रही। रुआँसी होकर बोली—ना बाबा ना। मुझे छोड़ दो। इन लोगों को जो चाहे कर लेने दो। मैं इस जीवन से ऊब गयी हूँ। मरना चाहती हूँ। मर भी तो नहीं पाती। अच्छा होगा ये लोग मुझे मार डालेंगे। क्या धरा है इस जीवन में ? क्यों जिऊँ ? किसके लिये जिऊँ ?

यह कहती-कहती स्त्री रोने लगी। अब भीड़ का रुख बदला। लोगों को दृश्य परिवर्त्तन का अनुभव हुआ। भीड़ मौन हो गयी।

सन्त ने उसका हाथ पकड़ा। नहीं बहन, नहीं। ऐसे नहीं मरते। मरना तो सबको है। जो आया है सब जायगा, राजा रंक फकीर।

तुम अपने घर जाओ। ये लोग नासमझ हैं। ना समझी से तुम्हें कष्ट दे रहे हैं।

बाबा का संकेत पा कई शिष्यों ने स्त्री को सहारा दिया। उसे घर तक पहुँचाया। भीड़ बिना किसी तमाशा देखे निराश होकर हटने लगी। सन्त ने खेल बिगाड़ दिया था। लोग निराश हुए। दुख भी था। किन्तु सन्त मंडली के प्रभाव में कोई कुछ बोला नहीं।

थोड़ी देर में तमाशे की जगह सूनी हो गयी।

काहे री नलिनी...

लोग योगिनी को भूल गये। ऐसे भी वेचारी को कौन याद करता था ? क्या था उसके पास याद करने लायक ? प्रभु ने एक शरीर दिया था। रूप, रंग और अवस्था दी थी। वह भी एक अतीत छीन ले गया। दे गया भयानक दुख। किन्तु निर्मम संसार ने उसके दुख का अनुभव नहीं किया। सुखिया सब संसार है। दुखियादास कबीर।

सन्त का मन रो रहा है। कई दिनों से कहीं गये नहीं। यात्राएँ बन्द हैं। बरसात में आवागमन यूँ भी कम हो जाता है। चारों तरफ पानी, पानी। पानी और पानी। इस पानी भरी दुनिया में दास कबीर रो रहे हैं। क्यों रो रहे हैं ? एक योगिनी की मौत पर। पर आज क्यों रो रहे हैं ? योगिनी को मरे तो वर्षों हो गये। मरे के लिये रोना क्या कोई अच्छी बात है ? उसका कोई उपयोग भी है क्या ? फिर, तब तो रोए नहीं। जब उसके मरने की खबर आयी थी। आज तो वह खबर भी मर गयी है।

धान को नित्य पानी चाहिये। धान, पान नित स्नान। किन्तु दोनों का स्वभाव भी बड़ा विचित्र है। पानी बिना रहा भी नहीं जाता। ज्यादा पानी बर्दाश्त भी नहीं कर सकते। पान तुरत गलता है। धान देर से। किन्तु गलता है वह भी। कई दिनों से धान का पानी निकल रहा है। पानी घटे तो पानी निकले। पानी निकले तो पानी घटे। सभी धान के खेत डूबे हैं। धान डूबे हैं। धूप तेज निकल आयी है। सावन-भादों की धूप तेज होती है। सारे धान कुम्हलाकर गल गये। यही हाल है कमल का। पानी में पैदा होता है। पानी के ऊपर रहता है। किन्तु पानी उसके ऊपर चला गया तो अनर्थ हुआ। गल जायगा। कमल पानी और पाले से गलता है। पानी बढ़ाता भी है। गलाता भी है। पानी में रहना ठीक नहीं। पानी से ऊपर रहना ठीक है। पानी बिना जीना कठिन। पानी में जीना कठिन।

कमाल और कमाली गिरहथ नहीं बनना चाहते हैं। उनके मन में गिरहथी के प्रति विराग है। दोनों ने शादी करने से इनकार कर दिया। सन्त की इच्छा थी वे उनका विवाह कर दें। किन्तु आज दोनों ने इनकार कर दिया। दोनों भाई बहन साधना में लीन हैं। उन पर साधना का पानी चढ़ा है। विषय नदी से निकलकर साधना समुद्र में बह रहे हैं। लोई चिन्ता में है। आज उसने बड़ी गुप्त बात प्रगट की। उसके मुँह से निकल ही तो गया। लोई तो अकन कुँआरी है। ये बच्चे योगिनी के हैं। लोई इन्हें पालती है। यशोदा जैसी। यशोदा ने कृष्ण और बलराम को पाला था। यह लोई भी पाल रही है। लगता है जो बातें सन्त कबीर नहीं जान सके हैं वह ये दोनों बच्चे जानते हैं।

किसने कहा बच्चों को ? पता नहीं। शायद इसी का प्रभाव है। ये गृहस्थी नहीं बसाएँगे। लोई दुखी है। बहन गयी। खुद भी विरथा रही। केवल इन बच्चों के लिये है। उसका मातृत्व जगा है। मौसी का प्यार माँ के प्यार से भी बड़ा होता है। माता मारती भी है। मौसी केवल जिलाती है। मारे माय जिलावे मौंसी। आधी राति खिलावे मौसी। इन्हीं दोनों में लोई का संसार था। बहन की थाती। थाती जमा करने वाला चला गया। ऐसे में थाती उसकी होती है जिसके यहाँ जमा होती है। लोई धाय मात्र है।

दुनिया कितना समझती है। कितना और कैसे झूठ समझती है। सत्य अलग है। तथ्य अलग है। लोई की सन्तान और पति सत्य हैं। तथ्य नहीं। कबीर साहब का विवाह सत्य है। तथ्य नहीं। तथ्य का सुन्दर होना आवश्यक नहीं। सत्य सदा सुन्दर होता है।

सन्त कबीर जंजाल में फँसे हैं। क्या कहें ? बालकों का सोचना ठीक है। किन्तु लोई को कौन समझाये ? लगातार गल रही है। ढह रही है। विफर रही है। उसकी सारी शिकायत सन्त से है। साहब से है।

कई दिनों से योगिनी मन पर छायी है। अभागी। अपनी सन्तान को अपनी न कह सकी। परिवार न बता सकी। उसे लाखों काले विच्छुओं ने काटा होगा।

अपनी ही सन्तान को अपना न कहने का दर्द कैसा रहा होगा ? एक दर्द जो भीतर ही भीतर मनुष्य को खाता है। खोखला करता है। जैसे राजरोग के कीड़े छाती को छलनी कर देते हैं। इस छलनी मन से उसने कुछ छानने की कोशिश की। किन्तु सब बह गया। पानी ही तो था। सब था। किन्तु कुछ नहीं था। रहकर भी न रहने का दर्द था। अपना दुख। बहन लोई का दुख। माता-पिता के न रहने का दुख। शरीर के साथ धोखे का दुख। सन्तान को न छूने का दुख।

लोई के कथित बच्चों को ललचाई निगाहों से देखती। देख नहीं पाती थी। भागती रहती। भागना उसका जीवन क्रम बन गया था। अन्त में जीवन से भी भाग गयी। आत्महत्या की अपराधिनी बनी। जन्म से मृत्यु तक कभी चैन नहीं मिली। रोती ही रही। स्वयं भी रोयी। दूसरों को भी रुलाया।

सन्त ने अपने भीतर एक प्रवाह का अनुभव किया। लगा रो देंगे। आँखें कुछ नम होने लगी थीं। मन तो रो ही रहा था। शरीर भी बहना चाहता है।

उन्होंने अपने को रोका। ध्यान को त्रिकुटी पर ले गये। मन गगन गुफा में विश्राम करने लगा। षट्चक्रों का भेदन करने लगा।

प्रातः क्रिया के बाद सन्त ने ज्यों ही ध्यान लगाया किसी ने दरवाजे पर दस्तक दी। देखा तो सामने एक स्त्री खड़ी है। बिल्कुल स्वच्छ वस्त्रों में लिपटी। वह तेजी से आगे बढ़कर सन्त के सामने आ गयी। सन्त चकित थे। कौन है यह औरत ? ऐसा तो कभी नहीं होता। सन्त की कुटिया में स्त्री का क्या काम ? लगता है कोई सहायता चाहती है। दुखिया है। किसी ने इसे सताया है। दुष्ट लोग स्त्री पर ही अपनी वीरता दिखाते हैं। बादशाहों, नवाबों का तो कुछ नहीं बिगाड़ सकते। उनके नाम से धर्म बदल देते हैं। जाति और पेशा बदल देते हैं। किन्तु स्त्री पर अतियाचार करते हैं।

स्त्री को सोचने में देर लगी। वे समझ न सके कि स्त्री के साथ कैसा व्यवहार किया जाय ? किन्तु स्त्री ने दुविधा दूर की। उसकी भाषा प्रखर हुई 'क्या

सोच रहे हो सन्त ? मुझे पहचाना नहीं ? मैं तुम्हारी दासी हूँ। योगिनी हूँ जिसे तुमने मरा समझ लिया था।

और ठीक ही समझा था। मैं जीवित ही कब थी ? मर तो मैं कभी की गयी थी। आज भी मरी हूँ। कल भी मरी थी। मरी तो जनमी ही थी। केवल तुम्हें देखकर जी जाती हूँ।

आश्चर्य और प्रसन्नता दोनों एक साथ सन्त के चेहरे पर व्यक्त हो गये। उनके मुख से निकला—योगिनी। यह क्या देख रहा हूँ प्रभु ?

उनकी आँखों में शून्य उभर आया। लगा वे रो देंगे। वे कुछ क्षणों के लिये मौन हो गये। योगिनी को बैठने का संकेत कर स्वयं ध्यानस्थ हो गये। बोले—तो क्या तुम्हारी मृत्यु की खबर झूठ थी ?

योगिनी बोली–प्रत्यक्ष देखकर भी पूछते हो ? मरना तो चाहती थी। किन्तु तुमने मरने कहाँ दिया ? गिरी तो थी गंगा में। किन्तु एक स्त्री ने बचा लिया। अभागी स्वयं डूब मरी। बहुत देर तक मुझे बचाने की कोशिश करती रही। अन्त में स्वयं बह गयी। मुझे एक आदमी ने खींचकर बाहर कर लिया। वह उसे भी बचाना चाहता था। किन्तु यह बहुत दूर निकल गयी थी। घाट पर मेरा त्रिशूल छूट गया था। लोगों ने समझा मैं बह गयी। यही खबर तुम्हारे पास आयी। मैंने उसका खंडन नहीं किया। स्वस्थ होते ही नये लिवास में आ गयी। मुझे रंगे वस्त्रों से घृणा हो गयी है। बहुत दिनों तक अपने को छिपाये रही। अब तुमसे मिलने को आतुर थी। वही व्यक्ति आने नहीं देता था। उसे पूरा विश्वास था। मैं पुनः गंगा में कूद जाऊँगी। उसने मुझसे वादा करा लिया है। मैं आत्महत्या न करूँ। बड़ा भला आदमी है। जाति का मल्लाह होकर भी वह किसी योगी, संन्यासी या अतीत से महान् है। किसी भी प्रकार के लोभ-मोह से मुक्त है। सदाचारी। पर सेवक। वरना उसे क्या जरूरत थी कि वह मुझे बचाता। बचाकर सेवा करता। मैं कौन हूँ उसकी। मेरी कहानी सुन कर उसे और भी दया आ गयी। कहने लगा—बहन स्त्री जीवन बड़ा कठिन है। किन्तु

भगवान् की मेरे ऊपर बड़ी कृपा है। उन्होंने मुझे एक स्त्री की रक्षा और सेवा का अवसर दिया। यह जानकर कि मैं तुमसे मिलने जा रही हूँ। वह प्रसन्न हुआ। तभी उसने मुझे यहाँ आने की अनुमति दी। तुम्हारे प्रति उसके मन में बड़ी श्रद्धा है।

वहुत दिनों से तुम्हें, लोई और लोई के बच्चों को देखने की इच्छा थी।

लोई के बच्चों की बात सुनते ही सन्त की भौंहों में बल पड़ गया। उन्होंने सिर घुमाया। बोले—किन्तु ये बच्चे तो तुम्हारे हैं। लोई तो धाई मात्र हैं। आखिर तुमने यह क्यों छिपाया ? क्या इसलिये कि ये तुम्हारी अवैध सन्तानें हैं ?

योगिनी पर इस प्रश्न का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। बिना किसी हिचक के बोली—तुम्हें ठीक मालूम हुआ है। ये बच्चे लोई के नहीं हैं। किन्तु ये मेरे भी नहीं हैं। न तो ये अवैध हैं। ये मेरी एक दूर की वहन की वैध सन्तानें हैं। अभागी दूसरी सन्तान को जन्म देते ही संसार से विदा हो गयी। कुछ दिनों वाद इनके पिता भी हैजे के शिकार हो गये। फिर तो सारा भार मेरे ऊपर आ पड़ा। मैं इन्हें अधिक देर अपने पास न रख सकी। लोई के जिम्मे किया। एक तो मेरा कोई निश्चित घर न था। दूसरे मैं नहीं चाहती थी कि इन बच्चों पर मेरी छाया भी पड़े। ये कहीं मुझसे छू न जायँ। मुझे अपने इस शरीर से कितनी नफरत हो गयी है यह कह नहीं सकती।

मैंने लोई से भी सारी स्थितियाँ नहीं बताई। जरूरत भी नहीं थी। लोई को एक काम मिल गया। वह अद्वैत मन से इन बच्चों को पालने लगी। अब ये बच्चे लोई के हैं। तुम्हारे हैं। प्रभु कृपा से तुम्हारे साथ इनका नाम भी रौशन होगा। लोई को इन्हें पालने, इनकी माँ बनने का पुण्य मिलेगा। केवल यह अभागी····।

इतना कहकर योगिनी की आँखें झरने लगीं। उसने हिचकियों में कहा 'मुझे कोई नहीं जानेगा ? मेरा यह जीवन व्यर्थ गया। किसी की न हो सकी। वासना की भयानक आग में जलती रही। पानी में बहती रही। पत्थर से ठोकरें खाती रही। न समुद्र में मिली। न शिव प्रतिमा बन सकती।

जब से तुम्हें देखा है। मरने की इच्छा समाप्त हो गयी है। उस रोज मेरा बच जाना मेरी अन्तर्रात्मा की पुकार थी। मैं अपने भीतर के देवता की इच्छा के विरुद्ध गंगा में कूदी थी। किन्तु भीतर बैठे देवता ने यह नहीं होने दिया। मेरे चलते एक अभागी संसार से विदा हो गयी। मुझ पर पुनः एक पाप का टीका लगा। हो सकता है वह भी मेरे ही समान दुखिया हो। सूखी धरती के पानी में न डूब सकी तो गंगा में डूबने आई हो।

इतना कहते-कहते योगिनी सन्त के चरणों पर लुढ़क गयी। मुझे बचा लो सन्त। मैं बड़ी अभागी हूँ। मुझे तुम्हारी कृपा चाहिये। सन्त शरण चाहिए। चुप मत रहो। कठोर मत बनो। बुद्ध को याद करो। भगवान् ने वेश्या आम्र-पाली को शरण दिया था। पवित्र किया था।

मैं वेश्या नहीं हूँ। न कभी थी। हाँ, पवित्र भी नहीं हूँ। मैं हर समय तुम्हारा ही स्वप्न देखती हूँ। इस स्वप्न ने मुझे पवित्र किया है। किन्तु मैं तुम्हारे शरीर का स्पर्श नहीं चाहती। मेरी अपवित्रता मेरे साथ ही समाप्त हो जाय। कोई सन्त कलंकित न हो। सन्त होना कठिन है। शुद्ध होने में परेशानी है। दाग लगते कितनी देर लगती है ? हम जान भी नहीं पाते। कीचड़ लग जाती है। मुझे ही देखो। मैंने गन्दा होने के लिये क्या कोई कोशिश की थी ? अपने को बचाना ही चाहा। बचाकर रखती थी। किन्तु सब हो गया। शायद यही मेरे भाग्य में बदा था।

वर्षों से तुम्हारा स्वप्न देख रही हूँ। तुम्हारी मूर्ति आँखों में घूमती है। पत्थर की मूर्ति कलेजे से लगाकर सोती हूँ। जागकर भी चिपकाएं रहती हूँ। पुरुष निर्गुण-निराकार का उपासक हो सकता है। किन्तु स्त्री को सगुण-साकार मूर्ति ही अच्छी लगती है। सारा शरीर बहने लगता है। वस्त्र भीग जाते हैं। जैसे नहाकर आयी हूँ। पानी में खड़ी हूँ। डूब रही हूँ। ऊभ चूभ कर रही हूँ। चाहती हूँ शरीर को रगड़ कर पोंछ दूँ। विकृतियाँ निकाल दूँ। कभी पानी न बहे। सूखी हूँ। सूखी रह जाऊँ। किन्तु हो नहीं पाती। शिख से नख तक

भीगता है। पानी का प्रवाह जाँघों, घुटनों और टखनों में फैलकर शिथिलकर देता है।

सूखती हूँ तो वंजर बन जाती हूँ। ऐसा वंजर जहाँ हरे तिनके की गन्ध भी न मिले। रेह भरी ऊसर धरती। कोई चीर देता इस धरती को। किसी तेज फाल की नोंक इस अहल्या हो हलका कर देता। जोतता, चीरता, रगड़ता चला जाता। तब तक चीरता जब तक धरती की नस-नस टूट न जाय। वह विदीर्ण हो बीजांकुर के योग्य न बन जाय। किन्तु यह हो न सका। इसे एक अभागे अतीत ने और भी व्यर्थ बना दिया।

योगिनी मौन हो गयी। कहने के लिये बहुत कुछ था। किन्तु कह नहीं पा रही थी। एक ही बात बार-बार दुहरा रही थी। सन्त, सन्त, सन्त। मुझे स्वीकार करो। अपना बना लो। अशीसो। आम्रपाली सा उद्धार करो। मेरी नस-नस में कीड़े रेंग रहे हैं। उन्हें अपने पवित्र स्पर्श से साफ करो। मेरी जलन दूर हो। काँटों सा चुभने वाला दर्द। वेदर्द दर्द। बिच्छू, वर्रे और मधुमाखी के सम्मिलित आक्रमण से काटे का दर्द। मेरा शरीर लहू से भीग गया है। सूजन है। भयानक सूजन...।

योगिनी जमीन पर लुढ़क गयी थी।

उसने फिर कहा 'मेरे भीतर अथाह जल है। कीचड़ है। पूरा जीवन कीचड़ और कचरे से भरा रहा। इस कीचड़ भरे पानी में एक कमल है। यह कमल तुम हो। एक सन्त है। मैंने शायद एक ही अच्छा काम किया। कमल से कीचड़ को धोती रही। किन्तु भयानक बदबू से भरी कीचड़ को साफ न कर सकी। स्त्री जीवन पवित्र न बना सकी। भगवान् से एक ही प्रार्थना है। यह जन्म व्यर्थ गया। कम से कम अगले जन्म कमल प्राप्त कर सकूं। निर्मल बन सकूं।'

कहते-कहते योगिनी एकाएक रुक गयी। उसकी साँस तेज हो गयी। सन्त ने उसके माथे पर हाथ रखा। वह ठंडी हो रही थी।

रामधुन का समय हो गया था। एक शिष्य ने पास आकर देखा—अरे, यह तो योगिनी है। यह अभी जीवित है ? अभागी। मरेगी क्यों ? मरना इतना आसान है क्या ? रोज मरने वाले को मौत भी जल्दी नहीं आती है।

सन्त ने कहा—ठीक कहते हो रामदास। नलिनी सूख रही है। पानी में भी प्यासी है। भला पानी में किसी की प्यास बुझी है ? साधु पुरुष पानी में तरसता है। आग में सीतल होता है। दिन में सोता है। रात में जागता है। जाग कर रोता है। चलो, इस समय तो सत्संग में चले। रामसनेह खंजड़ी बजा रहा है। अन्धा केवल भीतर देखता हैं। आँख वाले बाहर देखते हैं।

यह कहते हुए सन्त उठ गये। उनके साथ थे साधु रामदास।

●

गालिब नगरी गाँव...

घंटी-घड़ियाल शंख बज रहे थे। हाथियों पर हौदे कसे थे। घोड़ों पर कई संन्यासी बैठे थे। आगे-आगे पालकी चल रही थी। पालकी में छः कहार जुते थे। इनके साथ लाल-लाल वस्त्रों में अंगरक्षक चल रहे थे। अंगरक्षकों को वस्त्रों में चमकी, गोटे आदि जड़े थे। सभी ने पगड़ी बाँध रखी थी। हाथों में चाँदी-सोने जड़े अस्त्र-शस्त्र थे। साथ में कई बैलगाड़ियाँ थीं। सभी गाँड़ियों और ऊँटों पर सामान लदे थे। तम्बू-कनात रखे थे। दो गाड़ियाँ केवल भोजन के बर्तनों से लदी थीं। कई पर भोज्य पदार्थ थे। इनके चलने से कोलाहल हो रहा था। धूल उड़ रही थी। जैसे किसी राजा या नवाब की सवारी चल रही हो।

आस-पास के नर-नारी, बाल-वृद्ध निकल-निकल कर यात्रा देख रहे थे। सब की आँखों में श्रद्धा थी। आश्चर्य था। अपनी शक्ति भर चढ़ावा भी चढ़ा रहे थे। सम्पन्न घरों के पास सवारी रुक जाती। तुलसीदलयुक्त प्रसाद वितरण होता। आस्तिक भक्त बाबा के पैर धोते। उन्हें आपस में बाँटते। चरणामृत पीते। रास्ते में, घरों में, छप्पर पर छिड़कते। आँखों में लगाते। अनेक लोग साष्टांग दंडवत करते। माताएँ बच्चों को लिये सिर झुकवातीं। मनौतियाँ मानतीं।

इस मंडली में कोई स्त्री नहीं थी। सब पुरुष ही पुरुष। सभी पुरुष संन्यासी थे। सब के ललाट चन्दन चर्चित थे। गले में माला। हाथ में कमण्डल। काँख में दबी पोथी। सभी संन्यासी गंभीर मुद्रा वाले थे। अपने में खोए। चिन्तनमूर्ति।

लश्कर की आवाज, धूल आदि देख साहेब ने समझ लिया किसी महन्थ की सवारी है। एक शिष्य से कहा 'जरा बढ़कर देखो तो किस महात्मा की

सवारी है ?' जानकार शिष्य ने कहा 'गुरुदेव, यह श्री श्री १०८ श्री पगल बावा की सवारी है।'

सन्त ने पुनः कहा—जा, कह दे कबीर आपका दर्शन चाहते हैं। साधु की संगति कभी निरफल नहीं जाती। आज भला दिन है। साधु की संगति होगी। सन्त कबीर साहेब का नाम सुनते ही पालकी में बैठे महन्थ ने पालकी रुकवा दी। उतर पड़े। बोले—'कहाँ हैं कबीर ? मैं स्वयं उनसे मिलना चाहता था।' जहाँ भी जाता हूँ। उनकी चर्चा सुनता हूँ। मुझे पूरा विश्वास था। वे किसी दिन महान् सिद्ध बनेंगे। बात सच निकली। उनमें शुरू से ही उच्च विचार थे। त्याग और संन्यास के लक्षण थे। बचपन में हम साथ-साथ खेल चुके हैं। मैंने गृह त्याग दिया। वे माता-पिता की ममता में घर न छोड़ सके। मुझे भी रोक रहे थे। कहते थे गिरही संन्यासी बनो। संन्यास के लिए घर त्यागना जरूरी नहीं है। अब तो सुना है उन्होंने विवाह भी कर लिया है। बच्चे भी हैं। आश्चर्य है फिर भी इतने बड़े महात्मा हैं।

शिष्य ने कोई उत्तर नहीं दिया। केवल सुनता रहा। महन्थ के रुकने से पूरी मंडली रुक गयी। महन्थ ने एक शिष्य को बुला कर कहा—तुम लोग यहीं रुको। मैं महात्मा कबीर का दर्शन कर आता हूँ। मेरे साथ कोई नहीं जायगा।

सारी मंडली ठहर गयी। महन्थ सन्त कबीर से गले मिल रहे थे। सन्त ने पूछ ही तो दिया क्यों भाई यह सब क्या है ? यह राजसी ठाठ। यह बाजा। लश्कर। राजाओं जैसा प्रदर्शन। यह कौन सा संन्यास है ? इसमें क्या छूटा है ? इतनी भीड़ जुटानी थी तो संन्यासी क्यों बने ? इसीलिये न कि घर में रहकर इतना आडम्बर शायद नहीं होता ?

महन्थ मौन रहे। उन्हें कोई जवाब नहीं सूझ रहा था।

सन्त ने पुनः कहा 'रामदास, तुम्हें याद होगा। तुमने कहा था 'मैं घर छोड़ रहा हूँ। माया छोड़ रहा हूँ। विषय मुक्त हो रहा हूँ। मुझे किसी चीज की

वासना नहीं है । लेकिन अब तो ऐसा नहीं लगता है । गरीब समाज का साधु इतना समृद्ध । इतने ठाट-बाट वाला हो यह अत्यन्त दुख है । इसमें न वासना छूटी । न विषय छूटा । गिरहस्थ न कहलाकर भी तुम भारी गिरहस्थ हो । संन्यास और साधुता का व्यापार कर रहे हो ।

सन्त की बातें सुनकर महन्थ जी अत्यन्त विगलित हो गये । उन्होंने अत्यन्त दीन वाणी में कहा—नहीं, नहीं । ऐसा न कहें । इसमें मेरा कुछ भी नहीं है । यह सब तो भागवत भगवान् का है । मैं तो उनका सेवक मात्र हूँ ।

सच्चाई यह है कि मैं भी कभी-कभी इस आडम्बर से घबड़ा जाता हूँ । यही करना था तो घर ही क्या बुरा था ? पहले मुझे लगता था घर पर साधुता नहीं हो सकती है । घर माया है । विषय भंडार है । किन्तु अब तो लगता है कि माया जंगल में भी है । समुद्र, नदी, पहाड़ और कन्दराओं में भी है । अब सोचता हूँ । मेरा घर छोड़ने के प्रति भी वासना थी । त्यागी बनने या कहलाने की वासना । दूसरी वासना पोथो के प्रति हुई । मेरे पास कुछ था नहीं । मात्र कुछ पोथियों का संग्रह था । निश्चय ही यह संग्रह गृहस्थ के संग्रह से भिन्न था । किन्तु अब समझ में आता है कि था यह भी संग्रह ही ।

जो हुआ बता रहा हूँ । मेरे पास कुछ पोथियाँ थीं । इन पोथियों के मखमली बेठन थे । ठाकुर जी की मूर्तियाँ थी । उन मूतियों को ढँकने के लिये वस्त्र थे । थोड़े से प्रसाद की व्यवस्था करनी होती थी । किन्तु चूहे बहुत परेशान करते । बेठनों पर उनकी खास नजर रहती । अक्सर उन्हें बुरी तरह से कुतर देते । पुस्तक एवं प्रसाद में भी उनके दाँत लग जाते । प्रायः भगवान् को जूठे प्रसाद चढ़ाने पड़ते । यह प्रायः अनजान में होता । मूषक का जूठा प्रसाद बने यह देख हमें नित्य ग्लानि होती । चूहों का क्या किया जाय ? उन्हें समझाया नहीं जा सकता है । उपदेश और प्रवचन व्यर्थ हैं । खुद समझने से रहे । ऐसी स्थिति में एक ही उपाय था । एक बिल्ली पाल ली जाय । निश्चय ही प्रभु ने बिल्ली का निर्माण चूहों से रक्षा के लिये ही किया है । वरना बिल्ली का और कौन उपयोग है ? शास्त्रों ने मार्जार की उपयोगिता पर कहीं प्रकाश नहीं डाला

है। मैंने अनुमान प्रमाण एवं प्रत्यक्ष प्रमाण का सहारा लिया। सोचा—एक बिल्ली पालनी होगी। बिल्ली चूहों से रक्षा करेगी। प्रसाद को जूठा नहीं होने देगी। बेठन को कटने से रोकेगी। यह भी प्रभु की सेवा होगी। चूहे केवल बिल्ली से डरते हैं।

एक बिल्ली पाल ली गयी। अब समस्या आई बिल्ली तो पाल ली गई। किन्तु वह खाएगी क्या ? तो उसके लिये दूध की व्यवस्था आवश्यक है। हमारे यहाँ बिल्ली को कष्ट हो। वह दुर्बल रहे। यह पशु हत्या होगी। वह हमें शाप देगी। मैंने बचपन में सुन रखा था कि बिल्लियाँ बड़ी जल्दी शाप देने लगती हैं। बिल्ली को दूध पिलाने के लिये गाय चाहिए।

तो गाय आ गयी। मैं गो माता की सेवा से प्रसन्न हुआ। सुबह-शाम गो पूजन करता। गो, गंगा, गायत्री और गाँव हमारी संस्कृति के मूल हैं। इनकी पूजा से किस व्यक्ति को प्रसन्नता नहीं होगी ? मैंने प्रभु की माया को धन्यवाद दिया। उसने मुझे गो सेवा का अवसर प्रदान किया। मैंने इसे अपना पुण्योदय समझा। किन्तु कठिनाई तब आई जब मैंने देखा कि अकेले मुझसे गो सेवा नहीं हो पा रही थी। गो माता को चारागाह भी ले जाना था। मैं क्या-क्या करता ? गो माता हमारे यहाँ कष्ट भी न पायें। तो उन्हें धूप, वर्षा और सर्दी से बचाने के लिये गृह निर्माण हुआ। मैं स्वयं पेड़ के नीचे रहता। किन्तु माता को घर के भीतर रखता। उन्हें चराने के लिये एक सेवक की नियुक्ति हुई। उस सेवक के लिये भी घर बने। उसके जीवन यापन की व्यवस्था हुई।

एक दिन भयानक आँधी आई। वर्षा हुई। कई दिनों तक पानी बरसता रहा। इतना पानी बरसा कि भगवान भागवत सहित दूसरे पुस्तक प्रभु भीग गए। पानी का वेग तीव्र था। वे पानी में बहने लगे। उनके रख-रखाव के लिये एक घर की व्यवस्था आवश्यक हो गयी। जिस पेड़ के नीचे हमारा निवास था वहीं एक गृह का निर्माण कराया गया। गो माता के लिये भोजन के लिये खेत उप-लब्ध किये गये। इससे हमारी अनेक समस्याओं का समाधान हो गया। ठाकुर

जी के प्रसाद के लिए अब कहीं जाने की जरूरत नहीं रह गयी। इन्हीं खेतों से प्रसाद की व्यवस्था हो गयी।

किन्तु इन कार्यों के लिये कई आदमियों की नियुक्ति करनी पड़ी। धीरे-धीरे आश्रम में भीड़ बढ़ने लगी। पोथी प्रभु की सेवा में मैं भी गृह के भीतर रहने लगा।

एक साधु को कागज पत्रों की देखभाल का काम सौंपा गया। वे राज-काज के जानकार थे। पहले राज कर्मचारी थे। राजकर्मचारी से संन्यासी बने थे। राजकर्मचारियों से बात करने में सिद्धहस्त थे। राजकर्मचारियों के दाँव-घाट जानते थे। उन्हें काम कराने एवं रिश्वत लेने-देने का अभ्यास था। काम कराते समय उनकी वाणी से अमृत बरसती। किंतु काम होते ही अमृत मृत बन जाती। सारा रस सूख जाता। वे देखकर भी नहीं पहचानते। सुनकर भी बहरे बने रहते।अब यह आश्रम मठ कहा जाने लगा। यह नामकरण कब किसने दिया यह पता नहीं। किंतु यही नाम प्रचलन पा गया। मैं मठ का स्वामी हो गया। मठाधीश हो गया। कोठारी, व्यवस्थापक तथा अन्य कर्मचारियों की नियुक्त हुई। कोठारी सामानों की देखभाल करता है। व्यवस्थापक लाता है। वितरण की प्रणाली, मात्रादि तय करता है। उन्हें उचित लोगों में वितरित करता है। कुछ कम न हो। इसकी व्यवस्था करता है। मठ का खर्च बढ़ने लगा। हम चढ़ावे की प्रतीक्षा करने लगे। संपन्न और धनी भक्तों की आशा करने लगे। भक्ति गौण होती गई। ठाकुर जी, पोथीजी की रक्षा में हमने पूरो गृहस्थी बसा ली। उनके लिये हमें अनेक तड़क-भड़क वाले सामानों की जरूरत पड़ी। आमदनी और खर्च के ब्यौरे बने। लोगों की नजर बदलने लगी। अनेक लोगों को दृष्टि हमारी साधना से हटकर हमारे धन पर रहती है। धन ने राग-द्वेष पैदा किया। महल, मकान और मालखाने में ठाकुरजी, पोथी जी आदि द्वितीय कोटि के हो गए है। मेरा सारा समय संपत्ति रक्षा और उनको बढ़ाने में बीत जाता है।

मैं आज भी उदासीन हूँ। किंतु पोथी-प्रभु की रक्षा में सब करना पड़ता है। क्या करूँ लाचार हूँ। यह जानते हुए कि यह सब माया है। किंतु माया

में फँसा हूँ। कभी-कभी सोचता हूँ। हमसे अच्छा तो गृहस्थ है। बिना किसी ताम-झाम के भगवान का भजन करता है। कठोर परिश्रम करता है। उसके बाद भी ईश्वर का दिया ही खाता है। खुद खाता है। दो चार आश्रितों को खिलाता है। आये हुए साधु-संन्यासियों और अतिथियों का भी सत्कार करता है।

संत कबीर धैर्य से महंथ की बातें सुन रहे थे। बातें पूरी होने पर दोनों ने गहरा श्वास छोड़ा। माया की प्रबलता पर चकित हुए। माया किसी को नहीं छोड़ती। संत एक अतीत का कथा सुन चुके थे। वहाँ माया काम बनी थी। यहाँ धन बनी। स्त्री की इच्छा या धन की इच्छा। यह इच्छा ही लोभ है। इच्छा या लोभ माया है। वह अतीत भी ऐसे ही बर्बाद हुआ होगा।

संत ने कहा ठीक कहते हो। अब तुम्हारी मुक्ति नहीं है। तुम्हारे जैसे संन्यासियों से समाज की कुछ भी भला नहीं हो सकता है। उलटे नुकसान होगा। महंथ चला गया। संत कबीर काफी देर तक माया की शक्ति पर विचार करते रहे। संत प्रभु के ध्यान में तल्लीन हो गए। इसी बीच लोई ने आवाज लगाई—क्या सोच रहे हो साहेब ? मेरी चिन्ता मत करो। स्त्री कभी किसी से कुछ नहीं माँगती। मैंने भी तुमसे कभी कुछ माँगा नहीं। पुरुष स्वयं देता है। स्त्री को घेर कर देता है। पालतू बनाकर देता है। देना मनुष्य का धर्म है। लेने की प्रवृत्ति सामान्य दीखती है। किन्तु देने को कोई नहीं देखता। क्यों नहीं देखता ? इसलिये कि लेने में द्वन्द्व है। झगड़ा है। तकरार है। एक लेना चाहता है। दूसरा देना नहीं चाहता। किन्तु देते समय ऐसा नहीं होता। दाता को कोई रोक नहीं सकता। दाता मुक्त है।

सन्त को लोई की बातों में रस नहीं आ रहा था। वे लोई से घबराने लगे थे। इसलिये नहीं कि लोई स्त्री थी। या वे स्त्री से डरते हैं। नहीं, वह स्थिति बीत चुकी थी। लोई और सन्त के सम्बन्धों में कभी कोई काम जनित वासना न तब थी न अब है। घबराहट का कारण उसके बच्चे हैं। वह सन्त में बच्चों के प्रति विशेष ममता चाहती है। सन्त कमाल को अपना उत्तराधिकारी घोषित करे। लोई यही कहने आती है। किन्तु सन्त किसी उत्तराधिकार की झंझट में

नहीं पड़ना चाहते । उत्तराधिकार अर्जित सम्पत्ति है । सन्त का उत्तराधिकारी सन्त शिष्य होगा न कि पुत्र । वंशवाद राजनीति के लिये शायद ठीक हो सकता है । जहाँ साधना है वहाँ कैसा उत्तराधिकार ? साधना की पूर्णता परिवार से नहीं व्यक्तिगत प्रयासों से होती है । प्रभु कृपा से होती है । राजसत्ता में कोई साधना जरूरी नहीं है । राजाओं के घोर अज्ञानी बालक भी गद्दी पर बैठ जाते हैं । कुछ अशान्ति भी हुई तो कोई बड़ा फर्क नहीं पड़ता । किन्तु साधना तो अत्यन्त ही गोपनी है । व्यक्तिगत है । वंश भोग है । भोग फल है । साधना त्याग है । सब छोड़ना है । अपने आप से भी मुक्त होना है ।

किन्तु लोई को कौन समझाए ? सन्तान के प्रति स्त्री का मोह भयानक होता है । वह अपने मोह के आगे कुछ सुनने को तैयार नहीं होती है । यही हाल लोई का है । आश्चर्य यह है कि कमाल के सवाल पर लोई उग्र हो जाती है । झगड़ा करने पर उतारू हो जाती है । आज झगड़ कर गयी है । रोती भी है । मनाती भी है । आँखें लाल भी करती है ।

सन्त केवल मौन रहते हैं । मौन । मौन । मौन ।

लोई के कानों में एक स्वर गूंज जाता है—'साधना का उत्तराधिकार नहीं हो सकता ।' यही पूरे आश्रम की हवा में गूँजता है ।

लेकिन लोई एक जिद्दी स्त्री है । वह इसे पूरा करना चाहती है । करके रहेगी ।

किन्तु सन्त क्या कम हैं ? उनकी शान्ति ही प्रतिवाद है ।

अब उत्ताराधिकार की चर्चा साधुओं में फैल गयी है । शिष्यों के दो दल हो गये हैं । एक दल कमाल के पक्ष में है । दूसरा कमाल को कपूत मानता है । यह दल सन्त की कोई सन्तान होने तक को मान्यता नहीं देता है । जो प्रतियोगिता की दौड़ से बचना चाहते हैं । सम्प्रदाय में स्थायी शान्ति चाहते हैं । वे वंश परम्परा को सुलभ मार्ग मानते हैं । किन्तु अधिक महत्वाकांक्षी वंश परम्परा के विरोधी हैं ।

दोनों दलों के अपने-अपने तर्क हैं। सन्त पर किसी का प्रभाव नहीं है। वे कोई सम्प्रदाय चलाना भी नहीं चाहते हैं। वे साधुओं की जमात के भी विरोधी हैं। साधु तो अकेला होता है। हजारों मनुष्यों में कोई-कोई ही उपासक होता है। साधक होता है। और इन साधकों में कोई एकाध ही ईश्वर को प्राप्त कर पाता है। ऐसे में साधुओं की जमात का प्रश्न ही नहीं उठता है। सिंहों के लेहड़े नहीं होते। लालों की बोरियाँ नहीं होती। साधुओं की भीड़ नहीं होती है।

लोई रोती है। कलपती है। सन्त से बार-बार विनय करती है। किन्तु सन्त मौन रहते हैं। लोई ने ताना कसा। व्यंग्य किया। अपनी सन्तान होती तब न। फिर भी सन्त पर कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा है। वे कुछ कहना नहीं चाहते। वे साधुसमाज पर किसी को लादना नहीं चाहते। साधु समाज आजाद है। जिसे जब और जैसा गुरु बनाये। गुरु.गोविन्द बनाये नहीं जा सकते, स्वयं पैदा होते हैं।

अनेक सन्तों की सन्तानें हैं। अनेक ने अपनी सन्तानों को उत्तराधिकार दिये हैं। वे सम्प्रदाय पूज्य हो गये हैं। गुरु पुत्र गुरु के समान पूज्य हैं। किन्तु सन्त पर इस तर्क का भी कोई प्रभाव नहीं है।

रोती कलपती लोई बार-बार लौट आती है। अपनी मड़ई में लेटती है। बैठती है। बैठ नहीं सकती। रात-रात भर डोलती है। चक्कर लगाती है। पूर्व जीवन पर नजर फेंकती है। जैसे कोई गाय सिर घुमाकर अपने बछड़े को चूमे। चाटे। प्यार करे। और फिर आँखें झरना बन जायँ।

उसका पूर्व जीवन दुखी था। पूरा परिवार नष्ट हो गया। माता-पिता की याद भी मिट चुकी है। स्नेहमयी बहन की याद आते ही आँखों में अँधेरा भर जाता है। उसके पति और बच्चे। सब की स्मृतियाँ ताजी हैं। वह नहीं समझ पाती है कि ईश्वर स्त्री को ही इतना कष्ट क्यों देता है ? यह संतई भी क्या चीज है ? स्त्री से, संतान से इतना भय क्यों ? स्त्री न होती ? संतान न होती तो संत कहाँ होते ? संत को जन्म देनेवाली माँ का अपमान संत द्वारा।

लोई संत से पूछती है ब्रह्म ने यह संसार क्यों बनाया ? क्यों रची माया ? क्या माया ब्रह्म से अलग है ? अगर अलग है तो उसकी सत्ता कहाँ है ? स्त्री क्या पुरुष से अलग है ? आखिर कोई न कोई संतान ही तो उत्तराधिकार लेगी। फिर अपनी संतान ले इसमें क्या हर्ज है ? ये प्रश्न घूमते हैं। घूम-घूम कर संत के पास पहुँचते हैं। संत खुलते हैं—प्रश्न संतान का नहीं है। सवाल है अपनी संतान का, मेरी संतान का। 'अपना' का मोह मुक्ति नहीं दे सकता है। आत्म त्याग साधु का पहला धरम है। जो 'आप' को नहीं छोड़ सकता वह और चाहे जो हो जाय साधु नहीं हो सकता है। लोई का संतान मोह विषयासक्ति है। इन्द्री विकार है।

लोई ने हार मान ली। वह संत को नहीं समझा सकती है। संत की समझ और तर्क अलग किसिम के हैं। उनका सब कुछ उलटवाँसी है। साधना में जीवन धारा उलट जाती है। जगत को उलट कर ब्रह्म की ओर लगाना ही साधना है। काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार का साथ छोड़कर शून्य में पहुँचना, राम को प्राप्त करना भक्ति है। हम हर समय किसी न किसी का भजन करते हैं। कभी धन का, कभी मान का, कभी काम का। यह भुक्ति है। इसे छोड़ना ही मुक्ति है। प्रभु की सेवा, नामजप, ध्यान, भजन, कीर्तन में जाना भक्ति है।

साहेब के लिये लोई एक नहीं सभी लोग हैं। पूरा लोक लोई है। इसलिये वे लोक-लोई की सभी संतानों को समान मानते हैं।

संत के आस-पास बहुत से साधु इकट्ठे हो रहे थे। सभी साहेब का बाहरी कर्म अपना लेते थे। किन्तु भीतर की साधना कहाँ से लेते ? पूर्व संस्कार भी था। इन्द्रियों का संयम भी पूरा नहीं हो पाया था। ऐसे भी अनेक लोग लोई के तर्क से अत्यन्त प्रभावित हैं। यह मूर्ति पूजा का ही एक रूप है।

खपरा फूटिम फूटि...

प्रार्थना समाप्त होने पर भी कुछ साधु बैठे रहे। कुछ बाहरी महात्मा भी थे। कुछ लोग एक वृद्ध को लेकर आश्रम पहुँचे। आकर सन्त को दंडवत किया। बोले—बाबा, ये हमारे पितामह हैं। काशीवास करने आए हैं। यहीं विसर्जित होना चाहते हैं। रहनेवाले गंगा उस पार मगह के हैं। अन्त समय जानकर ही इन्होंने मगध छोड़ दिया। कहते हैं मगह मरे सो गद्दह होय। बाबा, ये सब बातें तो हमारी समझ में नहीं आतीं। आखिर मगध में ऐसा कौन सा दोष है जहाँ मरनेवाला गदहा होता है? हमारे बाबा की यही अन्तिम इच्छा थी—मुझे काशी जी ले चलो। हम काशी जी में मरेंगे। काशी में मरने से मुक्ति मिलती है।

यहाँ आश्रम पर आपके आशीर्वाद के लिये आए हैं। बोले—सन्त जी का दर्शन करा दो। कबीर साहेब के रूप में साक्षात् परम पुरुष ने अवतार लिया है। वे महापुरुष हैं। वे अवतार मानें या न मानें? हम तो उन्हें अवतार मानते हैं। संन्यासी और गृही के अलग-अलग धर्म हैं। हम उनके समान स्वतंत्र नहीं हैं।

महाराज, हमारे बाबा उठ नहीं सकते। उठकर यहाँ आ नहीं सकते। उन्होंने उठने की कोशिश तो की। किन्तु लुढ़क गए। हमने कहा हम साहेब जी से प्रार्थना करते हैं। वे यहीं आकर आपको दर्शन देंगे। भक्त कहीं नहीं जाता। भगवान स्वयं आते हैं।

तो महाराज, कृपा करें। हमारे बाबा को दर्शन से पवित्र करें। बेचारे वर्षों से आपके निर्गुण गाते रहे हैं। संगत में जाते रहे हैं।

यह खेती का मौसम है। घर पर बहुत से काम हैं। इस साल मौसम किसानों के साथ है। फसल अच्छी होगी।

सन्त जी मौन होकर सब सुनते रहे। उन्होंने पूछा 'मगध को बुरा क्यों कहते हो भाई? क्या बुराई की है मगध ने? पता नहीं क्यों बहुत से लोग मगध

गृह या मगहर की निन्दा करते हैं ? कोई उनसे पूछे क्यों भाई, मगहर (मगध गृह) का ईश्वर कोई दूसरा है क्या ? जब ईश्वर सब जगह है तो मगध को इससे वंचित क्यों समझते हो ? भगवान् के सच्चे प्रेमी को मुक्ति कहीं भी मिल सकती है। मुक्ति कोई नगर नहीं दे सकता। नगर तो जड़ है। जड़ जड़ को कैसे मुक्त कर सकता है ? चैतन्य व्यक्ति जड़ का उपयोग तो कर सकता है किन्तु वह जड़ द्वारा मुक्त कैसे हो सकता है ? किसी जड़ में इच्छा या निजी विचार नहीं देखे गये। सारे विचार चेतन के हैं। चेतन के हटते ही जड़ जड़ हो जाता है।

आगन्तुक ने कहा—बाबा, काशी को अविमुक्तक्षेत्र कहा गया है। यहाँ शिव का निवास है। गंगा इसके चरण पखारती हैं। विद्या की राजधानी और सन्तों की संगमस्थली है।

सन्त ने कहा—ठीक कहते हो भाई, किन्तु यह सब सामान्य जन की कसौटियाँहैं। भक्त को तो अपने राम प्रेम की परीक्षा काशी में नहीं मगहर (मगध) में होगी। शास्त्रकारों द्वारा अपमानित और निंदित उस क्षेत्र में मरने पर यदि मुक्ति मिले तभी भक्ति पूरी होगी। राम प्रेम का सच्चा सरूप व्यक्त होगा।

कबीर काशी की निन्दा नहीं करता है। किन्तु राम प्रेम को किसी भी स्थान, तीर्थ, यज्ञ, दान, पुस्तक, पाठ से बड़ा मानता है। इसलिये उसकी इच्छा है कि वह मगध में मरे। मगहर में शरीर छूटे। ऊसर मगहर पवित्र हो।

तुम्हारे शास्त्रकारों ने पवित्रता के कुछ स्थान, व्यक्ति और संकेत चुन लिये हैं। मैं चाहता हूँ सारा संसार ही राममय हो जाय। सब में राम और राम में सब हों। निर्गुण पूजा का अर्थ है सबकी पूजा। सबकी उपासना।

बातों में देर देख कुछ व्यक्ति उस वृद्ध को खाट पर उठाए लिये आ गए। सन्त ने उठकर वृद्ध के माथे पर हाथ रखा। वृद्ध ने आँखें खोल दीं। दोनों हाथ उठाकर प्रणाम करने की कोशिश की। किन्तु हाथ पूरे उठ न सके।

तत्काल उसकी आँखें बन्द हो गयीं।

सन्त ने कहा आप लोग इन्हें ले जायँ। ये प्रभु चरणों में स्थान पा गये हैं।

यह कहकर सन्त साधुओ के बीच बैठ गये और बोले—रामदास झीनी-झीनी बिनी चदरिया को गाओ तो। 'पुनः पुनः रामधुन हो रहा था। सन्त का मन काशी से उचट गया था। वे मगहर जाने की तैयारी कर रहे थे।

एक दिन बिना कुछ बताए सन्त का मन मगहर की ओर जा रहा था। अकेले। भीतर ही भीतर 'हंस अकेला जाई' की अनुगूंज उठ रही थी।

सन्त के प्रसिद्ध शिष्य नवाव विजली खाँ आये हुए हैं। उन्हें अपने इलाके में ले जाना चाहते हैं। भारी अकाल है। गोरखपुर क्षेत्र के लोग सन्त का दर्शन चाहते हैं। गोरखनाथ मन्दिर के महंथ जी का भी सन्देशा है सन्त अवश्य आयें। संसार में सन्त समागम से बढ़कर कोई सुख नहीं है। और सारे सुख व्यर्थ हैं। नवाब कई दिनों से डेरा डाले हैं। सन्त ने बार-बार अपनी यात्राएँ टाली हैं। इस बार उन्हें लेकर ही जायेंगे। नावाव का पूरा विश्वास है सन्त के पाँव पड़ने से धरती पवित्र होगी। वर्षा होगी।

सन्त तैयार हो गये। शिष्य का आग्रह पूरा करेंगे। सन्त संगति का लाभ भी होगा। किन्तु एक विचित्र बात कहते हैं—इस यात्रा के बाद लौटना न होगा। हमारा काम पूरा हो गया। अब अधिक टिकना ठीक नहीं है। शरीर जर्जर हो गया है। इसे छोड़ना होगा।'

इस खबर ने लोगों को बेचैन कर रखा है। लोग सन्त की यात्रा के पक्ष में नहीं है। पहले सन्त की मृत्यु की बात ही किसी को अच्छी नहीं लगती है। किन्तु ईश्वर पर किसका बस है? दूसरे यह कि मरते समय काशी छोड़ना उचित नहीं है। मरते समय तो लोग काशी आते हैं। किन्तु सन्त उल्टी बात सोचते हैं। काशी तो उनकी जन्मभूमि है। काशी और फिर जन्मभूमि। मृत्यु के लिये इन दोनों का दुर्लभ योग भाग्यवानों को ही मिलता है। किन्तु सन्त इन दोनों योग को ठुकराना चाहते हैं।

लोग सन्त को मना रहे हैं। काशी न छोड़ें। विद्वान् पंडित काशी को अविमुक्त क्षेत्र मानते हैं। काशी में सन्त को गौरव मिला। साधना को सिद्धि मिली है। इस दृष्टि से भी काशी छोड़ना ठीक न होगा। काशीवासियों को

सन्त साहेब के महाप्रयाग के दर्शन का लोभ है। प्रसिद्ध विद्वानों का दल आ-आकर सन्त से विनय करता है। यह काशी की उपेक्षा होगी। किन्तु सन्त अडिग हैं। उनके निश्चय में परिवर्तन नहीं होगा। वे स्थान का लाभ नहीं उठाना चाहते हैं। काशी को चुनौती भी नहीं देते हैं। बात केवल इतनी ही है कि काशी में मरने से काशी का महत्व बढ़ेगा। भक्ति की पहचान नहीं हो सकेगी। राम की कृपा का पता न चल सकेगा। सभी लोग काशी नहीं आ सकते हैं। उनकी मुक्ति कैसे होगी? कबीर साहेब को उनकी चिन्ता है जो काशी नहीं आ सकते। उनकी चिन्ता है जो काशी में रहकर भी पाप लिप्त हैं। पापियों की मुक्ति मात्र काशी में रहने से हो यह ठीक नहीं। काशी में लफंगों, चोरों, चाइयों की कमी है क्या? क्या उन्हें इसलिये मुक्ति मिलेगी कि उन्होंने यहाँ जन्म लिया? और दूसरे लोग मुक्ति से इसलिये वंचित रहेंगे क्यों कि वे काशी में जन्मे नहीं हैं। मुक्ति रामजी देते हैं। रामभक्ति से मिलती। जाति और जगह दोनों ही मुक्ति के लिये बेकार हैं।

मगह कैसे ऊसर है? अपवित्र है और काशी कैसे पवित्र? यह सब तुम्हारी किताबों में लिखा है। मैं किताब की बात नहीं मानता। किताबें आदमी को भरम में डालती हैं। किताबों का भरम छोड़ो। अपने को राम से जोड़ो। राम भगत के लिये काशी काबा बेकार हैं।

भीड़ बढ़ रही थी। लोग सन्त को मना रहे थे। किन्तु सन्त अपने निश्चय पर दृढ़ थे। लोई आई। साथ में थे कमाल-कमाली। सब सन्त के चरणों पर लोट रहे थे। यात्रा में हम भी साथ रहेंगे। बाबा को ऊसर मगह प्रिय है तो हम भी मगह जायेंगे।

सन्त ने इन्हें भी रोक दिया। कोई तमाशा नहीं है। सन्त का परिवार उनके शिष्य हैं। वही साथ जायेंगे। साथ में होंगे नवाब बिजली खाँ और उनके सेवक।

परिवार सीमा का सीमित विस्तार है। किन्तु जो असीम है उसका परिवार भी असीमित है। समाज भी निःसीम है। इस अनागारिक के लिये सारी सृष्टि

घर है। सभी प्राणी परिवार हैं। परिवार सुरक्षा और मोह से जुड़ा है। सन्त को न सुरक्षा चाहिये। न किसी प्रकार का मोह है। जो देह की चिन्ता नहीं करता वह देह से पैदा सन्तान की क्यों चिन्ता करेगा ?

सन्त कम बोलते हैं। एक शिष्य ने कहा 'बाबा बड़े जिद्दी हैं। राम की अपनी भक्ति और साधना की परीक्षा लेना चाहते हैं। ऐसा कौन भक्त होगा जो भगवान् की भी परीक्षा ले ? ईश्वर को भी कसौटी पर घिस कर देखे ? यह काम कठिन भी है। कर्मनाशा का पानी और मगह की धरती पुण्य को पाप में बदल देती है। सन्त अपनी साधना से इसे पवित्र करना चाहते हैं। पवित्र न भी कहें तो अपने प्रभु और भक्ति की परीक्षा तो चाहते ही हैं।'

मगह के निवासियों पर उनका यह उपकार भी है। वे मगह को प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। और कुछ हो या न हो जहाँ सन्त का शरीर छूटेगा समाधि बनेगी वहाँ एक और तीर्थ बन जायगा। निश्चय ही यह तीर्थ मगह में होगा। मगध की यह जगह धाम बन जायेगी। यहाँ मेले लगेंगे। पूजा और प्रतिष्ठा होगी। तो मगह में एक और तीर्थ की स्थापना।

सन्त स्वयं तीर्थ हैं। इनके चरणों की धूलि जहाँ भी पड़ती है वह स्थान तीर्थ बन जाता है। साधना सिद्धि को अपनाने की अपेक्षा सिद्ध बन जाने में है।

सन्त रुके नहीं। यात्रा शुरु हो गयी। वे सीधे चलकर गोरखपुर पहुँचे। यहाँ महंथ जी से मिले। महंथ जी ने सन्त का बड़ा स्वागत किया। भारी भीड़ इकट्ठी थी। सन्त का प्रवचन हुआ। बहुतों ने राम नाम का मन्त्र लिया। शायद अब आगे सन्त से मन्त्र लेने का अवसर न मिले। सब में उत्सुकता थी। देखें बाबा क्या करते हैं ? सन्त में कोई परिवर्त्तन नहीं था। वे सामान्य थे। न खुशी। न हँसी। न गम। प्रवचन के बाद एकान्त साधना।

सन्त गोरखपुर से आगे बढ़े। घोर देहात। ऊसर क्षेत्र। एक छोटी नदी के किनारे डेरा पड़ा। झोपड़ी बनी। सन्त ने झोपड़ी में साधना की। विश्राम किया। फूलों के ढेर लगाये जाते। बाहर-भीतर फूल। चारों तरफ अगल-बगल फल। फलों को पा सन्त प्रसन्न होते। उनकी प्रसन्नता शिष्यों को उत्साहित

करती। प्रसन्नता से प्रसन्नता बढ़ती। किन्तु शिष्यों में एक आशंका भी रहती। बाबा के महाप्रयाण की कल्पना से भयभीत रहते। कहीं अचानक बाबा हमें छोड़कर चल न दें। सन्तों का कोई भरोसा नहीं। कब चोला उतार कर रख दें कहा नहीं जा सकता है। बाबा ने तो घोषणा ही कर दी है। ऐसा ऊसर मगह और कहाँ मिलेगा ? दिन बीतते रातें आकर चली जातीं। शिष्यों के मन का खटका बढ़ता जाता। क्या करें समझ में नहीं आता ? लोग सन्त की सेवा में लगे रहते।

इधर सेवा बढ़ गयी थी। सब संत को घेरे रहते। यह मृत्यु की प्रतीक्षा भी थी। चाँदनी छिटकी थी। टहकार अंजोरिया। सन्त ने सभी शिष्यों को बुलाया। 'लोग मेरी बातें सुनें। मैं कुछ ही देर बाद इस काया को छोड़ दूँगा। आप लोग चिन्ता न करें। मेरे बाद आप लोगों को सद्गुरु का सन्देश फैलाना है। लोगों को सद्मार्ग पर लाना है। मैं सदा आपके साथ हूँ।'

सन्त साहेब की बातें सुन सन्त मण्डली, शिष्य समुदाय एवं सामान्य जन रोने लगे। जो नहीं रो रहे थे वे भी अपने को मात्र रोके थे। भीतर उनका भी रो रहा था।

लोग बड़ी संख्या में सद्गुरु का दर्शन करने आ रहे थे। सभी के हाथों में फूल मालायें थीं। सारे फूल सद्गुरु चरणों पर अर्पित थे। धीरे-धीरे वहाँ फूलों का ढेर लग गया। सन्त के आस-पास चारों तरफ फूल दीखने लगे। आधी रात बीतने को आई। दीपक की लौ भभकने लगी। शिष्यों का दिल धड़कने लगा। तेज हवा से बाहर का प्रकाश बुझ गया। भीतर का दीपक टिमटिमा रहा था। जैसे उसका तेल खत्म हो चुका हो। बुझना ही चाहता है।

सन्त ने फूलों को ही आधार बनाया। ईशारा पाकर एक शिष्य ने पानी का गिलास बढ़ाया। सन्त उसे गटगटा कर पी गये। पानी पीकर उन्होंने आँख खोली। चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। कुछ देखने लगे। किन्तु आँखें कहीं ठहरी नहीं। पद्मासन को खोल दिया। फूलों पर लेट गये। शिष्य ने द्वार को टट्टर से ढँक दिया।

टट्टर के लगते ही दीपक का प्रकाश बुझ हो गया। बाहर रामधुन हो रही थी। अनेक शिष्य रो रहे थे। सबको पूरा विश्वास था—गुरुदेव चले गये। अब हमें उनका दर्शन न नहीं होगा। हम सभी उनके आशिषों से वंचित हो गये।

किसी ने कुटिया खोलने की कोशिश नहीं की। चन्द्रमा की ज्योति मलिन होने लगी। दूर क्षितिज का रंग बदलने लगा। चिड़ियों ने चहचहाना प्रारम्भ किया। गाँव में अरुणशिखा का स्वर मुखर हो उठा। लोगों ने समझ लिया अब चन्द्रमा की गति समाप्त है। सूर्योदय होगा।

निश्चय हुआ कि गुरु साहेब की कुटी खोली जाय।

कुटी खुली। फूलों को ढेर पर साहेब सो गये थे। चिरनिद्रा में लीन थे। मुख की कांति अभी मौजूद थी थी। लगता था अभी-अभी प्रयाण किया है।

झल उठी झोली जली खपरा फूटिम फूटि।
जोगी था सो रमि रहा आसणि रही विभूति॥

गहण विचार होने लगा क्या किया जाय ? गुरु साहेब के शरीर का संस्कार कैसे हो ? दो रास्ते थे। एक जलाने वाला। दूसरा गाड़ने वाला। तीसरे ने सुझाव दिया। न गाडो। न जलाओ। इसी पर यहीं समाधि का निर्माण हो। यह पार्थिव शरीर न उठाया जाय। न हिलाया जाय। यह राय सबको पसन्द आई।

सन्त साहेब की समाधि बन गयी। शिष्यों ने बिना जाति, वंश या धर्म का भेद किये बड़ा भंडारा किया। हिन्दू-मुसलमान सब शामिल हुए। आज से इस स्थान का नाम मगहर (मगध गृह) हुआ। मगहर सन्त साहेब की समाधि के कारण पवित्र हो गया। महान् पुरुष अपने प्रभाव से अपवित्र को भी पवित्र बना देते हैं। तब से प्रतिवर्ष गुरु साहेब की समाधि पर मेले जुटने लगे। लोग दर्शनार्थ आने लगे। लोगों ने देखा—

संसार की समृद्धि और शान को चिढ़ाने के लिये दुतकार और तिरस्कृत करने के लिए लोग कबीरा और जोगीडा गाने लगे।

●

प्रचारक बुक क्लब
हिन्दी प्रचारक संस्थान
पो॰बा॰ ११०६, पिशाचमोचन, वाराणसी-२२१००१